श्रीसद्गुरुभ्यो नमः

नमस्कार-चिंतामणि

श्रीसद्गुरुभ्यो नमः

नमस्कार-चिंतामणि

लेखक

पू. मुनिराज श्री कुंदकुंदविजयजी महाराज

अनुवादक

चाँदमल सीपाणी

आशीर्वचन

आचार्य श्री विजय कलापूर्ण सूरिजी महाराज

प्रकाशक

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर मन्दिर,

भूपतवाला, हरिद्वार-२४९ ४१० (उ० प्र०)

पहली आवृत्ति: अजमेर, १९६९
पुनर्मुद्रण: हरिद्वार, १९९९

© श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर मन्दिर, भूपतवाला, हरिद्वार

वितरक

मोतीलाल बनारसीदास

४१ यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७
सनाज प्लाजा, १३०२, बाजीराव रोड, पुणे ४११ ००२
८ महालक्ष्मी चेम्बर, वार्डेन रोड, मुम्बई ४०० ०२६
१२० रॉयपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, चेन्नई ६०० ००४
१६ सेन्ट मार्क्स रोड, बंगलौर ५६० ००१
८ कैमेक स्ट्रीट, कलकत्ता, ७०० ०१७
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
चौक, वाराणसी २२१ ००१

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर मंदिर, भूपतवाला,
हरिद्वार-२४९ ४१० (उ० प्र०) द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन,
श्री जैनेन्द्र प्रेस, ए-४५ नारायणा, फेज़-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित।

आशीर्वचन

श्री नमस्कार महामंत्र मंगलमय है। मंत्राधिराज है। चौदपूर्व का सार है। अनादि सिद्ध है। शाश्वत है।

शुभ भाव, प्रसन्नता और एकाग्रता के साथ इसकी आराधना करने से सब प्रकार के संकट, दु:ख, दुर्गति एवं दुर्ध्यान नष्ट होते हैं। मनोवांच्छित फल मिलते हैं। कर्मक्षय एवं दु:खक्षय करके आत्मा नवकार मंत्र के प्रभाव से मोक्षगामी बनता है।

महामंत्र की आराधना, जप साधना कैसे करनी है, महामंत्र की क्या महिमा है, इसकी आराधना करके किसने कैसा-कैसा फल पाया है इत्यादि-इस 'नमस्कार चिंतामणि' पुस्तक में अच्छी तरह से बताया गया है।

श्री नमस्कार महामंत्र की आराधना की सही विधि जानकर जिज्ञासुवर्ग अपने जीवन में निर्मल भाव से आराधना करने का प्रयत्न करें जिससे रग-रग में महामंत्र गुंजित हो जाय, जीवन, तन, मन, सब पवित्र, प्रसन्न और सार्थक बन जाय।

श्री नमस्कार महामंत्र का जाप, ध्यान इत्यादि किस तरह करना है-इसका भी सुंदर मार्गदर्शन इस पुस्तक में कराया गया है।

विश्वहित, आत्महित की मंगल-कामना के साथ पंचपरमेष्ठी परमात्मा की आराधना करने की भावना सभी भव्य आत्माओं में जागरित हो; उसी जागृति के साथ पुरुषार्थ करके उसमें सफलता प्राप्त करें-यही शुभ कामना एवं शुभ आशीर्वाद है।

चन्द्रपुर, ४-१-९८ **विजय कलापूर्ण सूरि**

श्लोक

श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर तीर्थ
हरिद्वार, उत्तरप्रदेश

संक्षिप्त परिचय:

आध्यात्मिक साधना में मंदिरों-तीर्थों का विशेष महत्व है। तीर्थों से निःसृत होने वाली वीतरागता की ज्योति सांसारिक कर्मों में लिप्त मनुष्य को सदैव अपनी ओर आकर्षित करती रहती है। यही कारण है कि भारत में प्राचीनतम समय से तीर्थ-यात्रा को जीवन का पवित्रतम अनुष्ठान माना जाता है।

समस्त भारत में जैन तीर्थ अपनी अनूठी स्थापत्य-कला, वैभव, कला-कौशल एवं अप्रतिम निर्माण-सौंदर्य के लिए अत्यंत प्रसिद्ध हैं। इन तीर्थों में पालिताणा, सम्मेत शिखर, आबू, तारंगा, गिरनार, मांडवगढ़, पावापुरी, क्षत्रिय कुण्ड, राजगृही, रागकपुर, हस्तिनापुर, कांगड़ा, शंखेश्वर, अयोध्या जैसे तीर्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। जैन तीर्थों की इसी श्रृंखला में एक अभिनव तीर्थ उदय हुआ है श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ श्वेताम्बर तीर्थ हरिद्वार, उत्तर प्रदेश, जिसके प्रति सारे जैन समाज की आस्था और निष्ठा समर्पित है। जब से चिन्तामणि पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा पधारी है, देव संकेत के अनुसार अनेक व्यंतर देवों को सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है और होती रहेगी। युगों तक इस तीर्थ की महिमा अक्षुण्ण बनी रहेगी।

प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के निर्वाण-स्थान अष्टापद के मार्ग में स्थित हरिद्वार नगर में जैन तीर्थ का उदय होना एक अविस्मरणीय ऐतिहासिक घटना है।

पावन भूमि हरिद्वार में वर्षों से कोई श्वेताम्बर जैन मन्दिर नहीं था। मोतीलाल बनारसीदास संस्थान के स्वर्गीय सुन्दरलाल जी जैन को यह अभाव सदैव खटकता रहा। सेठ कस्तूरभाई लालभाई की भावना भी यही थी कि इस पुण्यभूमि पर एक भव्य जैन मन्दिर के साथ धर्मशाला, भोजनशाला व उपाश्रय का निर्माण होना चाहिए, किन्तु दोनों महानुभावों का यह स्वप्न उनके जीवनकाल में पूरा न हो सका।

लाला सुन्दरलाल के भतीजे पद्मश्री शान्तिलाल जी जैन ने अपनी भावना सुश्रावक श्री शोरीलाल जी जैन नाहर ब्यावर निवासी (वर्तमान में मद्रास निवासी) के समक्ष रखी। अन्त:प्रेरणा से प्रेरित होकर श्रीयुत शोरीलाल जी ने स्वयं को इस सम्पूर्ण परियोजना के साथ तन-मन-धन से जोड़ा व तीर्थ-निर्माण का समस्त कार्यभार अपने कंधों पर लिया। सर्वप्रथम भूमि का क्रय श्री शान्तिलाल जी ने अपने मित्र श्री ज्ञानचन्द जी जैन के सहयोग से किया। दैवयोग से मद्रास निवासी श्री अमरचन्द जी वैद जिन्हें अपने दिवंगत पिताश्री का दैविक सान्निध्य प्राप्त है, भी इस परियोजना की महत्वपूर्ण कड़ी बने और इस प्रकार मन्दिर-निर्माण का स्वप्न साकार हुआ।

मन्दिर का निर्माण दो खण्डों में हुआ है। भोयरे के गर्भगृह में ५१ इंच की श्री आदिनाथ भगवान् की श्वेतवर्ण प्रतिमा स्थापित की गई। भोयरे के रंगमण्डप में सीमंधर स्वामी व श्री महावीर स्वामी की प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं। मुख्य खंड के गर्भगृह में श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा के अतिरिक्त श्री शान्तिनाथ जी व श्री नेमिनाथ जी की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित किया गया है। कौली मण्डप में अधिष्ठायक श्री पार्श्व यक्ष एवं अधिष्ठायिका श्री पद्मावती यक्षिणी को प्रतिष्ठित किया गया है।

शिल्प :

मन्दिर के शिल्प की योजना भारत के सुप्रसिद्ध सोमपुरा श्री अमृतभाई त्रिवेदी जी के सुयोग्य निर्देशन में बनाई गई। मन्दिर-निर्माण का दायित्व श्री हर्षद चावड़ा ने संभाला।

अंजनशलाका-प्रतिष्ठा :

दैविक मार्गदर्शन के अनुरूप मन्दिर का अंजनशलाका प्रतिष्ठा महोत्सव शुभ मुहूर्त माघ शुक्ल 6, रविवार दिनांक 5 फरवरी 1995 को परम वंदनीय आचार्य भगवंत श्रीमद् पद्मसागर सूरीश्वरजी महाराज की पावन निश्रा में निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

उपाश्रय, भोजनशाला व धर्मशाला :

मन्दिर से संलग्न तिमंजिले उपाश्रय, धर्मशाला एवं भोजनशाला की सुविधायें उपलब्ध हैं। वर्तमान में 200 यात्रियों के आवास की व्यवस्था है। एक अतिरिक्त विशाल धर्मशाला के निर्माण की योजना भी हाथ में है तथा इसके लिए भूमि का क्रय हो चुका है।

सुश्रावक श्री शोरीलाल जी नाहर के अन्तर्मन की भावना आरम्भ से ही यह रही है कि मन्दिर परिसर में नवकार-पीठ की स्थापना हो। इस बृहद् योजना के अन्तर्गत पुस्तकों का प्रकाशन भी समाविष्ट है। सर्वप्रथम अध्यात्मयोगी आचार्य कलापूर्ण सूरी महाराज जी की पुस्तक **'ध्यान-विचार'** जिसका अनुवाद उनके शिष्यों ने ही गुजराती से हिन्दी में किया था, का प्रकाशन हो चुका है। **'पंचप्रतिक्रमण'** इस प्रकाशन-योजना का द्वितीय पुष्प है। पंचप्रतिक्रमण पर इससे अच्छी सानुवाद पुस्तक संभवतः आज तक नहीं छपी। इस प्रकाशन-योजना का तीसरा पुष्प अध्यात्मयोगी आचार्य कलापूर्ण सूरी महाराज जी की पुस्तक **'मिले मन भीतर भगवान्'** भी प्रकाशित हो चुका है और **'नमस्कार-चिंतामणि'** इस प्रकाशन-योजना का चतुर्थ पुष्प है। हमारा सौभाग्य है कि हमें प्रकाशन का लाभ प्राप्त हो रहा है।

स्वतंत्रता दिवस
१९९९

ट्रस्टीगण
चिन्तामणि पार्श्वनाथ तीर्थ, हरिद्वार

विषयानुक्रम

	पृष्ठ
आशीर्वचन	v
श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर तीर्थ	vii
प्रस्तावना	xvii
दो शब्द	xxii
प्रवेश	xxxi
प्रकाशकीय निवेदन	lv
श्री नमस्कार महामंत्र	१
प्रारंभिक मंगल (नमस्कार महामंत्र)	२
नवकार जाप की पूर्व भूमिका	३
नमस्कार महामंत्र महिमा गर्भित श्लोक	४
मैत्री आदि भावनागर्भित श्लोक	१४
आत्मरक्षाकर वज्रपंजर स्तोत्र	२०
चार मंगल आदि भावना के काव्य	२३
श्री नमस्कार महामंत्र का बाह्य स्वरूप	२७
श्री नवकार का आन्तरिक स्वरूप	३१
नमो पद की विचारणा	३२
अरिहंत पद की विचारणा	३६
सिद्ध पद की विचारणा	३९
आचार्य पद की विचारणा	४०
उपाध्याय पद की विचारणा	४०
साधु पद की विचारणा	४१
नमस्कार चूलिका का विचार	४२

	पृष्ठ
श्री परेमेष्ठी नमस्कार का विशेष परिचय	४५
श्री अरिहंतों का उपकार	४५
श्री सिद्धों का अविनाशीपन	४६
श्री आचार्यों का सदाचार	४७
श्री उपध्यायों का विनय	४८
श्री साधुओं का सहायकपन	४९
कार्य कारण की सनातन व्यवस्था	५०
नमस्कार एक महान् शक्ति	५१
मोह यही जीवन का वास्तविक शत्रु है	५१
मोह नाश का उपाय (नमस्कार)	५२
नमस्कार का अचिंत्य प्रभाव	५२
क्रोध को जीतने का उपाय–साधु पद	५३
मान को जीतने का उपाय–उपाध्याय पद	५३
माया को जीतने का उपाय–आचार्य पद	५४
लोभ को जीतने का उपाय–सिद्ध पद	५४
नमस्कार पुण्य रूपी शरीर को उत्पन्न करनेवाली माता है	५५
पुण्यानुबंधी पुण्य की उपादेयता	५७
पुण्यरूपी अंग का पालन करनेवाला नमस्कार है	६०
पुण्यरूपी अंग को पवित्र रखनेवाला नमस्कार है	६३
जीवरूपी हंस को विश्रान्ति का स्थान नमस्कार है	६४
नमस्कार सदा जयवंत रहो	६६
श्री नमस्कार महामन्त्र की सर्वदृष्टिता	६७
जाप की सिद्धि के लिये प्रयोजन भूत ज्ञान	७०

	पृष्ठ
जाप में प्रगति के जरूरी नियम	७५
महामन्त्र की साधना से होनेवाले लाभ	७६
जाप किस तरह किया जाय	७९
भाष्य, उपांशु और मानस आदि जाप के लक्षण	७९
जाप के पांच प्रकार–(शब्द जाप, मौन जाप, सार्थ जाप, चित्तस्थजाप और ध्येयैकत्व जाप)	८३
जाप के तेरह प्रकार (रेचक, पूरक, कुंभक, सात्त्विक आदि)	८७
श्री परमेष्ठियों के स्मरण का महत्त्व	९०
जाप करनेवाले साधक को ध्यान में रखने लायक बातें	९५
निश्चित समय	९५
निश्चित आसन	९६
निश्चित दिशा	९७
निश्चित माला	९८
शंखावृत्त-नद्यावृत्त का स्वरूप	९९
निश्चित संख्या	९९
जाप में विशेष प्रगति के उपाय	१०१
अक्षर देखने की प्रथम रीति	१०१
अक्षर देखने की दूसरी रीति	१०२
अक्षर देखने की तीसरी रीति	१०२
धारणा से मानसिक पूजा	१०३
ध्यान करनेवाले के लक्षण (योग शास्त्रादि के आधार पर)	१०५
साधक जीवन में अत्यन्त उपयोगी श्री वाचक जश की अनुभव वाणी	१११

	पृष्ठ
महामन्त्र का ध्यान (योग शास्त्र के आधार पर)	११३
आराधना में विकास की भूमिका का क्रम	११८
शब्दानुसंधान	११८
अर्थानुसंधान	११९
पदार्थ, वाक्यार्थ और महावाक्यार्थ	१२०
तत्त्वानुसंधान	१२१
ऐदंपर्यार्थ	१२३
पंच परमेष्ठी में नौ तत्त्व	१२५
श्री नमस्कार में दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप	१२५
चार भावना के प्रकर्ष से उच्च पद की प्राप्ति	१२५
परमेष्ठी पद प्राप्ति का कारण	१२४
महामंत्र का हार्द क्या है ?	१२६
स्वरूपानुसंधान	१२७
श्री नमस्कार–महात्म्य–दर्शक ८८ सुवाक्यों	१२८
साधना मार्ग में पथ्यापथ्य	१४५
बाहर के विघ्न	१४५
आंतरिक विघ्न (काम, क्रोध, लोभ मोह, मद और ईर्ष्या आदि को जीतने के उपाय)	१४७
साधक जीवन और नियमितता (संक्षिप्त विवेचन सहित उपयोगी सोलह नियम)	१६०
दोषों को जीतने के उपाय (मननीय ११ बातें)	१७२
संक्षिप्त दिनचर्या गर्भित हित शिक्षा (सत्त्वपोषक उपयोगी १३ बातें)	१८२

पृष्ट

नवकार साधना गेय विभाग

(१)श्री नवकार मंत्र का छेद (कुशललाभ वाचक कृत) १८७

(२)श्री नवकार मंत्रकी महिमा (उ० यशोविजयजी कृत पंचपरमेष्ठी गीता में से) १९०

(३)अमृतवेली की सज्जाय (उ. यशोविजयजी कृत) १९२

(४)श्री नवकार मंत्र का गीत १९८

(५) धुन (अलग २ सात) १९९

(६) श्री अरिहंत भक्ति गर्भित दोहे २००

(७) सच्चा जैन (काव्य दो) २०२

पाप प्रणिघात गुणबीजाधान नामक प्रथम पंचसूत्र सार्थ २०४

बड़ी शान्ति—मूल २१७

बड़ी शान्ति का सरल शब्दार्थ अनुक्रम सह २२३

बीस दिन में लाख नवकार जाप के अनुष्ठान की विधि २२९

वे तीर्थंकर बने २३१

परमातम पद देवे २३२

नौ दिन एकासने से नवकार तप की आराधना विधि २३३

प्रतिदिन नवकार वाली का पद, साथिया आदि का कोठा २३४

कायोत्सर्ग की विधि २३४

रोज के खमासमणे के दोहे २३५

नवकार तप में विशेष सूचना २३६

श्री अरिहंतपद का चैत्यवंदन, स्तवन, स्तुति २३८

श्री सिद्धपद का चैत्यवंदन. स्तवन, स्तुति २४०

श्री आचार्यपद का चैत्यवंदन, स्तवन, स्तुति २४२

	पृष्ठ
श्री उपाध्याय पद का चैत्यवंदन, स्तवन, स्तुति	२४३
श्री साधु पद का चैत्यवंदन, स्तवन स्तुति	२४५
अन्तिम चार दिनों में उपयोगी चैत्यवंदन, स्तवन, स्तुति आदि	२४७
संथारा पोरिसी मूल	२५०
संथारा–पोरिसी सरल शब्दार्थ अनुक्रम सह	२५३
अरिहंत परमात्मा (भव अटवी का दृष्टान्त)	२५६
समरो नित्य नवकार (प्राचीन काव्य)	२६३
श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तोत्र	२६५
श्री नवकार महामंत्र की महिमा	२६६
स्तोत्र पाठ की महिमा	२७१
श्री मंत्राधिराज स्तोत्र	२७२
श्री ऋषिमण्डल स्तोत्र	२७६
श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र	२८२

नमस्कार-चिंतामणि

प्रस्तावना

प्रभु शासन प्राप्त भव्यात्माओं का महामंत्र श्री नवकार के प्रति स्वाभाविक रूप से आकर्षण देखा जाता है। यहां कदाचित् ऐसा प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि आकर्षित होने का क्या कारण है ? इसका संक्षेप में यही उत्तर है कि जैन शासन को प्राप्त पुण्यवान आत्माओं को नवकार अपना प्राण है। प्राण के बिना फिर भी काम चलाया जा सकता है परन्तु महामंत्र श्री नवकार के बिना काम नहीं चल सकता, ऐसी दृढ़ श्रद्धा जैन कुल में उत्पन्न होनेवालों को जन्म सिद्ध अधिकार के रूप में मिली हुई होती है। जन्मते, मरते, उठते बैठते, सोते, जागते, खाते-पीते, सुख में, दुःख में, त्याग में या भोग में प्रत्येक सम्यग् दृष्टि जीव को श्री नवकार महामंत्र की जरूरत होती है। वह भी चित्त-समाधि के लिये। चित्त की समाधि यह सम्यग्दृष्टि के लिये सब से बड़ा धन है। महामंत्र के स्मरण बिना उसे बैचेनी का अनुभव होता है। बिना मां के बालक की तरह उसे अनाथपन का अनुभव होता है। नवकार सम्यग्दृष्टि जीव की माता है, पिता है, बंधु है, मित्र है, स्वामी है, गुरु है। लौकिक हितकारी माता-पिता का संयोग भी उसी के प्रभाव से है, ऐसा वह मानता है। जन्मांतरों में उसे वह एक साथी है, सहचारी है, ऐसी श्रद्धा

उसे होती है। किसलिये ? कारण कि उसे बारम्बार सुनने को मिलता है कि नवकार द्वादशांगी का सार है, चौदह पूर्व का उद्धार है, चौदह पूर्वियों को भी अन्त समय में उसी का एक परम आधार है। ऐसा कहनेवाले पुरुष उसके मन श्रद्धेय हैं, आराध्य हैं। क्योंकि उनका वचन अविसंवादी, सफल प्रवृत्तिजनक और स्वयं के अनुभव से कहा हुआ होता है। वे मानते हैं कि महामंत्रों के प्रत्येक पद और वर्ण पवित्र हैं। क्योंकि वे पवित्र पुरुषों के द्वारा कहे गये हैं, स्मरण करनेवाले को पवित्र करनेवाले हैं और पवित्रतम ऐसे परम-पद मोक्ष को देनेवाले हैं। वे पद सब लक्षणों से युक्त हैं और लक्षणों से युक्त वस्तुओं का देवता सन्निधान करते हैं। इसलिये इस महामंत्र के प्रत्येक वर्ण श्रेष्ठ प्रवचन देवताओं से अधिष्ठित हैं। इसके सिवा वे जानते हैं कि मंत्र के अक्षरों का उनके वाच्य परमेष्ठिओं के साथ अनादि सिद्ध सम्बंध है। मंत्र पदों का स्मरण करने से परमेष्ठी भगवंतों का स्मरण होता है। मंत्र के अक्षर–मात्र अक्षर ही नहीं हैं परन्तु वाच्य वाचक सम्बंध से सिद्ध स्वयं परमेष्ठी ही हैं। इन अक्षरों का एकाग्रचित से स्मरण करने से परमेष्ठी भगवंत सम्मुख ही आते हों, अथवा हृदय में प्रवेश ही करते हों, अथवा अपने साथ मधुर सम्भाषण ही करते हों, अथवा अंगोंअंग में आकर मिलने या तन्मयी भाव को प्राप्त होते हों, ऐसा अनुभव होता है।

ऐसा अनुभव केवल योगी पुरुषों को ही होता हो और दूसरों को न होता हो ऐसी बात नहीं हैं। कोई भी श्रद्धालु

आत्मा जब महामंत्र के स्मरण में तल्लीन होता है, तब उसे ऐसा अनुभव आंशिक रूप में होने लगता है। इसका मुख्य कारण महामंत्र की शाश्वतता है। सब तीर्थंकर, गणधर उस भव में या पूर्व भवों में इस महामंत्र की साधना किए हुए होते हैं, और उसका फल साक्षात् अनुभव कर उपदेश देने वाले होते हैं। उनकी संकल्प शक्ति भी महामंत्र को प्रभावशाली बनाने में सहायक होती है। उनके वचन प्रामाण्य से तीनों लोक में रहे हुए सर्व सम्यग्दृष्टि जीव इस महामंत्र का सतत आराधन करते रहते हैं और उनके द्वारा परमेष्ठियों के साथ तन्मय भाव को प्राप्त करते रहते हैं। इन सबों का लाभ महामंत्र का स्मरण करनेवालों को अदृश्य और अगम्य रूप से मिलता रहता है।

दूसरे मंत्रों की तरह महामंत्र की साधना की भी एक विधि है। साधक कैसा होना चाहिये, साध्य का स्वरूप क्या है, साधना की विधि क्या है और उसका अनन्तर व परम्पर फल क्या है, वह सब समझकर यदि साधना की जाय तो वह शीघ्र फल देती है। **नमस्कार चिंतामणि** नामक इस पुस्तक में ये बातें यथाशक्ति, यथामति बतलाई गई हैं। वाचक उसकी साधना में शीघ्र प्रगति कर सके इसके लिये जरूरी अनेक बातें इस पुस्तक में संग्रहित की गई हैं। प्रत्येक प्रकरण में कही गई बातों को लेखक ने समझ, विचार और यथाशक्ति जीवन में अनुभव कर लिखी हैं जिससे पढ़नेवालों पर उसका सीधा प्रभाव पड़ता है।

पुस्तक पूरी पढ़ने के बाद पढ़नेवाले को ऐसा आभास होता है कि जब तक इस महामंत्र और उसकी साधना

विद्यमान है, तब तक जैन संघ को उसका अभ्युदय करने में, एक क्षण भी विलम्ब हो ऐसा नहीं है। सिर्फ साधक को योग्य और अधिकारी बनना चाहिये। साधक की योग्यता और अधिकारिता के लिये मुख्यतः दो बातों पर प्रधान लक्ष रखना आवश्यक है—एक मन और दूसरी इंद्रियां। मन को सब जीवों के साथ मैत्री आदि भावों से भावित–वासित करना चाहिये और इंद्रियों को विषयों की विपाक–विरसता का विचार कर संयमी बनाना चाहिये। ये दोनों बातें मिल-कर उपकार करती हैं। इंद्रियों के संयम से मन शुद्ध होता है और मन की शुद्धि से इंद्रियाँ निर्विकार बनती हैं। व्रत—नियमों का आग्रहपूर्वक पालन भी इंद्रियों के संयम में सहायता करता है और देव, गुरु, संघ, साधर्मिक की सेवा-भक्ति भी मन को शुद्धि में बल प्रदान करती है। जैन शासन में देव की पूजा, गुरु की सेवा, संघ की भक्ति और साधर्मिक का वात्सल्य, भावधर्म की वृद्धि करनेवाले हैं, ऐसा कहा गया है। भावधर्म की वृद्धि से दान, शील, तप आदि धर्म के प्रकार और दूसरे शुद्ध आचारों की भी वृद्धि होती है। बाह्य शुद्ध आचरण भी फिर से भाव धर्म की वृद्धि करते हैं और इस तरह उत्तरोत्तर दोनों धर्मों की वृद्धि होने से घाति कर्मों का क्षय और अन्त में केवलज्ञान और मुक्ति सुख की प्राप्ति होती है।

अधिकारिता प्राप्त कर महामंत्र नवकार की आराधना करने से जैसे शीघ्र फल प्राप्ति सम्भव है, वैसे नये धर्मी को महामंत्र की आराधना स्वयं भी अधिकारिता प्राप्त कराने

में सहायक होती है, शास्त्रों में इष्ट देवता के स्मरण को आदि धार्मिक पुरुष का प्रधान लक्षण कहा है जिससे श्री जिनेश्वरदेव के शासन में इस महामंत्र को आराधना करने के लिये आबाल वृद्ध सब ही जीवों को एक अपेक्षा से समान अधिकारी माना है। इस तरह सब प्रकार के अधिकारो को उपकारो होने से महामंत्र की आराधना में उपयोगी ऐसे विषयों वाली यह पुस्तक सब अर्थी जोवों को प्रिय लगे, इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

सब इस पुस्तक से यथाशक्ति लाभ उठा कर महामंत्र के उच्च कोटि के आराधक बनें, यही कामना है।

पं. भद्रंकरविजय गणी

श्रीशंखेश्वर-पार्श्वनाथाय नमः

दो शब्द

मानव जीवन में मंत्र का स्थान बहुत महत्त्व का है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक, तथा आधिदैविक ऐसे तीन प्रकार के दुखों में से किसी भी दुःख से जगत के प्राणी हमेशा विविध प्रकार के दुःखों का अनुभव करते रहते हैं। इन दुःखों से बचाने की ऐसी अद्‌भुत दिव्य शक्ति मंत्राक्षरों में भरी हुई है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इसीलिये परम पुरुषार्थ स्वरूप मोक्ष के उपायों में मंत्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

"मननात् त्रायते यस्मात्, तस्मान्मन्त्रः प्रकीर्तितः।"

अर्थ—मनन करने से जो अक्षर अपनी रक्षा करते हैं, उन अक्षरों को इस कारण से मन्त्र कहा जाता है।

अपनी स्थूल बुद्धि से साधारण मालूम होनेवाली उन विशिष्ट वनस्पतियों में भयंकर से भयंकर अनेक व्याधियों का नाश करने की तथा शारीरिक और मानसिक पुष्टि तथा तुष्टि करने की प्रबल सामर्थ्य होती है। आयुर्वेद के सारे शास्त्र वनस्पतियों की सामर्थ्य पर ही बने हुए हैं और शारीरिक तथा मानसिक सुख के लिये असंख्य मनुष्य इसका आश्रय लेते आये हैं। उसी तरह अपनी बुद्धि से सामान्य लगनेवाले

ऐसे कितने ही अक्षर हैं जिनमें विविध कार्य कराने की अगाध सामर्थ्य गुप्त राति से होती है। योगी पुरुष अपनी दिव्य योग दृष्टि से इस सामर्थ्य का साक्षात्कार कर विविध कार्यों के लिये विविध अक्षरों को योजना करते हैं वे मन्त्राक्षरों के नाम से पहिचाने जाते हैं।

जिस प्रकार औषधियां भिन्न भिन्न अनुपात के साथ लेने से तथा भिन्न भिन्न प्रकार के मिश्रण करने से विविध सामर्थ्य देनेवाली होती हैं, उसी प्रकार मंत्राक्षर भी विविध मुद्रा, न्यास, मण्डल तथा वर्ण (रंग) आदि प्रयोग से तथा विविध रीति से संयोजन करने से अनेक प्रकार के अदभुत चमत्कारी कार्य कर सकते हैं। इसी दृष्टिकोण से मन्त्र के विधि विधान तथा आमनायों के अनेक ग्रन्थ रचे गये हैं।

ऐसे मंत्राक्षरों में पंच परमेष्ठी नमस्कार मन्त्र सब से श्रेष्ठ मन्त्र है। भगवान महावीर देव से लेकर आज तक के रचित विपुल साहित्य में नमस्कार महामन्त्र की अचिंत्य और अपार महिमा का जगह २ वर्णन किया गया है। जैनों के सब विभागों में इस मन्त्र की महिमा सब से श्रेष्ठ मानी गई है। यह मन्त्र जैनों के घर २ में प्रसिद्ध है। जैन धर्म के किसी भी शास्त्र का ज्ञान नहीं रखनेवाला भी प्रत्येक जैनी कम से कम 'नमस्कार महामन्त्र' का ज्ञान तो अवश्य ही रखता है और सुख-दुख आदि सब अवसरों पर इस मन्त्र का स्मरण करता है। इस मंत्र का स्मरण परम लाभदायक है ऐसा सब ही जैनी परापूर्व से मानते आये हैं और मान रहे हैं।

नमस्कार महामन्त्र की इतनी बड़ी उत्कृष्ट प्रतिष्ठा किस कारण से है ? इस का विचार करने पर इसके दो कारण मुख्यतः मालूम होते हैं। प्रथम तो इसकी शब्द योजना ही ऐसी है कि जो परम कल्याण और अभ्युदय को साधती है। दूसरे उसके अर्थरूप वाच्य, जो पंच परमेष्ठी हैं वे जगत में श्रेष्ठतम आत्माएं हैं। उनसे अधिक उत्तम दूसरी आत्माएं विश्व में नहीं हैं।

जैन प्रवचन के समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार द्वादशांगी माना जाता है। जिस तरह गृहस्थ के घर में सारभूत रत्नादि वस्तुएं तिजोरी में भरी रहती हैं उसी तरह द्वादशांगी, गणधर भगवंतों की सन्दूक है जिसमें जगत की सारभूत तमाम विद्याएं भरी हुई हैं। इसलिये द्वादशांगी को "गणिपिटक' भी कहा जाता है। चौदह पूर्व बारहवें अंग का ही एक विभाग है। इस चौदह पूर्व में जगत की इतनी सारी विद्याएं समा जाती हैं कि चौदह पूर्वधरों को श्रुत केवली भी कहते हैं, श्रुतज्ञान के बल से जगत के अतीन्द्रिय भावों को जानने की उनमें इतनी अधिक अलौकिक सामर्थ्य होती है कि हमें तो वे केवल-ज्ञानी–सर्वज्ञ भगवंत जैसे लगते हैं। इन [1]महापुरुषों ने भी नमस्कार मन्त्र को चौदह पूर्व का सार कहा है और मृत्यु

---

१ चौदह पूर्वधर भगवान श्री भद्रबाहुस्वामी ने आवश्यक सूत्रों पर निर्युक्ति की रचना की है। उसमें नमस्कार माहात्म्य का प्रतिपादन करनेवाला विस्तृत विभाग है, कि जो नमस्कार निर्युक्ति के नाम से जाना जाता है, इसमें नमस्कार का माहात्म्य उन्होंने विस्तार से बतलाया है। देखो आवश्यक निर्युक्ति गाथा ८८७ से १०२६। इस निर्युक्ति पर भाष्य, चूर्णि, वृत्ति आदि अनेक व्याख्याओं की भी रचना हुई है।

आदि प्रसंग पर इसका ही स्मरण करने का विधान बताया है। इसके अक्षर चाहे थोड़े हैं परन्तु [1]बारह अंग का सारभूत अर्थ का उसमें संग्रह आ जाने से चौदह पूर्वधर श्रुतकेवली भगवान श्री भद्रबाहु स्वामी ने भी इसे 'महान् अर्थवाला' बताया है और इसकी अपार महिमा का वर्णन किया है, श्रुत ज्ञान के पारगामी और शब्द शक्ति के समग्र रहस्य को जानने वाले महापुरुष स्वयं ही **नमस्कार मन्त्र को जो इतना बड़ा महत्व देते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि नमस्कार मन्त्र के अक्षरों की संकलना दूसरे मंत्राक्षरों की तुलना में ऐसो विशिष्ट प्रकार की है कि जिससे इसको महामन्त्र का स्थान प्राप्त हुआ है।**

एसो पंचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

पंच परमेष्ठी को किया गया यह नमस्कार सर्व पापों का मूल से नाश कर देता है और सब मंगल–हितकर वस्तुओं में

---

१. महार्थता चास्याल्पाक्षरत्वेऽपि द्वादशाङ्गसंग्राहित्वात्। कथं पुनरेतदेवमित्याह–यो नमस्कारो 'मरणे' प्राणोपरमलक्षे 'उपाग्रे' समीपे भूते 'अभीक्ष्णम्' अनवरते क्रियते 'बहुशः' अनेकशः। ततो महत्यामापदि द्वादशाङ्गं मुक्त्वा तत्स्थानेनुस्मरणाद् महार्थः। इयमत्र भावना-मरणकाले द्वादशाङ्गपरार्तनाशक्तो तत्स्थाने तत्कार्यकारित्वात् सर्वैरपि महर्षिभिरेष स्मर्यत इति द्वादशाङ्गसङ्ग्राहिता, तद्भावाच्च महार्थ इति।

आवश्यकनिर्युक्ति–मलयागिरीयावृत्ति पृ० ५११।

यह उत्कृष्ट मंगल है। यह चूलिका नमस्कार मंत्र के सम्पूर्ण सामर्थ्य को संक्षेप में स्पष्टरूप से बताती है।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज जैसे समर्थ विद्वान ने भी अपनी माता पाहिनी, जिसने दीक्षा ली थी, को मृत्यु के समय [1] इस प्रकार पुण्य कहा था, **"तुम्हारे पुण्य निमित्त मैं करोड़ बार नमस्कार मंत्र का जाप करूंगा"**—ऐसे महाज्ञानी पुरुष भी नमस्कार मंत्र का आश्रय लेते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि इसकी अक्षर संकलना में ऐसी कोई अचिंत्य सामर्थ्य है कि आत्मा को अनादि काल से लगे अनंत पापों के स्तरों को और पाप वासनाओं को नमस्कार मंत्र जड़ मूल से नष्ट कर देता है। इस लोक के सुख, परलोक के सुख तथा मोक्ष का शाश्वत सुख भी यह देता है।

इस मंत्र की अर्थ संकलना भी ऐसी उत्तम है कि जगत की सर्व कालीन सर्व श्रेष्ठ आत्माएं इसकी वाच्य रूप हैं। इसके अर्थ का हम विचार करते रहें तो भी परमेष्ठियों के गुणों का स्मरण और चिंतन के प्रभाव से तन्मय होकर हम परमात्मा बन सकते हैं। आध्यात्मिक शास्त्रों का नियम है कि "जो मनुष्य जिसका अहर्निश चिंतन करता है वह तद्रूप बन

---

१ अथान्यदा श्रीहेमसूरिमाता पाहिणीदेवी प्रव्रजिता। कालान्तरे कृतानशना नमस्कारकोटिपुण्ये दत्ते सत्ति श्रीपत्तने पुण्यवरे 'त्रिषष्ठि-शलाकापुरुषचरित्रादिलक्षग्रन्थो नवीनः कार्य इति प्रोक्ते सति सूरिणा मृता—कुमारपाल प्रबोध प्रबन्धः पृ० ५६

जाता है"। परमात्मा का सतत स्मरण और ध्यान करने से परमात्मा के साथ अपनी आत्मा का अनुसंधान होता है। और इससे अपनी आत्मा में परमात्मा की तमाम शक्तियाँ प्रगट होने से हम परमात्मारूप हो सकते हैं। इस प्रकार शब्द तथा अर्थ दोनों दृष्टि से विचार करने से नमस्कार मंत्र की महानता सहज ही समझी जा सकती है।

ऐसे प्रभावशाली महामंत्र को जपने का सद्भाग्य प्राप्त करना यही मानव जीवन में प्राप्त करने लायक एक श्रेष्ठ कर्त्तव्य है। मानव जीवन का यह बड़ा से बड़ा फल है। ऐसा मानकर नमस्कार के साधकों को नमस्कार की उपासना में ही तल्लीन हो जाना चाहिये।

कारण कि जगत में प्रभु के नाम स्मरण के समान दूसरा कोई भी बड़ा कार्य नहीं है। जिसे प्रभु स्मरण का रस लगा है उसे दूसरी कोई बात अच्छी नहीं लगती। 'मनुष्य नमस्कार मंत्र को गिनता है', ऐसा कहने के बजाय नमस्कार मंत्र को गिनने के बिना उससे रहा ही नहीं जा सकता, कहना अधिक सही है। ऐसी स्थिति प्राप्त करना यह साधक के लिए खास जरूरी है। भक्त भक्ति में भी मुक्ति का ही आनन्द अनुभव करते हैं।

मंत्र की उपासना में निष्ठा की खास जरूरत है। कारण कि **'जप व्यक्तायां वाचि मानसे च'** इस धातु पर से **'जाप'** शब्द बना है। यह एक शास्त्र सिद्ध और विज्ञान सिद्ध हकीकत है कि अपन जिन शब्दों का उच्चार करते हैं वे शब्द

समग्र जगत में व्याप्त हो जाते हैं। जैसे शांत सरोवर में पत्थर फेंकने से पानी में लहरें प्रगट होती हैं और वह जोर से फेंका हो तो कुंडालों में से दूसरे अनेक कुडाले उत्पन्न होकर एक किनारे से दूसरे किनारे तक व्याप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार शब्दों के उच्चार से भी आंदोलन प्रगट होते हैं और वे सारे विश्व में व्याप्त हो जाते हैं। यदि वे आंदोलन निर्बल हों तो विशेष कुछ नहीं कर सकते, परन्तु प्रबल हों और व्यवस्थित रीति से फैलें तो वे आंदोलन जगत के द्रव्यों और वातावरण में प्रवेश कर तद्दन कल्पनातीत और चमत्कारी परिवर्तन कर सकते हैं। इसलिये साधक को मंत्राक्षर के जाप में इस प्रकार तन्मय हो जाना चाहिये कि जैसे समुद्र में मछली को दशों दिशाओं में पानी का ही अनुभव होता रहता है। उसी तरह जाप करते समय मंत्राक्षरों के आंदोलन अपने चारों ओर व्याप्त हो जाय और स्वयं मंत्राक्षरों को ध्वनि के महासागर में डूब गया हो ऐसा उसे अनुभव होना चाहिये। इस प्रकार जाप होगा तब उसके दिव्य चमत्कारों का साधक को अपने आप अनुभव होने लगेगा।

नमस्कार मंत्र यह सिर्फ पौद्गलिक अक्षर रूप हैं, ऐसा नहीं मानना चाहिये क्योंकि इसमें तो [1]अक्षर रूप में

मंत्रमूर्ति समादाय, देवदेवः स्वयं जिनः।
सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सोऽयं साक्षाद् व्यवस्थितः॥
(ज्ञानार्णव पृ ३९०)

प्रकारान्तरेण पदमयी देवतां प्रस्तौति
तथा पुण्यतमं मन्त्रं, जगत्त्रितयपावनम्।
योगी पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं विचिन्तयेत् ।३२।
श्री हैमचन्द्राचार्य प्रणीत योग शास्त्र (सटीक) अष्टम प्रकाश

वास्तव में परमेष्ठी रहे हुए हैं। जिससे 'जाप करते समय परमेष्ठी के सांनिध्य का अपने को अनुभव होता है' ऐसी भावना से जाप करना चाहिये। मंत्र स्वयं ही अक्षरात्मक देव है, और मंत्र के स्वयं भी अनेक अधिष्ठायक देव होते हैं। इसलिये मंत्र के भक्ति पूर्वक किये हुए व्यवस्थित जाप से मंत्र के अधिष्ठायक देवों तक ये आंदोलन पहुंचते हैं और वे देव साधक को अनेक तरह से सहायता करते हैं। इसलिये मंत्राक्षरों की भी साक्षात देव और देवाधिष्ठित मानकर ही उपासना करनी चाहिये। परन्तु मंत्राक्षरों में ऐसा दैवत (प्रभाव) तब ही प्राप्त होता है, जब कि खासकर गुरु के मुंह से अपने को वह मंत्र मिले। इसकारण जिस सद्गुरु के दर्शन से अपने को परम आनन्द प्राप्त होता हो, जिन पर अपनी खास भक्ति हो, ऐसे गुरुदेव के पास से मंत्राक्षरों का पाठ लेना चाहिये। ऐसा करने से मंत्र में चैतन्य प्रगट होता है, इस उद्देश्य से ही नमस्कार मंत्र आदि पढ़ने के लिये शास्त्रों में उपधान आदि की विधि बतलाई गई है। कहा है कि—

'भवेद् वीर्यवतो विद्या, गुरु वक्त्र समुद्भवा'

"गुरु मुख से जो विद्या प्राप्त हुई हो तो वह विद्या वीर्य-वाली–विशेषतया फल देनेवाली होती है।"

इसलिये नमस्कार मंत्र के साधकों को विधिपूर्वक गुरु प्रणिपात कर अत्यंत बहुमान पूर्वक गुरु के पास से नमस्कार का पाठ लेना चाहिये। इस विधि से मंत्र में चैतन्य प्रगट होता है और अमुक संख्या में जाप करने के बाद उसका अनुभव भी होने लगता है।

इतनी बात सर्वथा निश्चित है कि—

जपात सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः ॥

जप से सिद्धि होती है, जप से सिद्धि होती है, जप से सिद्धि होती है, इसमें जरा भी संशय नहीं है, ऐसा समझकर जो साधक नमस्कार मंत्र के जाप को बराबर करता रहेगा उसे अन्त में सिद्धि–मोक्ष को देनेवाली अपूर्व और अकल्पित मानसिक शुद्धि का अवश्य ही अनुभव होगा।

पूज्यपाद गुरुदेव मुनिराज
श्रीभुवनविजयान्तेवासी
मुनि जम्बूविजय

नमो अरिहंताणं

प्रवेश

श्री नवकार यह सब मन्त्रों में शिरोमणिभूत महामन्त्र है और उत्तम सामग्रीवाला मानव जन्म सब जन्मों में सब से श्रेष्ठतम जन्म है। श्रेष्ठ के साथ जब श्रेष्ठ का सुयोग प्राप्त हो, तब उसमें से महान् फल उत्पन्न होता है यह निर्विवाद है।

श्रीनमस्कार महामन्त्र में विराजमान पांचों परमेष्ठी परमपद पर पहुँचे हुए और पहुँचने के लिये प्रयत्नशील जगत को पाँच महाविभूतियां हैं और अपनी आत्मा बहुत ही नीची भूमिका में रही हुई है, अनेक अशुद्धियों से भरी हुई है, अति पामर दशा का अनुभव कर रही है, यह एक अनुभव सिद्ध बात है; इतना होने पर योग्य आलंबन के बल से नीचे रही हुई आत्मा भी उच्च दशा को प्राप्त कर सकती है।

जीव का आज तक मोक्ष नहीं हुआ इसका मुख्य कारण दूसरा कोई नहीं, परन्तु यह है कि जीव ने पूर्व में कभी भी अपनी अशुद्धियों को दूर नहीं किया। दूसरी तरह कहना हो तो अशुद्धियां जिनसे दूर हों, उन उपायों का सच्चा आलंबन उसने कभी लिया ही नहीं है।

यह नवकार मन्त्र महामन्त्र की उपमा के लायक इसलिये है कि जीव विशुद्धि के लिये वह एक मुख्य और अजोड़ साधन

है। दूसरे सब साधनों के मूल में भी यह नवकार मन्त्र हो तब ही वे सफल होते हैं, अन्यथा नहीं।

यह नवकार जीव की अशुद्धियां किस तरह दूर करता है ? जीव की मूलभूत अशुद्धियां कौनसी हैं ? और विशुद्धि किस तरह प्रगट हो सकती है ? इसका ज्ञान स्पष्ट कर लेना यह महामंत्र के साधक के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

महामन्त्र की महामन्त्रता समझने के लिये नवकार के अन्दर प्रवेश करना होगा। हालांकि यह महामंत्र अनंत गम-पर्याय और अर्थ का प्रसाधक तथा सब महामन्त्रों का और प्रवर विद्याओं का उत्कृष्ट बीज स्वरूप हैं।[1] इसलिये इसकी थाह पाना दुष्कर है। परन्तु इसकी चार बातें महामन्त्र की साधना की प्रगति के लिये अत्यन्त प्रेरणादायक होने से उन्हें समझ लेना जरूरी है। ये चार बातें निम्न लिखित हैं—

(१) श्री नवकार कृतज्ञता गुण का प्रतीक है।
(२) श्री नवकार परोपकार गुण का आदर्श है।
(३) श्री नवकार सब जीवों के प्रति आत्मसमदर्शित्व भाव को लानेवाला है।
(४) श्री नवकार परमात्म समदर्शित्वभाव का उद्‌बोधक है।

---

१ अणंतगमपज्जवत्थपसाहग,—सव्वमहामंतपवरविज्जाणं परमबीय-भूयम्।

...श्री महानिशीथ सूत्र

इसलिये श्रीनमस्कार महामन्त्र की साधना करने से जीव की शुद्धि में अनन्य कारणभूत कृतज्ञता, परोपकारिता, आत्म-समदर्शित्व और परमात्मसमदर्शित्व आदि भाव साधक में भी उत्पन्न होते हैं।

श्रीनमस्कार महामंत्र में ये चार बातें सहज भाव से हैं। श्रीपरमेष्ठी भगवंत इन चारों भावों से परिपूर्ण हैं। इसलिये उनका आलंबन लेनेवाले में भी ये भाव क्रमशः सहज ही प्रगट होते हैं।

उपरोक्त चारों बातों की प्रतिपक्षी बातें, कृतघ्नता, स्वार्थ-रसिकता, अनात्मसमदर्शिता और अपरमात्मदर्शिता हैं, ये ही चार जीव की मूलभूत अशुद्धियां हैं। दूसरी तमाम अशुद्धियों का बीज इन चारों में हैं, जब कि कृतज्ञता आदि चारों भाव जीवन के लिये सर्वशुद्धिकारक परम बीजभूत हैं।

श्री नवकार में बिराजमान श्री अरिहंत आदि परमेष्ठियों मुख्य–गौण भाव से कृतज्ञता गुण के स्वामी हैं। उनकी तमाम प्रवृत्तियां परोपकार प्रधान हैं। आत्मसमदर्शित्व उनका प्राण है और परमात्मसमदर्शित्व उनका सर्वस्व है।

महामंत्र के सच्चे साधक बनने के लिये उसके साधक को परमेष्ठियों के इन गुणों का लक्ष्य रखने की अति आवश्यकता है। साधना में अति प्रयोजनभूत इन चार बातों पर यहां क्रमशः विचार करेंगे।

कृतज्ञता–महामन्त्र की साधना के लिये साधक की प्रथम योग्यता कृतज्ञता है। अपने पर किये गये दूसरों के उपकार को कभी भी नहीं भूलना इसका नाम कृतज्ञता है। उपकारियों

को नमस्कार करना इसी में मनुष्यत्व की शुरुआत है। जो नमस्कार करने योग्य हैं उन्हें नमस्कार नहीं करना, यह बहुत बड़ा अपराध है। इसका दण्ड भी बड़ा है। श्री अरिहंत आदि पंच परमेष्ठी नमस्कार के पात्र हैं। क्योंकि वे परम उपकारी हैं। उनकी करुणा से हम यहां तक की इतनी ऊँची दशा को प्राप्त कर सके हैं[1]। जिनके कारण हम ऊँचे उठे उन हमारे परम उपकारियों के प्रति हम नम्रता के भाव न रखें तो हमारे कृतज्ञता गुण का नाश होता है।

नमस्कार करने योग्य उपकारी को जो नमस्कार नहीं करते, वे कृतघ्न होते हैं, कृतघ्नता यह बहुत बड़ा पाप है। सब पापों के प्रायश्चित्त हैं, परन्तु कृतघ्न के लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं[2]। कृतघ्नता का त्याग कर जब जीव कृतज्ञ बनता है, तब ही उसका छुटकारा होता है।

श्रीपंचपरमेष्ठी भगवंतों के प्रति कृतज्ञ हुआ आत्मा एक ऐसी निर्मल दृष्टि को प्राप्त करता है कि उस दृष्टि का जैसे २ विकास होता जाता है, वैसे २ उसमें नम्रता का भाव अधिक से अधिक विकास होता जाता है। योग्य के प्रति

---

१ "भवत्प्रसादेनैवाहमियतीं प्रापितो भुवम्"।
श्री वीतराग स्तोत्रम्

'इतनी भूमि प्रभु तुमही आन्यो,
परि परि बहुत बढाइ माम'।
पू. उपाध्याय यशोविजयजी महाराज

२ कृतघ्नस्य नास्ति निष्कृतिः।
श्री योग शास्त्र टीका

सच्चा नम्र भाव रखना यही भाव नमस्कार का स्वरूप है। नम्रता के बल से सर्वोत्कृष्ट व्यापक दृष्टिवाला आत्मा जगत के तमाम पदार्थों को अपने उपकारी के रूप में देख तथा जान सकता है, और इससे मरणांत उपसर्ग करनेवाले भी अपकारी रूप में नहीं, परन्तु अपने को परम समाधि भाव की प्राप्ति में निमित्तभूत बनकर अन्त में कर्मक्षय में सहाय करनेवाले परम बांधव से भी अधिक उपकारी के रूप में देख सकता है।

ऐसे कृतज्ञ जीव में जगत के जीवों के प्रति उसे स्वयं के किये अपराध रूपी ऋण से मुक्त होने के लिये तत्परता स्वाभाविकतया बढ़ती है। कृतज्ञता की बुद्धि से उत्पन्न हुए ऋण मुक्ति के विचारों में से जो परोपकार की प्रवृत्ति होती है वही सच्चा परमार्थ-परोपकार भाव है। क्योंकि इसमें अहंकार को स्थान नहीं और मैं दूसरों की भलाई करता हूँ ऐसी वृत्ति भी नहीं 'मैं सारे विश्व का देवादार हूँ।' अनादि-काल से अनेक जीवों के दुःखों में मैं निमित्त बना हूँ, अनेक जीवों ने अनेक बार मेरा भला किया है, इसलिये इस ऋण से मुक्त होने के लिये मुझे सब को भलाई की कामना करना ही चाहिये, यह मेरा कर्तव्य है, ऐसा वह समझता है, कृतज्ञता गुण की यह पराकाष्ठा है, परन्तु इसकी शुरुआत तो परम उपकारी श्री अरिहंत आदि पांचों परमेष्ठिओं को भावपूर्वक नमस्कार करने से होती है। विशुद्ध धर्म की शुरुआत भी जीव को कृतज्ञ बुद्धि से उपकारी को किये गये नमस्कार से होती है। इस कृतज्ञता गुण के द्वारा किये गये नमस्कार का प्रभाव ऐसा अचिंत्य है कि वह अपने तमाम

अन्तरायों को दूर कर अपनी सब इच्छाओं की पूर्ति कराता है।

परोपकारिता:—श्री नवकार महामंत्र की साधना के लिये साधक की दूसरी योग्यता परोपकारभाव है। मन, वचन, काया और दूसरी भी प्राप्त सामग्री से दूसरों का हित हो इस प्रकार योजना करना इसका नाम परोपकार है। मनुष्यों को सुखी करने के लिये जगत में अनेक प्रकार के वाद चलते हैं, परन्तु नम्रता से दूसरों की शक्य भलाई करना, अर्थात् दूसरों की भलाई चाहे बिना, अथवा दूसरों की शक्य भलाई किये बिना अपना भला कदापि नहीं होता, इस प्रकार भलाईवाद के पास अन्य सब ही वाद लूले बन जाते हैं। समग्र द्वादशांगी का सार चौदह पूर्व का सम्यग् उद्धार स्वरूप महामंत्र श्री नवकार है और इस नवकार का प्रथम पद "नमो अरिहंताणं" है, यह नमो अरिहंताणं पद परोपकार गुण की ही प्रतिष्ठा है। सर्व कर्मों से रहित सिद्ध भगवंतों को छोड़कर श्री अरिहंत भगवंतों को महामंत्र के प्रथम पद में बिराजमान किये गये हैं, इसका मूल रहस्य उनकी परोपकारिता है। विश्व में श्री अरिहंत सब से अधिक परोपकारी हैं, विश्व के तमाम जीव इनके ऋण से दबे हुए हैं। क्योंकि इन्होंने सम्पूर्ण विश्व के तमाम जीवों के समग्र दुःखों के नाश की और उनको अनन्त सुख की प्राप्ति हो इसकी तीव्र भावना से उनके लिये सतत पुरुषार्थ किया है।

उनकी यह उदात्त भावना और उत्तम अवस्था का वर्णन शास्त्रों में निम्न प्रकार किया गया है।

श्री तीर्थंकरों की पूर्व भवों की भावना

"अहो ! खेद की बात है कि श्री सर्वज्ञ प्रणीत धर्मरूपी उद्योत विश्व में विद्यमान होते हुए भी मोहांधकार से दुखित प्राणी संसार में परिभ्रमण करते हैं। वर बोधि को प्राप्त हुआ मैं भीषण भव भ्रमण से पीड़ित इन प्राणियों को किसी भी तरह सर्वज्ञ भगवंत के धर्मरूपी उद्योत से दुःखमय संसार से पार उतारूं" इस भावना से अनुकम्पा और आस्तिक्य आदि गुण से युक्त परोपकार व्यसनी, नये नये गुणों का उदय प्रतिक्षण जिनमें हो रहा है, ऐसे बुद्धिमान श्री तीर्थंकर परमात्माओं की आत्मा प्राणियों पर की करुणा से प्रेरित होकर उनका उद्धार करने में रत बनते है, और कल्याणकारी व्यापारों के द्वारा भव्य प्राणियों के परमार्थ को करते हुए विश्व के सब जीवों को हितकारी ऐसे तीर्थंकर नाम कर्म की निकाचना करते हैं।[1]

---

१ मोहान्धकार गहने, संसारे दुःखिता बत ।
सत्त्वाः परिभ्रमन्त्युच्चैः, सत्यस्मिन् धर्मतेजसि ॥१॥
अहमेत्तानतः कृच्छ्राद्, यथायोगं कथंचन ।
अनेनोत्तारयामीति, वरबोधि—समन्वितः ॥२॥
करुणादि—गुणोपेतः, परार्थव्यसनी सदा ।
तथैव चेष्टते धीमान्, वर्धमानमहोदयः ॥३॥
तत्तत्कल्याणयोगेन, कुर्वन् सत्त्वार्थमेव च ।
तीर्थकृत्त्वमवाप्नोति, परं सत्त्वार्थ—साधनम् ॥४॥

इस प्रकार नमस्कार महामंत्र में सारभूत अरिहंत पद स्वयं ही परोपकार भाव से भरपूर है कि जो अरिहंत पद अपनी समग्र आराधना के केन्द्र रूप है। श्री अरिहंतों को आदर्श रूप बनाये बिना कोई भी साधक आराधना में आगे नहीं बढ़ सकता, इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि परोपकार भाव को आदर्श रूप बनाये बिना आराधना में आगे नहीं बढ सकता।

नवकार में बिराजमान पांचों परमेष्ठी भगवंत विश्व की भलाई करने की भावना से भरपूर हैं, इसलिये उनके नमस्कार स्वरूप महामंत्र में विश्व हित की ही भावना भरी है, ऐसा कहा जा सकता है, तो फिर आराधना करनेवाले सच्चे साधक में भी यह भाव प्रगट हुए बिना कैसे रह सकता है ? परहित की जो स्वहित से अभिन्न है, उसका भाव जहां तक आदर्श न बने वहां तक साधक में महामंत्र की साधना में वेग भी कैसे आ सकता है ? इसलिये जीवन में परोपकार भाव को भी आदर्श बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है। संक्षेप में धर्म का स्वरूप कुछ भी हो तो वह मैत्री भाव का विकास, परोपकार का निर्माण और उसके द्वारा शमवृत्ति की उपासना है।[1]

परोपकार का प्राधान्य

परोपकार भाव की महत्ता को सब ही समर्थ ज्ञानी पुरुषों ने एक समान रूप से स्वीकार की है और इसलिये

---

१ तत्त्वं धर्मस्य सुस्पष्टं, मैत्रीभावविकासनम्।
परोपकारनिर्माणं, शमवृत्तेरुपासनम् ॥१॥

शास्त्रों में अनेक स्थान पर परोपकार भाव का प्राधान्य बताया गया है। गृहस्थ के सामान्य धर्मरूप मार्गानुसारिता के गुणों में पू. आचार्य श्रीहेमचन्द्रसूरीश्वरजो महाराज ने "परोपकृतिकर्मठः"।—अर्थात् मार्गानुसारी जोव परोपकार के कार्य करने में शूरवीर होते हैं, इस प्रकार योगशास्त्र में वर्णन किया है। इसके विवेचन में स्पष्ट करते हुए उन्होंने बतलाया है कि परोपकारपरायण मनुष्य ही सब लोगों के नेत्रों को अमृत के अंजन के समान आनन्ददायक बनता है।[1]

धर्मरत्न प्रकरण में धर्म की प्राप्ति के पाये के २१ गुणों में भी "परहियत्थकारी च" अर्थात् दूसरों की भलाई करने-वाला जीव धर्मरत्न के योग्य बनता है। वहां स्वोपज्ञ विवरण में स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि "स्वभाव से ही जो आत्मा दूसरों का हित करने में निरन्तर रत रहता है, वह धन्यवाद का पात्र है। ऐसा जीव धर्मरत्न की प्राप्ति करने के योग्य बनता है।"[2]

अनादि स्वार्थ परायणता के योग से स्वार्थभाव तो सब किसी को सहज भाव से संभवित है। इसमें कोई विशेषता नहीं। परन्तु परार्थ का भाव पैदा करना और उसी में आनन्द

---

१. परोपकारपरो हि पुमान् सर्वस्य नेत्रामृताञ्जनम्।
योग शास्त्र–टीका

२. यो हि प्रकृत्यैव परेषां हितकरणे निरन्तरं रतो भवति स धन्यो धर्मधनार्हत्वात्।
धर्मरत्न प्रकरण–टीका

मानना मनुष्य की सच्ची महत्ता है। मनुष्यों के सत्त्व की खरी कसौटी उसके परोपकार भाव में है।[1]

किसी भी धर्मानुष्ठान के मूल में परहित की भावना आवश्यक है। धर्मानुष्ठान का लक्षण बताते हुए पू. हरिभद्र सूरीश्वरजी महाराज ने धर्मबिन्दु नाम के ग्रन्थरत्न में "मैत्र्यादिभावसंयुक्तं तद्धर्म इति कीर्त्यते" अर्थात् मैत्री आदि भाव से युक्त जो शास्त्रोक्त उचित अनुष्ठान किया जाता है उसे धर्म कहा जाता है। इस मैत्री भाव की व्याख्या उन्होंने षोड़शक ग्रन्थ में "परहितचिन्ता मैत्री" अर्थात् अन्य जीवों के हित की चिन्ता करना यह भी की है।

इस बात को लक्ष्य में रखकर धर्मसंग्रह ग्रन्थ में (जिस ग्रन्थ का सशोधन पू. उ. श्री यशोविजयजी महाराजजी ने

---

१. परोपकारैकरतिर्निरीहता, विनीतता सत्यमतुच्छचित्तता।
विद्या–विनोदोनुदिनं न दीनता, गुणा इमे सत्त्ववतां भवन्ति॥

धर्मरत्न प्रकरण–टीका

अर्थ—परोपकार मात्र में रति, निस्पृहता, विनीतपन, सत्य वचन, आशय की उदारता, प्रतिदिन ज्ञान प्राप्ति में आनन्द, अदीनता, आदि गुण सत्त्वशाली जीवों में ही होते हैं। यहां "परोपकारैकरतिः" अर्थात् परोपकार में एक रति इस विशेषण को सबसे प्रथम रखा है यह परोपकार गुण की महत्ता बताता है। दूसरे गुणों का मूल भी परोपकार ही है। यदि मूल में यह हो तो निरीहता, विनीतता आदि अन्य गुण सरलता से सिद्ध हो सकते है। स्वार्थ प्रधानता हो वहां तक सच्ची निरीहता या सच्ची विनीतता भी सम्भव नहीं है। इसलिये परोपकार भाव सब गुणों में मुख्य स्थान पर है।

किया है) मैत्री आदि भावों को अवश्य मोक्षफल की प्राप्ति करानेवाले धर्म कल्पवृक्ष के मूलरूप में बताया है।[1]

सम्पूर्ण दश पूर्वधर को निरपेक्ष यतिधर्म स्वीकार करने को जैन आगम में निषेध किया है। धर्मबिंदु ग्रन्थ में कहा है[2] कि दशपूर्वधर में परोपकार संपादन करने की योग्यता है।[3] कदाचित कोई यह कहे कि उनमें परोपकार संपादन करने की योग्यता है, इससे क्या हुआ ? वे गच्छ से निरपेक्ष होकर अपना आत्म कल्याण क्यों नहीं करते ? इसके उत्तर में उसके बाद सूत्र में बताया गया है कि परोपकार करना यही सर्व धर्म अनुष्ठानों में श्रेष्ठ है।[4]

इस प्रकार मार्गानुसारिता की भूमिका से लेकर ज्ञान की श्रेष्ठ भूमि प्राप्त किए हुए महापुरुषों तक सर्वत्र परोपकार भाव को प्रधानता दी गई है।

---

१. मैत्र्यादिभावानां निश्रेयसाभ्युदयसकलधर्मकल्पद्रुममूलत्वेन शास्त्रान्तरेषु प्रतिपादनात्।

धर्मसंग्रह–टीका

२. संपूर्णदशपूर्वविदो निरपेक्षधर्मप्रतिप्रत्तिनिषेधात्।

धर्मबिन्दु ६–४

३. परार्थसंपादनोपपत्तेः।

धर्मबिन्दु ६–४

४. तस्यैव च गुरुत्वात्

धर्मबिन्दु ६–६

परार्थसंपादनस्य एव सर्वधर्मानुष्ठानेभ्य उत्तमत्वात्।

धर्मबिन्दु टीका पृष्ठ ७६

जीव जब तक स्वार्थ भावरूपी अशुद्धि के लेप से लिपटा हुआ है और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये दूसरों को पीड़ा देने रूप पापाचरण से युक्त है; तब तक उसे पापमल के लेप से शुद्ध करनेवाले-पवित्र करनेवाले प्रतिपक्षी वस्तु की अति आवश्यकता है और उसी का नाम परोपकार भाव है। अपने आचरण से दूसरों को दुःख देना यह पाप के लिये है, इससे जीव अपवित्र बनता है, जब कि पाप भाव से जीव को छुडानेवाला और पवित्र करनेवाला परोपकार भाव है।[१]

परोपकार और कृतज्ञता गुण की प्रधानता को बताने के लिये अन्य जगह भी कहा है कि—

"परोपकार में जिसकी बुद्धि है और किये उपकार को जो नहीं भूलता है, ऐसे सिर्फ दो ही पुरुषों को पृथ्वी धारण करे ! अथवा ऐसे दो पुरुषों से ही यह पृथ्वी टिकी हुई है।[२]" यहां 'दो पुरुष से ही' ऐसा कहा है, वह जाति में एक वचन है। अर्थात् परोपकार वृत्तिवाला और कृतज्ञ इस तरह दो जाति के मनुष्य दुनियां में रहते हैं, उसी से यह पृथ्वी टिकी हुई है। जिस दिन सब ही स्वार्थपरायण और कृतघ्न बन जायेंगे, उस दिन पृथ्वी पर सत्तत्त्व जीवित नहीं रहेगा। सत्तत्त्व का नाश होना यही परमार्थ से सर्वनाश है। इसलिये

---

१. परोपकार : पुण्याय, पापाय परपीड़नम्।

सूक्त मुक्तावली

२. दो पुरिसे धरउ धरा, अहवा दोहिंपि धारिया धरणी।
उवयारे जस्स मई, उवयरिअं जो न पम्हुसइ ॥११॥

धर्मरत्न प्रकरण टीका

सत्तत्त्व को-धर्मतत्त्व को टिकाने में प्रधान भाग कृतज्ञभाव और परोपकारवृत्ति का है।

शक्य परोपकार किये बिना मुक्ति साधक योगों की परम्परा भी अविच्छिन्न नहीं बन सकती। जो दूसरों को देता है, उसे ही भविष्य में मिलता है ऐसा नियम है। जो दूसरों को नहीं देता, उसे जन्मांतर में उत्तम सामग्री नहीं मिलती। इससे वस्तुतः दूसरों का हित करनेवाला ही तत्त्व से अपना सच्चा हित कर सकता है।[1]

इस तरह महामन्त्र नवकार मुमुक्षु जीवों में परोपकार भाव उत्पन्न करने के लिये एक सुन्दर पदार्थ पाठ पूरा करता है।

आत्मसमदर्शित्वः—महामन्त्र की साधना के लिये साधक की तीसरी योग्यता सब जीवों के साथ आत्मसमदर्शित्व भाव को प्रगटाना है। आत्मसमदर्शित्व अर्थात् जगत की तमाम आत्मा मेरी आत्मा के समान है ऐसा भाव।[2]

मेरी आत्मा के समान अर्थात् मुझे जैसे सुख इष्ट है और दुःख अनिष्ट है, उसी तरह जगत के तमाम जीवों को सुख इष्ट है और दुःख अनिष्ट है। जो वस्तु अपने को अनिष्ट हो वह दूसरे के लिये न चाहना, न आचरना और सबके लिये शुभ

---

१. परोपकार : सततं विधेयः।
न स्वोपकाराच्च स भिद्यते।

उपदेश रत्नाकर

२. सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइ पासओ।

दशवैकालिक सूत्र

की इच्छा करना, यह न्याय बुद्धि का लक्षण है, धर्म का यह संक्षिप्त सार है।

अनादिकाल से जीव को सहज भाव से जड़ पदार्थों के साथ प्रीतिभाव और जगत के जीवों के साथ अप्रीतिभाव है। यह भाव अति मलीन है। क्योंकि इसमें चैतन्य का अपमान है। जो तत्त्व अति महिमावंत हो उसका सन्मान करना चाहिये। तमाम ज्ञानी पुरुषों ने चैतन्य का बहुमान किया है। चैतन्य मात्र का बहुमान करने के लिये शास्त्रो में भी जहां तहाँ **'सर्व'** शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसे—

"खामेमि सव्वजीवे। सव्वे जीवा खमंतु में।
मित्ति में सव्वभुएसु।" "सव्वस्स जीवरासिस्स।"
"सव्वं खमावइत्ता।" "खमिअ सव्वजीवनिकाय।"
"सव्वे जीवा कम्मवस।" "सव्व खमाविआ।"
"शिवमस्तु सर्वजगतः।" "सर्व कल्याण कारणम्।"
"दुस्थां भवस्थिति स्थेम्ना, सर्वजीवेषु चिंतयन।"
"सव्वभूयप्पभूयस्स।" "सर्वत्र सर्वे सुखिनो भवंतु।"
"सव्वपाणभूअजीवसत्ताणं आसायणाए।"
"समस्तसत्त्व विषयकस्नेहपरिणामो मैत्री।"
इत्यादि।

इस **'सर्व'** शब्द के प्रयोग के पीछे यह रहस्य है कि चैतन्यवाले एक भी जीवको अलग नहीं किया जा सकता। एक जोव की उपेक्षा से सर्व की उपेक्षा हो जाती है। क्योंकि कर्म की परतंत्रता से जीव चाहे आज अलग अलग विषम

अवस्थाएँ धारण करता हो और अलग अलग तरह से पहिचाना जाता हो, परन्तु चैतन्य की अपेक्षा से जगत में तमाम जीव समान है। इस प्रकार अपनी आत्मा से अभिन्न रूप से, अर्थात् जगत के तमाम जोवों को अपनी आत्मा के समान 'आत्मसमदर्शित्त्व' भाव से देखनेवाला ऐसा समदृष्टि जीव मोक्ष को प्राप्त करनेवाला होता है,[1] क्योंकि उसका जीव मात्र पर समान भाव है। जीवों का निरुपाधिक स्वरूप शुद्ध है। उसे लक्ष में रखकर जीव मात्र पर वह समान भाववाला बनता है इसीसे वह सच्चा दृष्टा है, ऐसी अपूर्व दृष्टि सम्यग्दर्शन में प्राप्त होती है।

आत्मसमदर्शित्वभाव प्रकट हुए बिना क्षमादि धर्म, या वास्तविक मैत्री आदि भाव भी प्रगट नहीं हो सकते। जीव में मैत्री आदि तो भरे हुए हो हैं। परन्तु मोह के कारण वह मात्र अपने तक ही मर्यादित है, क्रूर से क्रूर माने जाने वाले और जहरीले माने जानेवाले प्राणिओं में भी अपने तक तो मैत्री भाव बराबर होता ही है। क्रोध में अन्धे बनकर चंड़कौशिक सर्प ने जब भगवान महावीर के चरणों को ड़स लिया, तब उसने सोचा कि 'मेरे विष से आक्रांत होकर अभी ही यह व्यक्ति नीचे गिर जायगा, परन्तु वह मेरे पर न गिर पड़े और मैं इससे दब न जाऊँ इसलिये मुझे दूर हो जाना चाहिये ऐसा सोच कर वह दूर हो गया। तात्पर्य यह है कि मैत्री आदि भाव अपने लिये तो सब में होते

---

१ अनिच्छान् कर्मवैषम्यं, ब्रह्मांशेन समं जगत्।
आत्माभेदेन यः पश्ये-दसौ मोक्षंगमी शमी ॥१॥
ज्ञानसार ६-२

हैं, इसलिये यह मैत्री आदि भाव नये प्रगटाने नहीं है परन्तु उनको स्व में से अर्थात् मात्र अपने ही स्वार्थभाव में से निकालकर सब तरफ फैलाना है। मैत्री आदि भावों को टाला नहीं जा सकता, परन्तु उन्हें जरूर योग्य दिशा में लेजाये जा सकते हैं, भगवान ने यह भाव सब जीवों तक फैलाया था। एक भी जीव को उसमें से बाकी नहीं रखा, इसीसे डसनेवाले चंड़कौशिक पर भी भगवान अपना मैत्री भाव—करुणाभाव अखण्ड रूप से टिका सके। महावीर भगवान की आत्मा में जगत के तमाम जोवों के प्रति आत्म-समदर्शित्व का भाव पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ था, जिससे उनके आत्मसमदर्शित्व भाव ने चंड़कौशिक सर्प जैसे घोराति-घोर अपराधी के हृदय में भी जादू का सा असर किया। क्रोधी सर्प में से भी स्वार्थभाव विलीन हो गया। प्रभु की करुणापूर्ण दृष्टि ने उसमें परहित चिन्ता का भाव ऐसा जागृत कर दिया कि प्राणांत होने तक भी सर्प का वह भाव नष्ट नहीं हुआ। मैत्री आदि भाव जहां तक अपने तक मर्यादित रहते हैं, अथवा स्वार्थ दृष्टि से जहाँ जहाँ अपनापन माना हो उतने पूरते ही मर्यादित रहते हैं, तब तक उसमें स्वार्थ भाव मुख्य होने से वह जहर स्वरूप बनते हैं और वे ही भाव निष्काम भाव से जब सब तरफ फैलते हैं, तब जोव का अजरामर स्वरूप बनानेवाले वे अमृततुल्य बन जाते हैं। जगत के जोवों के साथ निःस्वार्थ आत्मीय भाव जितने प्रमाण में विस्तार पाते हैं, उतने प्रमाण में ये मैत्री आदि भाव अपने आप विस्तार पाते हैं। अर्थात् मैत्री आदि भावों को विकसित करने का भी वास्तविक उपाय निःस्वार्थ

आत्मीय भाव का विस्तार करना है, यह आत्मीय भाव जब पराकाष्ठा को पहुँचता है. तब जगत के तमाम जीवों के साथ 'आत्मसमदर्शित्व' सहज हो जाता है ।

गुणस्थानक की दृष्टि से विचार करें तो संयतादि गुणठाणे ऐसा भाव तात्त्विक रीति से प्रगट होता है अर्थात् वहां आचरण पूर्वक का यह भाव होता है । अविरति सम्यग्दृष्टि गुणठाणे तात्त्विक रीति से आत्मसमदर्शित्व भाव की प्राप्ति के लिये तीव्र अभिलाषा होती है । और अपुनर्बंधक अवस्था में रहे हुए जीवों में यह भाव बीज रूप में होता है ।

श्री पंच परमेष्ठियों में यह भाव सम्पूर्ण रूप से प्रगट हो चुका है । उनको नमस्कार करने से, उनकी कृपा से अपने में भी यह भाव प्रगट होता है और स्थिर होता है । इस प्रकार श्री पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार करने में अपना मुख्य ध्येय अपनी आत्मा में आत्मदर्शित्व का भाव प्रगटाने का होना चाहिये । जैसे प्रज्वलित दीपक अपने आलम्बन से दूसरे अप्रज्वलित दीपक को भी जलाता है, उसी तरह परमेष्ठियों के आलम्बन से अपने में यह भाव प्रगट होता है । इसलिए यह भाव प्रगटाने के लिये जब अपन परमेष्ठियों को नमस्कार करते हैं तब अपना नमस्कार वास्तविक लक्ष्यपूर्वकवाला बनता है और यही खरा भाव नमस्कार है । यह नमस्कार मोक्ष का अवंध्य बीज है । अपनी आत्मा में उससे अवश्य मोक्ष का बीजारोपण होता है ।

शुद्ध अंतःकरण से सबके हित की इच्छा करना, सबके सुख की इच्छा करना, सबको क्षमा करना, सबसे क्षमा मांगना,

सबको परम मित्र मानना, सब के दुःख नाश हो ऐसी इच्छा करना, ये सब आत्मसमदर्शित्व का भाव विकसित करने के लिये जरूरी है।

अनादि असमदर्शित्व भाव को बदलने के लिए एकाग्रता और उपयोग पूर्वक पुरुषार्थ करके आत्मसमदर्शित्व का भाव विकसित करने की जरूरत है। मानव जीवन में यह सबसे श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। श्री अरिहंत परमात्मा की यह भाव भक्ति है। तमाम की भलाई की इच्छा करना, यह परमात्मा की सबसे इष्ट वस्तु थी। सब भगवन्तों का यह मुख्य आशय था। परमात्मा के इस आशय का अनुसरण करना यही भगवान की भक्ति का उत्तमोत्तम प्रकार है। अधिकार भेद से सेवित भक्ति के दूसरे तमाम तरीके भी इसी की सिद्धि के लिये हैं।

सारे जगत के तमाम जीवों के साथ जहां तक समदर्शिपन नहीं आता, तब तक जीव मोक्ष का सच्चा अधिकारी नहीं बन सकता। मोक्ष में अनन्त जीवों के साथ मिल जाना है। संसारी अवस्था में साधक को उसकी तालीम लेना है। अर्थात् जो अपने मन में जगत के तमाम जीवों को समा सकता है, उसी को मोक्ष का अधिकार मिलता है। मुमुक्षु आत्माओं के लिए यह अंतिम परीक्षा है। इसमें उत्तीर्ण होनेवाले को मोक्ष प्राप्तिरूप सर्वश्रेष्ठ इनाम मिलता है।

इस प्रकार महामंत्र श्रीनवकार में से अपने को मोक्ष के अनन्यकारणभूत अपने श्रेष्ठ कर्त्तव्यों की प्रेरणा मिलती है। यह महामंत्र तो सनातन सत्यों का भण्डार है। उन सत्यों को समझने का सद्भाग्य भी गुरु कृपा से ही प्राप्त होता है।

परमात्मसमदर्शित्व–महामंत्र की साधना के लिये साधक की चौथी योग्यता परमात्मदर्शित्वभाव है। परमात्म-समदर्शित्वभाव अर्थात् मेरी आत्मा परमात्मा के समान है ऐसा भाव। सिद्ध का जो स्वभाव है, वही साधक को योग्यता है।[1] जैसे बीज के विना वृक्ष नहीं होता, वैसे योग्यता बिना कोई भी प्रवृत्ति का फल नहीं मिल सकता।

"मेरी आत्मा परमात्मा के समान है" यह शुद्ध निश्चय-नय की भावना है और "जगत के तमाम जीव मेरी आत्मा के समान है, इसलिये उसे पीड़ा न हो ऐसा योग्य व्यवहार मुझे करना चाहिये।" यह शुद्ध व्यवहारनय की भावना है। निश्चय के लक्ष्यपूर्वक का शुद्ध व्यवहार जीव को मोक्षनगर में ले जाता है। अकेला व्यवहार या अकेला निश्चय मोक्ष साधन नहीं बन सकता। शुद्ध व्यवहार के पालन सिवाय सच्चा निश्चय कभी भी प्रगट नहीं हो सकता। इसलिए मोक्ष मार्ग में शुद्ध व्यवहार के पालन की प्रथम जरूरत रहती है। यह शुद्ध व्यवहार निश्चय का परिशोधक है।

जगत के तमाम जीव मेरी आत्मा के समान है, ऐसा आत्मसमदर्शित्वभाव आये बिना ही मेरी आत्मा परमात्मा के समान है ऐसा मानने मात्र से परमात्मापद की प्राप्ति नहीं होती, यह सच्चा परमात्मसमदर्शित्वपना भी नहीं है, किंतु वह एक प्रकार की भ्रमणा है, कारण बिना ही कार्य सिद्धि मान लेना जैसी अज्ञान चेष्टा है। इसलिये परमात्मसमदर्शित्व का भाव

---

१. सिद्धस्य हि स्वभावो यः सैव साधकयोग्यता।

—अध्यात्मसार:

आत्मा में प्रगटाने के लिये प्रथम तो जगत के तमाम जीवों के साथ आत्मसमदर्शित्वभाव प्रगटाने की खास जरूरत है। परमात्मसमदर्शित्वभाव प्रगटाने का यह सच्चा उपाय है।

महामंत्र नवकार में आत्मसमदर्शित्व और परमात्मसमदर्शित्व इन दोनों भावों का सुमेल सम्मिलित है। इसे समझे बिना और जीवन में उतारे बिना नवकार की साधना अधूरी रहती है। इसलिये ज्ञानियों की दृष्टि से नवकार साधना का अंतिम ध्येय इन दोनों भावों को जीवन में उतारना यह है। जब ये दोनों भाव जीवन में उतरते हैं तब महामंत्र की साधना सम्पूर्ण होती है। महामंत्र नवकार की साधना से किस तरह ये दोनों भाव जीवन में उतरते हैं, उस पर अब यहां विचार करते हैं।

नवकार की चूलिका में बताये माफिक नवकार का मुख्य प्रयोजन पापों को अटकाने का और मंगल की प्राप्ति कराने का है, परन्तु आत्मसमदर्शित्व आये बिना पाप रुकते नहीं और परमात्मसमदर्शित्व का भाव प्रगटे बिना आत्मलाभरूप मुख्य मंगल की प्राप्ति नहीं हो सकती। सब पापों का मूल आत्म-असमदर्शित्व है, सर्व अमंगलों का मूल परमात्म-असमदर्शित्व और सर्व मंगलों का मूल परमात्मसमदर्शित्व है। इससे नवकार की आराधना में मुख्य उद्देश्य 'आत्मसमदर्शित्व' और 'परमात्मसमदर्शित्व' के भाव को प्राप्त करना होना चाहिये। इसके परिणाम स्वरूप उभय लोक के सुख का लाभ होना यह महामन्त्र की साधना का फल है। इस प्रकार प्रयोजन और फल के बीच के अन्तर को ढूंढने से समझ में आयेगा कि नवकार गिनते समय पापनाश और मंगल का आगमन प्रयोजन

रूप रहना चाहिये। इन दोनों को लक्ष्य में रखकर नवकार गिनना.गिनाना चाहिये।

पापनाश का अर्थ यहां पाप बीज का नाश समझना है। पाप का बीज मतलब अनात्मसमदर्शित्व। मंगल का आगमन मतलब परमात्मपद की प्राप्ति। इसका बीज परमात्मसमदर्शित्व का भाव है। अंश से भी वह दोनों प्रकार का भाव जो नवकार की आराधना से नहीं विकसित हो तो नवकार निष्फल है। प्रयोजन बिना मंदबुद्धि भी प्रवृत्ति नहीं करता। इसलिये नवकार के दोनों प्रयोजन निश्चित करके उसकी आराधना हो, तब ही उस प्रवृत्ति में वेग आता है और उसके फल का सच्चा अधिकारी हो सकता है। अर्थात् इस तरह समझकर विधिपूर्वक आराधना किया गया महामन्त्र अवश्य मोक्ष सुख का हेतु बनता है और जब तक मोक्ष नहीं मिलता तब तक भी इस लोक में सर्वत्र प्रशस्त अर्थ, काम, आरोग्य और अभिरति (आनन्द मंगल) होती है। परलोक में भी देव अथवा मनुष्य की उत्तम गति, सुकुल और बोधि वगैरह को प्राप्त कराकर अन्त में सिद्धि के अनन्त सुख को देनेवाला होता है।*

"**नमस्कार चिंतामणि**" नाम के पुस्तक में प्रवेश करने के लिये यहां इतनी ही बात पर्याप्त है। साधना के लिये दूसरी विशेष समझ अलग २ स्थान पर इस पुस्तक में दी गई है। यह तमाम हकीकत मात्र ऊपर ऊपर से पढ़ने के लिये ही नहीं है, परन्तु महामन्त्र की साधना अपने जीवन में जहाँ तक सुदृढ़

---

* इहलोए अत्थकामा, आरुग्गमभिरई अ निप्पुत्ती।
सिद्धि अ सग्गसुकुलपच्चायाइ य परलोए ॥ १ ॥
(श्रीनमस्कार निर्युक्तिः)

नहीं बने तब तक नियमित इसका बार २ वाचन, तथा मनन और परिशीलन द्वारा इसका अभ्यास करना भी जरूरी है।

मेरे परोपकारी परमकृपालु पू. गुरु महाराज पंन्यासजी प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणीवर श्री के परम आशीर्वाद से और उन श्री की परम कृपा से यह कार्य निर्विघ्न पूरा हुआ है। इसमें जो कुछ अच्छा है यह सब उन्हीं से मिला हुआ है, —उनकी कृपा का फल है। उपरांत इस पुस्तक में दूसरे भी अनेक ग्रन्थों और लेखकों के वचनों का आधार लिया गया है। जिन २ ग्रन्थों व लेखकों के वचनों का आधार लेने में आया है, उन तमाम महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

जिन महापुरुषों ने इस महामन्त्र को अर्थरूप से प्रकाशित किया, जिन्होंने इस महामन्त्र को सूत्ररूप में गूंथा, जिन्होंने इस महामन्त्र को जीवन में उतारा, प्रचार किया और जिन्होंने अविच्छिन्न परम्परा से यहां तक पहुँचाया, उन तमाम महानुभावों को अनंतशः वन्दन !

इस पुस्तक में तथा प्रवेश नाम के प्रस्तुत लेख में मतिमन्दतादि के कारण कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हो तो इसके लिये मिच्छामि दुक्कडं देता हूँ।

अन्त में सब कोई नवकार के सच्चे आराधक बन, महामन्त्र की साधना में एक तार होकर स्व-पर का परम कल्याण साधनेवाले बने यही शुभेच्छा।

मुनि कुन्दकुन्दविजय

अभिप्राय–१

जैन कुल में उत्पन्न हुए व्यक्तिओं को महामंत्र की महिमा बारम्बार सुनने को मिलती है परन्तु वह अधिकांश में फल श्रुति रूप होती है। साधक स्वयं साधना में तीव्रता लाने के लिये आवश्यक ऐसी बहुत सी बातों से अनभिज्ञ होते हैं। इसलिये साधना करने पर भी वे उसका शास्त्रोक्त परिणाम नहीं ला सकते। साधना के लिये चार बातों की जानकारी अनिवार्य है। एक साधक, दूसरी साध्य, तीसरी साधना और चौथी उसका फल। इन चार बातों का ज्ञान साधक को भली भांति होना चाहिये। **नमस्कार चिंतामणि** नामक इस पुस्तक में इन चार बातों का ज्ञान अलग अलग रीति से बतलाने का प्रयास किया गया है।

साधक को महामंत्र की साधना के योग्य सदाचार आदि गुणों से युक्त होना चाहिये, साध्य अभीष्ट, अबाधित और सर्वश्रेष्ठ होना चाहिये, साधना शब्द, अर्थ दोनों से उपयोग सहित होनी चाहिये तथा उसका परम्पर फल एकांतिक, आत्यंतिक और अविनश्वर सुख स्वरूप मोक्ष होना चाहिये।

महामंत्र की साधना में उपयोगी इन चार बातों का बुद्धिग्राह्य और हृदयस्पर्शी वर्णन इस पुस्तक में बताया गया है। जिज्ञासु वर्ग इससे लाभ लेकर कृतार्थ बने यही अभिलाषा है।

पं. भद्रंकरविजय गणी

अभिप्राय–२

श्री नमस्कार महामंत्र की आराधना क्यों करना चाहिये, साधना में बल कैसे आवे तथा साधना उत्तम रीति से सफल कैसे हो, इन विषयों पर इस पुस्तक में लेखक मुनिराज श्री कुंदकुंदविजयजी ने इतने महत्त्वपूर्ण उपयोगो विषयों का समावेश किया है कि विविध रुचि रखने वाले विविध कोटि के साधकों को अपनी २ उपयोगी अनेक प्रकार की सामग्री इसमें मिल जाती है।

'नमस्कार का विशेष परिचय' नामक प्रकरण में **पुण्याङ् गजननी** इत्यादि नमस्कार के विशेषणों का विवेचन तथा नमस्कार महामंत्र की महिमा का वर्णन इतना भाववाही और रोचक है कि पढ़ने में अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है।

"साधना मार्ग में पथ्यापथ्य", "साधक जीवन और नियमितता," "दोषों को जीतने के उपाय" ये प्रकरण इतने सुन्दर तरीके से लिखे गये हैं कि केवल महामंत्र के साधकों को ही नहीं वरन् जो मनुष्य जीवन में अच्छा मानव बनना चाहता हो और जीवन को सुख शान्तिमय बनाना चाहता हो उसके लिये भी ये प्रकरण बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

विशेषता यह है कि यह पुस्तक लेखक की दीर्घकाल की देव गुरु की उपासना का परिणाम होने से पुस्तक का कितना ही भाग लेखक की अन्तरात्मा से निकलने से प्रवाह रूप बन गया है।

भाषा सरल होने के साथ-साथ सौम्य भाववाही और मधुर होने से पुस्तक आबाल वृद्ध सब के लिये उपयोगी हो ऐसी है।

इस प्रकार यह पुस्तक विविध रूप से उपयोगी होने से हर एक मनुष्य को घर में रखने योग्य है और वाचन मनन कर जीवन में उतारने जैसी है।

पूज्यपाद गुरुदेव मुनिराज, श्री भुवन विजयान्तेवासी

मुनि जम्बूविजय

प्रकाशकीय निवेदन

श्री जिनदत्तसूरि मण्डल द्वारा संचालित श्री जिनदत्तसूरि ज्ञान माला के बारहवें पुष्प के रूप में यह प्रकाशन प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है।

नवकार मंत्र का सम्बन्ध विश्वदृष्टि से कितना व्यापक और उच्च है, इस पर विचार कर यदि इसकी आराधना की जावे तो मनुष्य के प्राण और मन में नवकार अपना अभूतपूर्व प्रभाव स्थापित करने में समर्थ है।

आज की प्रजा में जिज्ञासा है, सद्भाव है, जानने की आतुरता है। धर्म में रहा हुआ इतना सुन्दर, इतना अद्भुत और जीवन में पग पग पर उपयोगी तत्त्व को समझकर मानव मात्र इससे लाभान्वित हो, यही इस प्रकाशन का उद्देश्य है।

परमपूज्य मुनिराज श्रीकुन्दकुन्दविजयजी महाराजश्री ने नमस्कार चिंतामणि नाम की इस पुस्तक में मंत्राधिराज श्री नवकार के प्रति श्रद्धा, भक्ति और आंतरिक पक्षपात प्रगटे उसके लिए विविध रीति से सरल और रोचक गुजराती भाषा में अनुमोदनीय तत्त्व प्रस्तुत किये हैं उसीका यह हिन्दी अनुवाद आपके समक्ष है।

श्री नवकार में कृतज्ञता, परार्थता, आत्मसमदर्शिता, और परमात्मसमदर्शिता का स्थान कैसा है, वह इस पुस्तक के 'प्रवेश' में विद्वान लेखक ने भली प्रकार स्पष्ट किया है।

महामंत्र की साधना के लिये यह पुस्तक भाग्यशालियों को श्री नवकार की साधना में पूरी तरह मार्गदर्शक और प्रेरक बनी रहेगी, यह इसमें वर्णित विषयों व उसकी स्पष्टता को देखकर बराबर समझा जा सकता है।

परमपूज्य पं. श्री भद्रंकरविजयजी गणिवरजी की मननीय प्रस्तावना तथा प. पू. मुनि जम्बूविजयजी म० सा० के दो शब्द भी महामंत्र की साधना में वेग लाने के लिये अवश्य उपयोगी सिद्ध होंगे।

इस अपूर्व पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशन करने की आज्ञा पू० मुनिराज श्रीकुन्दकुन्दविजयजी महाराज साहब ने प्रदान की, अतः हम उनके आभारी हैं।

नवकार साधना में उपयोगी सामग्री से समृद्ध यह पुस्तक हिन्दी भाषा भाषी जिज्ञासुओं के लिये उपयोगी सिद्ध हो तथा पाठकगण इससे लाभ उठावें यही अभिलाषा है।

चाँदमल सीपाणी
मंत्री
श्री जिनदत्तसूरि मण्डल,
दादावाड़ी, अजमेर

वसन्त पंचमी
सम्वत २०२५

॥ अर्हम् ॥

श्री नमस्कार महामंत्र

योग शास्त्र में श्रावक की दिनचर्या में सब से पहला कर्त्तव्य श्री नमस्कार महामन्त्र को स्मरण करने का बतलाया है :—

ब्राह्मे मुहूर्त उत्तिष्ठेत्, परमेष्ठिस्तुतिं पठन् ।

अर्थात् प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठ, निद्रा का त्याग कर परम मंगल के लिये श्री नवकार मंत्र का स्मरण करें।

अन्य जगह भी कहा है कि "निद्रा के बाद जागृत आत्मा मन में नवकार गिनते शय्या को छोड़े। भूमि पर खड़ा रह कर अथवा सुख पूर्वक बैठा जाय ऐसे आसन से बैठकर पूर्व, उत्तर अथवा जिस दिशा में जिन प्रतिमा हो, उस दिशा की तरफ मुंह कर के और चित्त की एकाग्रता के लिये कमल बंध से अथवा हस्तजापादि से नवकार मंत्र को गिने।"

जागृत होने के बाद सब से प्रथम श्री नवकार मन्त्र को स्मरण करने का विधान यह बताता है कि श्री नवकार मंत्र की आराधना श्रेष्ठ ऐसे मानव जीवन में हरेक से बन सके ऐसी एक मुख्य और अत्यन्त महत्व की क्रिया है। यहां सब से प्रथम महामंत्र बता कर पीछे उस सम्बन्धी प्रयोजनभूत उपयोगी हकीकत बतायेंगे।

श्री पंच परमेष्ठी नमस्कार महामंत्र

नमो अरिहंताणं ॥१॥

नमो सिद्धाणं ॥२॥

नमो आयरियाणं ॥ ३॥

नमो उवज्झायाणं ॥४॥

नमो लोए सव्वसाहूणं ॥५॥

एसो पंचनमुक्कारो ॥६॥

सव्वपावप्पणासणो ॥७॥

मंगलाणं च सव्वेसिं ॥८॥

पढमं हवइ मंगलं ॥९॥

श्री नवकार मंत्र के जाप की पूर्व भूमिका

मकान की नींव यदि मजबूत हो तब ही मकान टिक सकता है और उसमें रहनेवाले मनुष्य निर्भयता से रह सकते हैं। उसी प्रकार श्री नमस्कार महामंत्र के जाप में चित्त को स्थिर करने के लिये उसके पाये के उपयोगी प्रयोजनभूत गुणों को बराबर दृढ़ बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। अर्थात् उन गुणों को समझ कर, विचार कर उसे जीवन में उतारने के लिये रात दिन प्रयत्न करना जरूरी है, यदि इस प्रकार विधि पूर्वक महामंत्र का जाप किया जाय तो महामंत्र के जाप की महिमा शास्त्रों में जिस प्रकार वर्णित की गई है, उसका साधक को क्रमशः अनुभव हुए बिना न रहेगा। अब यहाँ पर जाप के पहले **पूर्ण सेवा** के रूप में कितनी ही आवश्यक बातों का संक्षेप में विचार करेंगे।

वस्त्र पर रंग चढ़ाने के लिए प्रथम वस्त्र को धोकर स्वच्छ करना जरूरी होता है, उसी तरह महामंत्र का रंग अपनी आत्मा पर चढ़ाने के लिए हृदय की शुद्धि और उसके लिए कितने ही योग्य बाह्य नियम खास जरूरी हैं। श्री नमस्कार महामंत्र के जाप प्रिय अर्थी साधक की साधना में अति उपयोगी हकीकत यहां बतलाई जाती है।

हर रोज साधना शुरु करने से पहले साधक को श्री नमस्कार महामंत्र के महिमा वाले थोड़े मन पसंद श्लोकों द्वारा श्री नमस्कार महामंत्र की महिमा हृदय में स्थापित करना चाहिए। किस प्रकार के श्लोक बोलना चाहिये, इसे दृष्टि में रख कर थोड़े श्लोक यहां दिये जाते हैं। साधक को इनमें से अथवा श्री नमस्कार महामंत्र के महिमा वाले दूसरे स्तोत्रों में से अपनी रुचि के अनुसार पसंद कर उन्हें कंठाग्र कर लेना चाहिए। उनके अर्थ को भी समझ कर जाप की शुरुआत करने से पहले शुभ भावना पूर्वक शांत चित्त से अर्थ को ध्यान में रख कर उन श्लोकों को बोलें उदाहरण के लिये थोड़े पद्य यहां दिए जाते हैं।

धन्नोहं जेण मए, अणोरपारम्मि भवसमुद्दम्मि।
पंचण्ह नमुक्कारो, अचिंतचिंतामणी पत्तो ॥१॥

मैं धन्य हूँ कि मुझे अनादि अनंत भवसमुद्र में अचिंत्य चिंतामणि ऐसा पंचपरमेष्ठिओं का नमस्कार प्राप्त हुआ।

जिणसासणस्स सारो, चउदसपुव्वाण जो समुद्धारो
जस्स मणे नवकारो, संसारो तस्स किं कुणइ ? ॥२॥

श्री नवकार जिन शासन का सार है, चवदह पूर्व का सम्यग् उद्धार है, नवकार जिसके मन में स्थिर है, संसार उसका क्या कर सकता है ? अर्थात् कुछ भी करने में समर्थ नहीं है।

सेयाणं परं सेयं, मंगल्लाणं च परममंगल्लं।
पुन्नाणं परमपुन्नं, फलं फलाणं परमरम्मं ॥३॥

नमस्कार सर्व श्रेयस्कर पदार्थों में परम श्रेयस्कर है, सर्व मांगलिकों में परम मांगलिक है, सर्व पुण्यों में परम पुण्य है, और सर्व फलों में परम सुन्दर फल है।

थंभेइ जलं जलणं, चिंतियमित्तोवि पंचनवकारो।
अरिमारिचोरराउलघोरुवसग्गं पणासेइ ॥४॥

पंच नवकार गिनने मात्र से ही वह जल और अग्नि को थंभा देता है, तथा अरि, मारि, चोर और राजाओं के घोर उपसर्गों का पूरी तरह नाश करता है।

हरइ दुहं कुणइ सुहं, जणइ जसं सोसए भवसमुद्दं।
इहलोयपारलोइय-सुहाण मूलं नमुक्कारो ॥५॥

श्री नमस्कार महामंत्र दुःख को हरता है, सुख देता है, यश की प्राप्ति कराता है, भवसमुद्र का शोषण करता है, तथा इस लोक और परलोक के सब ही प्रकार के सुखों का दाता है।

नवकार एक अक्खर. पावं फेडेइ सत्तअयराणं।
पन्नासं च पएणं. सागर पणसय समग्गेणं ॥ ६ ॥

श्री नवकार मंत्र का एक अक्षर सात सागरोपम के पाप का नाश करता है, श्री नवकार मंत्र के एक पद से पचास सागरोपम के पाप का नाश होता है और पूरे नवकार से पांच सौ सागरोपम के पाप का नाश होता है।

जो गुणइ लक्खमेगं, पूएइ विहीइ जिणनमुक्कारं।
तित्थयरनामगोअं, सो बंधइ नत्थि संदेहो ॥ ७ ॥

जो नवकार को विधिपूर्वक एक लाख बार गिनता है,

वह तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन करता है इसमें किंचित भी संदेह नहीं है।

इक्कोवि नमुक्कारो, परमेठ्ठीणं पगिट्ठभावाओ ।
सयलं किलेसजालं, जलं व पवणो पणुल्लेइ ॥ ८ ॥

उत्कृष्ट भाव से पंचपरमेष्ठिओं को किया गया एक नमस्कार, जिस तरह पवन जल का शोषण कर लेता है, उसी प्रकार सब क्लेश जाल को दूर कर देता है।

पंचनमुक्कारेण समं, अंते वच्चंति जस्स दस पाणा ।
सो जइ न जाइ मुक्खं, अवस्स वेमाणिओ होइ ॥९॥

अंत समय में जिसके दश प्राण पंच नमस्कार की साथ जाते हैं वह मोक्ष को प्राप्त करता है। यदि अन्य कारणों की न्यूनता से कदाचित मोक्ष को प्राप्त न कर सके तब भी वह वैमानिक देवता अवश्य होता है अर्थात् विमानाधिपति देव होता है।

जे केइ गया मुक्खं, गच्छंति य केवि कम्ममलमुक्का ।
ते सव्वे च्चिय जाणसु, जिण नवकारप्पभावेण ॥१०॥

कर्मफल रहित होकर जो कोई आज तक मोक्ष गये हैं और जा रहे हैं वे सब भी श्री नवकार के प्रभाव से ही जाते हैं, ऐसा समझना।

पणव हरिया रिहा, इह मंतह बीआणि सप्पहावाणि ।
सव्वेसिं तेसिं मूलो, इक्को नवकारवरमंतो ॥११॥

प्रणव अर्थात् ॐकार, माया अर्थात् ह्रींकार और अर्हम्

आदि जो प्रभावशाली बीजमंत्र हैं उन सब में मूल एक प्रवर नवकार मंत्र है अर्थात् ॐ ह्रीं अर्हम् वगैरह बीज मंत्रों के मूल में श्री नवकार मंत्र ही है।

ऐसो मंगलनिलओ भवविलओ सयलसंघ सुहजणओ।
नवकार परममंतो चिंतिप्पमित्तो सुहं देइ ॥ १२ ॥

परममंत्र रूप यह नवकार मंगल का घर है, यह राग, द्वेष रूप संसार को विलय करनेवाला है, सकल संघ को सुख उपजानेवाला है, चिंतन करने मात्र से सुख को देने वाला है।

ताव न जायइ चित्तेण, चिंतियं पत्थिअं च वायाए।
काएण समाढत्तं, जाव न सरिओ नमुक्कारो ॥१३॥

चित्त से चिंतवन किया गया, वचन से प्रार्थना किया गया और शरीर से प्रारम्भ किया गया काम तब तक सिद्ध नहीं होता जब तक की श्री पंच परमेष्ठी नमस्कार का स्मरण नहीं किया जावे।

भोअणसमए सयणे, विवोहणे पवेसणे भए वसणे।
पंचनमुक्कारं खलु, समरिज्जा सव्वकालम्मि ॥१४॥

भोजन के समय, शयन के समय, उठने के समय, प्रवेश के समय, भय के समय, कष्ट के समय, इस तरह सब समय अवश्य पंच नमस्कार का स्मरण करना चाहिए।

जं किंचि परमतत्तं, परमपयकारणं च जं किंचि।
तत्थ वि सो नवकारो, झाइज्जइ परमजोगिहिं ॥१५॥

यदि कोई परम तत्त्व है और कोई परमपद का कारण है तो उसमें भी परम योगियों द्वारा इस नवकार का ही ध्यान किया जाता है।

एनमेव महामन्त्रं समाराध्येह योगिनः।
त्रिलोक्यापि महीयन्ते-ऽधिगताः परमां श्रियम् ॥१६॥

योगी पुरुष इसी नवकार मंत्र की सम्यग् रीति से आराधना कर परम आत्म लक्ष्मी अर्थात् केवलज्ञानादि को प्राप्त कर तीनों लोक में पूजे जाते हैं।

कृत्वा पापसहस्राणि, हत्वा जंतुशतानि च।
अमुं मंत्रं समाराध्य, तिर्यञ्चोपि दिवं गताः ॥१७॥

हजारों पाप करनेवाले तथा सैकड़ों जंतुओं की हत्या करनेवाले तिर्यंच भी इस मंत्र की विधिवत् आराधना कर स्वर्ग गये हैं।

अहो पंच नमस्कारः, कोप्युदारो जगत्सु यः।
संपदोऽष्टौ स्वयं धत्ते, दत्तेऽनन्तास्तु ताः सताम् ॥१८॥

अहो! इस जगत में पंच नमस्कार इतना विशिष्ट उदार है कि वह स्वयं आठ संपदा को धारण करनेवाला है फिर भी सत्पुरुषों को अनन्त संपदाओं को देता है।

त्वं मे माता पिता नेता, देवो धर्मो गुरुः परः।
प्राणाः स्वर्गोऽपवर्गश्च, सत्त्वं तत्त्वं मतिर्गतिः ॥१९॥

तू मेरे लिये उत्कृष्ट माता है, पिता है, नेता है, देव है, धर्म है, गुरु है, प्राण है, स्वर्ग है, अपवर्ग है, सत्त्व है, तत्त्व है, मति है और गति है।

मन्त्रं संसारसारं, त्रिजगदनुपमं, सर्वपापारिमंत्रं,
संसारोच्छेदमन्त्रं, विषमविषहरं कर्मनिर्मूलमन्त्रम् ।
मन्त्रं सिद्धिप्रदानं, शिवसुखजननं, केवलज्ञानमन्त्रं,
मंत्रं श्रीजैन-मंत्रं, जप जप जपितं, जन्मनिर्वाणमंत्रम् ॥२०॥

संसार में महामन्त्र श्री नवकार सारभूत मन्त्र है, तीनों जगत में अनुपम है, सब पापों का नाश करनेवाला है, राग द्वेष रूप संसार का उच्छेद करनेवाला है, विषम प्रकार के विष को हरनेवाला है, कर्मों से निर्मूल करनेवाला है, सिद्धि को देनेवाला है, शिवसुख का कारण है, केवलज्ञान की प्राप्ति करानेवाला है । अतः हे भव्यो ! इस प्रकार की अद्भुत् सामर्थ्य वाले परमेष्ठी मंत्र का बारंबार जाप करो । यह नमस्कार महामन्त्र जन्म मरण के जंजाल से जीवों को छुडानेवाला है ।

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः ।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥२१॥

इंद्रों द्वारा पूज्य ऐसे अरिहन्त भगवान, सिद्धि स्थान में रहनेवाले सिद्ध भगवान, जिन शासन की उन्नति करनेवाले पूज्य आचार्य भगवान, श्री सिद्धान्तों का भली प्रकार अभ्यास करानेवाले उपाध्याय भगवान और रत्नत्रय को धारण करनेवाले मुनिवृंद, ये पांचों परमेष्ठी भगवन्ता प्रतिदिन तुम्हारा कल्याण करें ।

नमस्कार अरिहंतने, वासित जेहनुं चित्त ।
धन्य तेह कृतपुण्य ते, जीवित तास पवित्त ॥
आर्तध्यान तस नवि हुए, नवि हुए दुरगतिवास ।
भवक्षय करतां रे समरतां, लहीए सुकृत अभ्यास ॥२२॥

(इसी प्रकार "नमस्कार सिद्ध ने" आदि पद जोड कर यह २२वां काव्य पांचों परमेष्ठियों के लिये बोला जा सकता है)

पंच नमस्कार ए सुप्रकाश ।
एहथी होये सवि पाप नाश ॥
सर्व मङ्गल तणुं एह मूल ।
सुजश विद्या विवेकानुकूल ॥२३॥
अरिहंतादि सुनवह पद, निज मन धरे जो कोई ।
निश्चय तसु नरसेहरह, मनवांछिय फल होई ॥२४॥
अशुभ करमको हरणकुं, मंत्र बड़ो नवकार ।
वाणी द्वादश अंग में, देख लीओ तत्त्व सार ॥२५॥
शुभ मानस-मानस करी, ध्यान अमृतरस रेलि ।
नवदल श्री नवकार पय, करी कमलासन केलि ॥२६॥
पातक पंक पखालोने, करी संवरनी पाल ।
परमहंस पदवी भजो, छोड़ी सकल जंजाल ॥२७॥
रात्रि तणी सुख निद्रा त्यागी, जेवुं मनडुं जागे ।
ध्यान धरो अरिहंततणुं सौ, तन मन ने शुभ लागे ॥२८॥

नमस्कार महामंत्र ने रटतां, प्रातम शुभ रस जागे।
दिनभरनी शुभ करणीमांहे, जय सुख डंका वागे ॥२६॥

श्री नवकार के प्रति प्रेम जागृत करनेवाले काव्य यहाँ उद्धृत किये गये हैं। नवकार के प्रति अपने भाव जागृत करने के कई तरीके हैं, उनमें से यह भी एक है।

जिनको संस्कृत और प्राकृत भाषा का ज्ञान नहीं है वे भी प्रतिदिन भावना रूप में अपने अंतर में श्री नवकार के प्रति अपनी प्रीति जागृत कर सके उन भाग्यशालियों के लिये अब यहाँ सरल भाषा में श्री नवकार की भावना प्रस्तुत की जाती है। श्री नवकार महामन्त्र गिननेवालों को अपने हृदय में कैसी भावना रखनी चाहिये वह इससे मालूम हो सकेगी।

श्री नमस्कार भावना

अहो ! आज मेरे रोम-रोम में अमृत सिंचित हुआ है। आज मेरा महान् पुण्य जागृत हुआ है कि जिसके कारण यह पंच परमेष्ठि नमस्कार मन्त्र गिनने का मुझे भावोल्लास हुआ है। आज मैं भवसमुद्र को पार करने योग्य हुआ हूँ। अन्यथा कहां मैं, कहां यह नवकार और कहां मेरा उसके साथ समागम ?

अनादि काल से मेरी आत्मा अज्ञानता आदि के कारण संसार में भ्रमण कर रही है। आज मुझे परम शरण की प्राप्ति हुई है। क्योंकि पंच परमेष्ठियों को किया हुआ नमस्कार ही संसार में भटकते हुए मेरी आत्मा के लिये शरण रूप है।

अहो ! आज मुझे दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति हुई है। अहो ! मुझे प्रिय वस्तु का समागम हुआ है। अहो ! मुझे तत्त्व का प्रकाश हुआ है, आज मेरे कष्टों का अंत हुआ है, मेरे पापों का नाश हुआ है। श्री नवकार मन्त्र की प्राप्ति से आज मेरा प्रशम-रस, देवगुरु की आज्ञा का पालन, नियम और तप ये सब सफल हुए हैं।

अहो ! क्या यह नवकार महा रत्न है ? अथवा चिंता-मणि रत्न के समान है ; अथवा कल्पवृक्ष के समान है ? नहीं-नहीं ! नवकार तो इन सब से भी अधिक बड़ा है। कारण चिंतामणि वगैरह तो एक जन्म में ही सुख को देने वाले है, जबकि नवकार तो स्वर्ग और अपवर्ग को देनेवाला है, मुक्ति प्राप्त न हो तब तक भव-भव में सुख देनेवाला है।

हे आत्मा ! पहाड़ को जड़ से उखाड़ना भी कठिन नहीं, देवलोक के सुख प्राप्त करना भी कठिन नहीं, कठिन तो भावपूर्वक नमस्कार की प्राप्ति है क्योंकि मंद पुण्यवाले जीवों को संसार में कभी भी नवकार की प्राप्ति नहीं होती। यह भाव नमस्कार असंख्य दुःखों का नाश करनेवाला है। इस लोक और परलोक के सुखों के लिये कामधेनु गाय के समान है। इसलिये हे आत्मा ! तू आदरपूर्वक इस मंत्र का जाप कर !

हे मित्र मन ! सरलभाव से बारंबार तुझे प्रार्थना करता हूँ कि संसार समुद्र को पार करने के लिये जहाज

समान इस नमस्कार मंत्र को गिनने में जरा भी प्रमाद मत कर। यह भाव नमस्कार उत्कृष्ट सर्वोत्तम तेज है, स्वर्ग व मोक्ष का सच्चा मार्ग है, तथा दुर्गति का नाश करने में प्रलय काल के पवन के समान है। तीनों लोक की लक्ष्मी सुलभ है, अष्ट सिद्धियाँ सुलभ हैं परंतु महामंत्र नवकार की प्राप्ति दुर्लभ है। इसलिये हे आत्मा ! इस नवकार को परम शरण रूप मान कर उस पर अत्यंत आदर और बहुमान रख उसमें तन्मय हो कर उसका स्मरण कर।

तीनों जगत के सर्व मंगल श्रीनवकार के आधीन है। परमज्ञानी भगवंतों द्वारा कहे गये सूत्र के रहस्य को समझने में जो भव्यात्मा भाग्यशाली होता है, वह कालान्तर में भी दूसरे किसी आलंबन का आग्रही नहीं बनता। क्योंकि श्रीनवकार से बाहर कोई वस्तु नहीं है। जगत में जो कोई सार रूप है, वह सब नवकार में ही है। ऐसे नवकार से दूर रहनेवाले से मुक्ति सदा दूर रहती है और सांसारिक स्वर्गादि सुख भी उससे विमुख रहते हैं।

मैत्री आदि भावनागर्भित श्लोक

श्री नमस्कार महिमागर्भित काव्यों आदि से परिपूर्ण होने के बाद मैत्री आदि भावना युक्त होना चाहिये। इसके लिये श्री नवकार मंत्र के साधक को उपयोगी ऐसे मैत्री आदि भावना गर्भित श्लोक यहां प्रस्तुत किये जाते हैं। इनमें से रुचि के अनुसार श्लोकों को पसंद कर उन्हें कंठाग्र कर लेना चाहिये। उनके अर्थ भी समझ लेना चाहिए। जाप प्रारम्भ करने से पहले अर्थ को ध्यान में रख कर उन्हें मधुर-वाणी से बोलना चाहिए।

खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती में सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणइ ॥ १ ॥

जगत के सब जीवों को में क्षमाता हूँ—अर्थात् उनसे मैं अपने अपराधों की माफी मांगता हूँ। सब जीव मुझे क्षमा करें, यही प्रार्थना है। मेरा सब जीवों के साथ मैत्री भाव है, किसी के साथ मेरा वैर-विरोध नहीं है।

शिवमस्तु सर्व जगतः, परिहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखीभवतु लोकः ॥ २ ॥

जगत के सब जीवों का कल्याण हो, संसार के प्राणी समूह परहित में निरत हों, सब के सब दोषों का नाश हो और सर्वत्र सब लोग सुखी हों।

परहित-चिंता मैत्री, परदुःखविनाशिनी तथा करुणा ।
परसुखतुष्टिर्मुदिता, परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥३॥

दूसरों के हित की चिंता करना यह मैत्री भावना है, दूसरे के दुःखों को दूर करने की भावना करुणा भावना हैं, दूसरे जीव सुखी हों इसमें संतोष हो यह प्रमोद भावना है और दूसरों के दोषों की उपेक्षा करना यह मध्यस्थ भावना है ।

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥४॥

विश्व के सब ही प्राणी सुखी रहें, सब ही निरोगी रहें, सब ही प्राणियों का कल्याण हो, किसी को दुःख न हो ।

मा कार्षीत् कोपि पापानि, मा च भूत् कोपि दुःखितः ।
मुच्यतां जगदप्येषा, मतिर्मैत्री निगद्यते ॥५॥

कोई प्राणी पाप न करे, कोई जीव दुखी न हो, सम्पूर्ण संसार कर्म बंधन से मुक्त हो अर्थात् मोक्ष प्राप्त करनेवाले हों, ऐसी बुद्धि को मैत्री भावना कहते हैं ।

अपास्ताशेषदोषाणां, वस्तुतत्त्वावलोकिनाम् ।
गुणेषु पक्षपातो यः, स प्रमोदः प्रकीर्तितः ॥६॥

जिसने सब दोषों को दूर किया है और जो वस्तु तत्त्व को वास्तविक रूप में देख रहा है, उसके गुणों के प्रति पक्षपात-स्वाभाविक आकर्षण होना प्रमोद भावना कहलाती है ।

दिनेष्वार्तेषु भीतेषु, याचमानेषु जीवितम् ।
प्रतिकारपरा बुद्धिः, कारुण्यमभिधीयते ॥७॥

दीन दुःखी, भय से आकुल व्याकुल और जीवितव्य को याचनेवाला, प्राणियों के दुःखों को दूर करनेवाली बुद्धि करुणा भावना है । ७ ।

क्रुरकर्मसु निःशंकं, देवतागुरुनिंदिषु ।
आत्मशंसिषु योपेक्षा, तन्माध्यस्थ्यमुदीरितम् ॥८॥

निःशंक भाव से क्रूर कर्म करनेवाला, देव और गुरु की निंदा करनेवाला और अपनी स्वयं की प्रशंसा करने वाला, प्राणियोंकी तरफ उपेक्षा बुद्धि, मध्यस्थ भावना कहलाती है । ८ ।

मैत्रीपवित्रपात्राय, मुदितामोदशालिने ।
कृपोपेक्षाप्रतीक्षाय, तुभ्यं योगात्मने नमः ॥९॥

मैत्री के परम भाजनभूत, मुदिता से प्राप्त हुए सदानंद से शोभायमान, और करुणा तथा मध्यस्थ भावना से जगत पूज्य बने हुए योगस्वरूप हे वीतराग ! आपको मेरा नमस्कार हो । ९ ।

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
मध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ।१०।

हे देव ! मेरी आत्मा सदैव जगत के सर्व जीवों के प्रति मैत्री भावना, गुणवान आत्माओं के प्रति प्रमोद भावना दुखी जीवों के प्रति करुणा भावना और पापी जीवों के प्रति मध्यस्थ भावना रखे ऐसी मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ ॥१०॥

दुःस्थां भवस्थितिं स्थेम्ना, सर्वजीवेषु चिन्तयन् ।
निसर्गसुखसर्गं ते-ऽपवर्गं विमार्गयेत् ॥११॥

यह भवस्थिति अत्यंत दुःखदायक है, इसलिए साधना करते समय उपासक सर्व जीवों के प्रति यही विचार करे कि जहां स्वाभाविक सुख की सृष्टि है, ऐसा मोक्ष सब को मिले ।११।

विश्वजन्तुषु यदि क्षणमेकं,साम्यतो भजसि मानस मैत्रीम् ।
तत्सुखं परममत्र परत्रा-प्यस्नुषे न यदभूत्तव जातु ॥१२॥

हे मन ! यदि तू सर्व प्राणियों पर समतापूर्वक एक क्षण भी परहित चिंता रूपी मैत्री भावना भावेगा तो तुझे इस भव और परभव दोनों में ऐसा सुख प्राप्त होगा जिसका तूने कभी अनुभव भी नहीं किया होगा ।१२।

नन्दन्तु सर्वभूतानि, स्निह्यन्तु विजनेष्वपि ।
स्वस्त्यस्तु सर्वभूतेषु, निरातङ्कानि सन्तु च ॥१३॥

प्रत्येक प्राणी आनन्दित हो ! दुश्मन पर भी स्नेह भाव हो ! सब जीवों का कल्याण हो ! सब निरोगी रहें ।१३।

मा व्याधिरस्तु भूताना-माधयो न भवन्तु च ।
मैत्रीमशेष-भूतानि पुष्यन्तु सकले जने ॥१४॥

किसी प्राणी को दुःख न हो ! किसी को मानसिक चिंता न हो ! सब जीव-प्राणी मात्र के साथ मैत्री भाव पुष्ट करे।१४।

यो मेऽद्य स्निह्यते तस्य, शिवमस्तु सदा भुवि ।
यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपि भद्राणि पश्यतु।१५।

जो मेरे पर स्नेह करते हैं, उनका हमेशा कल्याण हो ! परन्तु जो मेरे साथ द्वेष रखते हैं उनका भी कल्याण हो ।१५।

एकेन्द्रियाद्या अपि हन्त जीवाः, पञ्चेन्द्रियत्वाद्यधिगत्य सम्यक् ।
बोधिं समाराध्य कदा लभन्ते, भूयो भवभ्रांतिभियां विरामम् ॥१६॥

एकेन्द्रिय आदि जीव भी कब पंचेन्द्रिय जीव का रूप धारण कर अच्छी तरह बोधि-बीज की आराधना कर (प्रभु शासन की बराबर आराधना कर) कब भ्रमण से छुटकारा पायगा ?।१६।

या रागरोषादिरूजो जनानां,शाम्यन्तु वाक्कायमनोद्रुहस्ताः ।
सर्वेप्युदासीन-रसं रसन्तुः सर्वत्र सर्वे सुखिनो भवन्तु ॥१७॥

जगत के सब प्राणियों की रागद्वेषादि से उत्पन्न मन वचन और काया की पीड़ा शांत हो ! सब मध्यस्थ भावना के आनन्द को प्राप्त करे ! सब जगह के सब जीव सुखी हों । १७ ।

तत्त्वं धर्मस्य सुस्पष्टं, मैत्रीभावविकासनम् ।
परोपकारनिर्माणं, शमवृत्तेरुपासनम् ॥ १८ ॥

मैत्री भाव का विकास करना, परोपकार का निर्माण और उपशम भाव की उपासना करना यही संक्षेप में धर्म का अति स्पष्ट रहस्य है । १८ ।

मैत्र्यादिभावयोगेन, शुभध्यानप्रभावतः ।
सुखंसुखेन प्राप्नोति, जीवो मोक्षं न संशयः ॥१९॥

मैत्री आदि भावनाओं से तथा शुभ ध्यान के प्रभाव से जीव अत्यंत सुखपूर्वक मोक्ष प्राप्त करता है, इसमें जरा भी संदेह नहीं । १९ ।

धर्मस्य विजयो भूयाद्, अधर्मस्य पराभवः ।
सद्भावना प्राणभूतां, भूयाद् विश्वस्य मंगलम् ॥२०॥

धर्म की विजय हो, अधर्म की पराजय हो, सब प्राणी शुभ भावनावाले बनें और सारे विश्व का कल्याण हो ।२०।

खमावुं बधा जीव ने आज प्रीते,
खमो ते बधा मुजने सर्व रीते;
बधा जीवमां मित्रताने प्रसारूं,
नथी कोई साथे हवे वेर मारूं ॥२१॥
बधा विश्वनुं थाव कल्याण आजे,
बनो सज्ज सौ पारका हित काजे;
बधा दूषणो सर्वथा नाश पामो,
जनो सर्व रीते सुखो मांहि जामो ॥२२॥
सौ प्राणी आ संसारना, सन्मित्र मुज वहाला हजो;
सद्गुणमां आनन्द मानुं, मित्र के वैरी हजो;
दुखिया प्रति करुणा अने, दुश्मन प्रति मध्यस्थता,
शुभ भावना प्रभु चार आ, पामो हृदयमां स्थिरता।२३।
गुणीजनोको वन्दना, अवगुण देख मध्यस्थ,
दुःखी देखी करुणा करो, मैत्री भाव समस्त ।२४।

ऊपर जो काव्य बताये हैं उनमें से रुचि के अनुसार श्लोकों को पसंद कर थोड़ी देर उनका चिंतन कर मैत्री आदि भावना से ओत प्रोत होवें। बाद में वज्र पंजर स्तोत्र से आत्म रक्षा करना।

श्री आत्म रक्षाकर वज्रपञ्जराख्य महास्तोत्रम्

(श्री नमस्कार महामंत्र का विधि पूर्वक जाप करने वाले महानुभाव पुण्यात्मा जाप के प्रारम्भ में इस स्तोत्र द्वारा मुद्राओं सहित स्व शरीर की रक्षा करें। मुद्राएं गुरुगम से सीखें। आत्मरक्षा पूर्वक जाप करने से अनेक लाभ होते हैं)

ॐ परमेष्ठिनमस्कारं, सारं नवपदात्मकम्।
आत्मरक्षाकरं वज्र-पञ्जराभं स्मराम्यहम् ॥१॥
ॐ नमो अरिहंताणं, शिरस्कं शिरसिस्थितम्।
ॐ नमो सव्वसिद्धाणं, मुखे मुखपटं वरम् ॥२॥
ॐ नमो आयरियाणं, अंगरक्षातिशायिनी।
ॐ नमो उवज्झायाणं, आयुधं हस्तयोर्दृढम् ॥३॥
ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं, मोचके पादयोः शुभे।
एसो पंचनमुक्कारो, शिला वज्रमयी तले ॥४॥
सव्वपावप्पणासणो, वप्रो वज्रमयो बहिः।
मंगलाणं च सव्वेसिं, खादिरांगारखातिका ॥५॥
स्वाहान्तं च पदं ज्ञेयं, पढमं हवइ मंगलं।
वप्रोपरि वज्रमयं पिधानं देहरक्षणे ॥६॥

महाप्रभावा रक्षेयं, क्षुद्रोपद्रवनाशिनी ।
परमेष्ठिपदोद्भूता, कथितापूर्वसूरिभिः ॥७॥
यश्चेवं कुरुते रक्षां, परमेष्ठिपदैः सदा ।
तस्त न स्याद् भयं व्याधि-राधिश्चापि कदाचन ॥८॥

भावार्थ—नवपद स्वरूप और जगत का सारभूत यह परमेष्ठी नमस्कार, आत्मरक्षा के लिये वज्रपिंजर के समान है, उसका मैं स्मरण करता हूँ ॥ १ ॥

ॐ नमो अरिहंताणं । यह मंत्र मुकुट के रूप में मस्तक पर रहा हुआ है, ऐसा समझना (रक्षा करते समय मस्तक को हाथ से स्पर्श करना) और **'ॐनमो सव्वसिद्धाणं'** यह मंत्र मुंह पर श्रेष्ठ वस्त्र के रूप में रहा हुआ है, ऐसा समझना । (बोलते समय मुख को हाथ से स्पर्श करना) ॥२॥

ॐ नमो आयरियाणं । इस मंत्र को अतिशायी अंगरक्षक की तरह समझना । (बोलते समय शरीर को हाथ से स्पर्श करना) और **ॐ नमो उवज्झायाणं ।** इस मंत्र को दोनों हाथ में रहे हुए मजबूत शस्त्र की तरह समझना । (बोलते समय दोनों हाथ में शस्त्र पकड़ने की चेष्टा करना) । ३ ।

ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं इस मंत्र को पैर के मंगलकारी पावपोश समझना । (बोलते समय दोनों पैरों के नीचे के भाग को स्पर्श करना) और **एसो पंचनमुक्कारो ।** इस मंत्र को पैर के नीचे की वज्रशिला के समान समझना । बोलते समय जिस आसन पर बैठे हों उसे दोनों हाथ से

स्पर्श करना और मन में यह सोचना कि मैं वज्रशीला पर बैठा हूँ जिससे जमीन में से अथवा पाताल लोक में से मेरे को किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो। ४।

सव्व-पावप्पणासणो। इस मंत्र को चारों दिशाओं में वज्रमय किले की तरह समझना। (बोलते समय यह सोचे कि मेरे चारों तरफ वज्र का किला है। दोनों हाथ से चारों तरफ कल्पना करते हुए अंगुली घुमाना) **मंगलाणं च सव्वेसिं**। इस मंत्र को खेर की लकड़ी के अंगारे की खाई समझना। (बोलते समय यह सोचना कि किले के बाहर चारों तरफ खेर की लकड़ी के अंगारे से खाई भरी हुई है)। ५।

पढमं हवइ मंगलं। इस मंत्र को किले के ऊपर वज्रमय ढक्कन समझना। (बोलते समय हाथ को मस्तक पर रख कर विचार करना कि वज्रमय किले के ऊपर आत्मरक्षा के लिये वज्रमय ढक्कन है) (इस पद के अन्त में स्वाहा मन्त्र भी समझ लेना चाहिये)

परमेष्ठी पदों से प्रगट हुई महाप्रभावशाली यह रक्षा सब उपद्रवों का नाश करनेवाली है, ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है। ७।

परमेष्ठी पदों के द्वारा इस प्रकार जो निरंतर आत्मरक्षा करते हैं, उन्हें किसी भी प्रकार का भय, शारीरिक व्याधि और मानसिक पीड़ा कभी नहीं होती। यह मन्त्र सर्व उपद्रवों का नाश करनेवाला है। ८।

पश्चात् पापप्रतिघात और गुणबीजाधान नाम के (पंच सूत्र में से) [1]प्रथम सूत्र प्रणिधान पूर्वक गिनना। यदि यह नहीं आता हो तो [2]अमृतवेली की सज्जाय अथवा निम्नाङ्क महामंगलकारी सूत्र से आत्मा को ओत-प्रोत करना।

चत्तारि मगलं, अरिहंत्ता मगलं।
सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं।

चार पदार्थ मंगल अर्थात् कल्याणकारी हैं—अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा।
सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा।
केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चार पदार्थ लोक में उत्तम हैं—अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म।

चत्तारि सरणं पवज्जामि,
अरिहंते सरणं पवज्जामि,
सिद्धे सरणं पवज्जामि,
साहू सरणं पवज्जामि,
केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

चार वस्तुएँ शरण रूप हैं। भय से बचने के लिये मैं चार की शरण लेता हूँ—अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म।

बाद में नीचे की गाथा स्थिर मन से पढ़ना।

---

१ यह सूत्र इस पुस्तक में आगे के प्रकरण में दिया गया है।
२ यह सज्जाय भी आगे के प्रकरण में दी गई है।

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपन्नत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहीअं ॥

प्रत्येक भव में अरिहंत परमात्मा मेरे देव हों, साधु भगवंत मेरे गुरु हों। सभी प्रकार सब जीवों का हित हो यही तत्त्व है जिसमें ऐसा श्री जिनेश्वर भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म है उसी को मैं तत्त्व मानता हूँ, इस प्रकार के सम्यक्त्व को मैंने अंगीकार किया है।

साधक को साधना की शुरुआत में तीनों काल और तीनों जगत के सब ही श्री नवकार साधक भव्यात्माओं की साधना की भूरी २ प्रशंसा करनी चाहिये।

इस प्रकार जाप शुरु करने से पहले नवकार मंत्र के महिमा गर्भित श्लोक, मैत्री आदि भावनाएँ, श्री वज्रपंजर स्तोत्र से आत्मरक्षा, पंचसूत्र अथवा अमृतवेली की सज्जाय, अथवा 'चत्तारिमंगलं' का पाठ आदि में से अनुकूलता और स्फूर्ति के अनुसार थोड़ी देर बोलना।

उपरोक्त तमाम बातें अंतःकरण में भाव जागृत करने के उपाय रूप हैं। जिससे जिस प्रकार के भाव हृदय में उत्पन्न हों उन पदों का आलंबन लेकर हृदय को सिंचित करना। इसका तात्पर्य यह है कि प्राथमिक भूमिका में भाव वृद्धि करने के लिये प्रारम्भ में इस प्रकार का स्वाध्याय आवश्यक है।

इतना करने के बाद समग्र शब्द ब्रह्म की उत्पत्ति के कारण भूत तथा पंचपरमेष्ठी पद-वाचक प्रणव—ॐकार का नीचे के श्लोक द्वारा स्मरण करना।

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव. ॐकाराय नमो नमः ॥

इसके पश्चात् सब विघ्नों को दूर करनेवाले और सब ही प्रकार के मनोवांछित पूर्ण करनेवाले श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान का स्मरण करना। इसके लिये **"ॐ नमः पार्श्वनाथाय, विश्वचिंतामणीयते"**[१] ॥ का पूरा काव्य, अथवा निम्नाङ्क काव्य बोलना।

नमोस्तु पार्श्वनाथाय, विघ्नविच्छेदकारिणे ।
नागेन्द्रकृतच्छत्राय, सर्वदियाय ॐ नमः ॥

पीछे निम्न श्लोक द्वारा चरम शासनपति आसन्न उपकारी, श्री महावीर स्वामी का स्मरण करना।

कल्याणपादपारामं, श्रुतगङ्गाहिमाचलम् ।
विश्वाम्भोजरविं देवं, वन्दे श्रीज्ञातनन्दनम् ॥

बाद में निम्न श्लोक द्वारा अनंत लब्धिनिधान श्री गौतम गणधर का स्मरण करना।

सर्वारिष्टप्रणाशाय, सर्वाभीष्टार्थदायिने ।
सर्वलब्धिनिधानाय, श्रीगौतमस्वामिने नमः ॥

इसके बाद नीचे के श्लोक द्वारा परम उपकारी गुरु महाराज का कृतज्ञताकी बुद्धि से विनम्र भाव से स्मरण करना।

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
नेत्रमुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
श्री तीर्थंकरगणधरप्रसादात् सिद्धचतु मम एष योगः ।

---

१. यह स्तोत्र आगे दिया गया है।

जाप की शुरुआत के पहले उपरोक्त वर्णित श्लोकों का मनन चिंतन करने से मन, वचन, काया की चंचलता दूर होती है। योग शास्त्र में इसके लिये कहा है कि—

वचनमनःकायानां, क्षोभं यत्नेन वर्जयेच्छान्तः ।
रसभाण्डमिवात्मानं, सुनिश्चलं धारयेन्नित्यम् ॥

साधक को पहले मन, वचन, और काया की चंचलता को प्रयत्न पूर्वक त्याग कर और रस से भरे हुए बरतन की तरह अपनी आत्मा को शान्त तथा निश्चल भाव में धारण करना चाहिए।

जाप पूर्ण होने के बाद भी मैत्री आदि भावनाओं का फिर से मनन करना चाहिए। शुभध्यान की स्थिरता और वृद्धि के लिए ये भावनाएं रसायन का काम करती है। इससे चित्त प्रसन्न और प्रफुल्लित होता है और दिल में सद्भाव की वृद्धि होती है।

अब जाप किस तरह करना ? यह बतलाना है, परन्तु उससे पहले जिसका जाप करना है उस श्री नमस्कार महा-मंत्र का बाह्य और अभ्यन्तर स्वरूप, परमेष्ठो नमस्कार का परिचय, महामंत्र की सर्वदृष्टिता, जाप की सिद्धि के लिए प्रयोजन भूत ज्ञान, जाप की प्रगति लिये आवश्यक नियम, तथा महामंत्र की साधना से होनेवाले लाभ आदि प्रयोजन भूत बातों की जानकारी आवश्यक है। इनके द्वारा महामंत्र की श्रेष्ठता का परिचय होने से महामंत्र के जाप आदि में एकाग्रता आदि गुणों की सिद्धि सरलता से होती है। इसलिये ये बातें छोटे २ प्रकरणों द्वारा यहां क्रम से बताई जाती हैं।

——

श्री नमस्कार महामंत्र का बाह्य स्वरूप

किसी भी क्रिया का सम्पूर्ण फल प्राप्त करना हो तो उसकी विधि पूर्वक आराधना जरूरी है। किसान यदि विधि पूर्वक बीज बोता है तबही धान्य रूपी फल प्राप्त कर सकता है। विधिपूर्वक क्रिया करने के लिए जिसकी आराधना करना है, उस वस्तु के स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है। नवकार मंत्र बराबर पढ़ा जाय-गिना जाय उसके लिए उसके बाह्य और आन्तरिक स्वरूप को समझ लेना जरूरी है।

बाह्य स्वरूप अर्थात् मन्त्र का अक्षर देह, जो बराबर कायम रहना चाहिये। श्री नवकार मन्त्र में पद ९ हैं, संपदा ८ हैं और अक्षर ६८ हैं। इन ६८ अक्षरों में गुरु याने जोड़ाक्षर ७ हैं और लघु याने सादे अक्षर ६१ हैं।

नव पदों की गणना

श्री नवकार मंत्र के नौ पदों की गणना इस प्रकार है।

(१) **नमो अरिहंताणं।** यह पहला पद
(२) **नमो सिद्धाणं।** यह दूसरा पद
(३) **नमो आयरियाणं।** यह तीसरा पद
(४) **नमो उवज्झायाणं।** यह चौथा पद
(५) **नमो लोए सव्वसाहूणं।** यह पांचवां पद
(६) **एसो पंचनमुक्कारो।** यह छटा पद
(७) **सव्वपावप्पणासणो।** यह सातवां पद
(८) **मंगलाणं च सव्वेसिं।** यह आठवां पद
(९) **पढमं हवइ मंगलं।** यह नवाँ पद

आठ सम्पदा

संपदा यानि अर्थ का विश्राम स्थान। शास्त्र में उसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है–साँगत्येन पद्यते–परिच्छिद्यतेऽर्थो याभिरिति संपदः—जिससे अच्छी तरह अर्थ समझ में आजाय उसे संपदा कहते हैं। ऐसी सम्पदा नवकार में आठ हैं। प्रथम सात पद की सात और आठवें व नवें पद की एक, इस प्रकार कुल आठ।

गुरु लघु अक्षर

अक्षरों की गिनती में गुरु को एक ही गिनना है। इस प्रकार नवकार मन्त्र के ६८ अक्षर होते हैं।

पहला पद '**नमो अरिहंताणं**' में सात अक्षर हैं और वे सातों लघु हैं।

दूसरा पद '**नमो सिद्धाणं**' में पाच अक्षर हैं, उनमें चार लघु और एक गुरु है। (सिद्धाणं में 'द्धा' अक्षर गुरु है)।

तीसरा पद '**नमो आयरियाणं**' में सात अक्षर हैं और वे सातों लघु हैं।

चौथा पद '**नमो उवज्झायाणं**' में सात अक्षर है, उसमें छः लघु हैं और एक गुरु है। उवज्झायणं में 'ज्झा' अक्षर गुरु है।

पाँचवा पद '**नमो लोए सव्वसाहूणं**' में नौ अक्षर हैं, उसमें आठ लघु व एक गुरु है। (सव्वसाहूणं में 'व्व' अक्षर गुरु है।)

इस प्रकार पाँच पदों में ३५ अक्षर हैं, उनमें ३२ लघु और ३ गुरु हैं।

छटा पद **'एसो पंचनमुक्कारो'** में आठ अक्षर हैं, उनमें सात लघु और एक गुरु है। (नमुक्कारो में 'क्का' अक्षर गुरु है)।

सातवाँ पद **'सव्वपावप्पणासणो'** में आठ अक्षर हैं, उसमें छः लघु और दो गुरु हैं। (सव्वपावप्पणासणो में 'व्व' और 'प्प' अक्षर गुरु हैं)।

आठवाँ पद **'मंगलाण च सव्वेसिं'** में आठ अक्षर हैं, जिसमें सात लघु और एक गुरु है। (सव्वेसिं में 'व्वे' अक्षर गुरु है।

नवां पद **'पढ़मं हवइ मंगलं'** में नौ अक्षर हैं और वे सब लघु हैं।

इस प्रकार नवकार मन्त्र के पिछले चार पद जो चूलिका कहलाते हैं, उनमें कुल ३३ अक्षर हैं, उनमें ४ गुरु और २९ लघु हैं।

श्री महानिशीथ सूत्र में नवकार को पांच अध्ययन और एक चूलिकावाला कहा है, और उसमें अक्षरों की संख्या ऊपर बताई गई है, उसके अनुसार प्रथम पांच पदों की ३५ व पिछले चार पदों की ३३ बतलाई गई है।

उपदेश तरंगिणी में कहा है कि—

पञ्चादौ यत्पदानि त्रिभुवनपतिभिर्व्याहृता पञ्चतीर्थी।
तीर्थान्येवाष्टषष्टि-जिनसमयरहस्यानि यस्याक्षराणि।
यस्याष्टौ संपदश्चानुपमतममहासिद्धयोऽद्भुतशक्ति-
र्जीयाद् लोकद्वयस्याभिलषितफलदः श्रीनमस्कारमंत्रः।

इस लोक और परलोक दोनों में मन वांछित फल देने वाला, अद्वितीय शक्ति स्वरूप, श्री नमस्कार मंत्र जयवंता हो, जिसके पांच पदों को त्रैलोक्यपति श्री तीर्थंकरों ने *पंच तीर्थी कहा है। श्री जिनागम के रहस्यभूत ऐसे जिसके ६८ अक्षरों को अड़सठ तीर्थों की तरह बताया है और जिसकी आठ संपदाओं की गणना अनुपम श्रेष्ठ आठ महासिद्धियों की तरह की गई है।

---

* श्री अरिहंत का आद्य अक्षर 'अ' अष्टापद तीर्थ का सूचक है, श्री सिद्ध का आद्य अक्षर 'सि' सिद्धाचलजी का सूचक है, आचार्य के आद्य अक्षर आ' आबूजी का सूचक है, उपाध्यायजी का आद्य अक्षर 'उ' उज्जयंत अर्थात् गिरनारजी का सूचक है और साधु के आद्य अक्षर 'स' सम्मेत शिखरजी का सूचक है।

●

अहंकार मोह का महा मंत्र है। उसके वशीभूत हुए जीवों की रक्षा करनेवाला एक मात्र नमस्कार है। अहं का नाश हुए बिना 'अर्हं' की उपासना सम्भव नहीं। 'अर्हं' की उपासना बिना 'अहं' का नाश सम्भव नहीं इसलिये 'अहं' में से उत्पन्न अहंकार का नाश करने के लिये महा मंत्र की साधना का अनन्य उपाय काम में लेना चाहिये।

श्री नवकार का आंतरिक स्वरूप

नवकार का आंतरिक स्वरूप यानि नवकार का अर्थ देह । नवकार से परिचित होने के लिये उसके प्रत्येक शब्द का अर्थ जानना चाहिये ।

प्रथम '**नवकार**' शब्द का अर्थ जानना चाहिए । संस्कृत में '**नमस्कार**' शब्द के प्राकृत में दो रूप होते हैं, एक '**नमुक्कार**' और दूसरा '**नमोक्कार**' । प्राकृत व्याकरण के नियमानुसार आदि का शब्द '**न**' का विकल्प '**ण**' होता है, अर्थात् '**णमुक्कार**' और '**णमोक्कार**'–ये रूप भी नवकार के हो सकते हैं । परन्तु इन रूपों में से अपना सम्बंध '**नमुक्कार**' पद के साथ है । '**नमुक्कार**' में से '**म**' का लोप होने पर '**नउक्कार**' शब्द बनता है और उसमें से '**नवक्कार**' और अन्त में '**नवकार**' शब्द बनता है ।

अब महामंत्र के अलग २ पदों के अर्थ पर विचार करेंगे ।

नमो अरिहंताणं यानि मेरा अरिहंतो को नमस्कार हो ।
नमो सिद्धाणं यानि मेरा सिद्धों को नमस्कार हो ।
नमो आयरियाणं यानि मेरा आचार्यों को नमस्कार हो ।
नमो उवज्झायाणं यानि मेरा उपाध्यायों को नमस्कार हो ।
नमो लोए सव्वसाहूणं यानि मेरा सर्व साधुओं को नमस्कार हो ।

एसो पंच-नमुक्कारो यानि इन पाँचों को किया गया नमस्कार।
सव्वपावप्पणासणो यानि सब पापों का प्रणाशक है।
मंगलाणं च सव्वेसिं यानि सब मंगलों में
पढमं हवइ मंगलं यानि प्रथम मंगल रूप है अर्थात् श्रेष्ठ मंगल है।

श्री नवकार मंत्र का यह सामान्य शब्दार्थ है। अब थोड़ा इसके भावार्थ पर विचार करेंगे। नवकार में सब से प्रथम 'नमो' पद आता है, इसलिए पहले उस पर विचार करेंगे।

'नमो' पद की विचारणा

'नमो' यह नैपातिक पद हैं। यह एक प्रकार का अव्यय है। यह द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के नमस्कार का सूचन करता है। द्रव्य-नमस्कार यानि हाथ जोड़ना, मस्तक झुकाना, घुटने टेकना आदि। भाव नमस्कार यानि जिसको नमस्कार करना है उनके प्रति विनय रखना, भक्ति रखना, व उत्कृष्ट सम्मान रखना। जिन्हें मैं नमस्कार करता हूँ वे बड़े हैं मैं छोटा हूँ-यह भावना रखना, कारण कि ऐसी भावना हुए बिना भाव नमस्कार हो नहीं सकता।

'नमो' पद में नमस्कार की भावना है, और वह धर्म का बीज है। इसलिए नमस्कार से अपने अंतःकरण में धर्म के बीज का वपन होता है अर्थात् धर्म का बीज बोया जाता है। परम पू०आचार्य भगवंत श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज ने ललित विस्तरा नामक चैत्यवंदन सूत्र की वृत्ति में कहा

है कि **'धर्म प्रति मूल भूता वंदना'** अर्थात धर्म के प्रति ले जानेवाली मूलभूत वस्तु वंदना है–नमस्कार है। क्योंकि उससे उत्पन्न हुआ भावोल्लास आत्म क्षेत्र में धर्म प्रशंसा–धर्म के बहुमान रूपी बीज को बोता है, धर्म–चिंतादि रूप अंकुर प्रगट करता है, धर्म श्रवण और धर्म आचार रूप शाखा-प्रशाखाओं का विस्तार करता है तथा स्वर्ग और मोक्ष के सुखों की प्राप्ति रूप फूल और फल देता है।

श्री नमस्कार महामन्त्र की शुरुआत **'नमो'** पद से होती है। यही इसकी महान विशेषता है। यह **'नमो'** पद धर्म शास्त्र, मन्त्र शास्त्र और तंत्र शास्त्र तीनों दृष्टि से रहस्यमय है।

धर्म शास्त्र की दृष्टि से यह विनय का बीज है, जिसका परम्पर फल मोक्ष है। वाचक शेखर पू० श्री उमास्वामी महाराज ने प्रशमरति प्रकरण में कहा है कि "विनय का फल गुरु की सेवा है, गुरु सेवा का फल श्रुतज्ञान की प्राप्ति है, श्रुत ज्ञान की प्राप्ति का फल आश्रव का निरोध है, आश्रव निरोध का फल संवर की प्राप्ति है, संवर की प्राप्ति का फल तप है, तप का फल कर्म निर्जरा है, कर्म निर्जरा का फल क्रिया निवृत्ति है, क्रिया निवृत्ति का फल योग का निरोध है, योग निरोध का फल भव परम्परा का क्षय है और भव परम्परा के क्षय का फल मोक्ष है। इस तरह विनय सर्व कल्याण का मूल कारण है।"

मन्त्र शास्त्र की दृष्टि से **'नमो'** शब्द शोधन बीज है अर्थात शरीर, मन और आत्मा की शुद्धि करने में वह अत्यंत उपयोगी है।

तंत्र शास्त्र की दृष्टि से **'नमो'** शब्द शांतिक और पौष्टिक कर्म को सिद्ध करनेवाला पद है, इसलिए **'नमो'** पद से प्रयोजित सूत्र शांति और पुष्टि को देनेवाला है।

इसके अतिरिक्त नवकार की आदि में रखे हुए इस **'नमो'** पद में **'ओम्'** भी छिपा हुआ है। वह इस तरह समझना जैसे **'नमो'** पद में 'न्+अ+म्+ओ' में चार वर्ण हैं। अब यदि इन वर्णों को उलटा किया जाय तो 'ओ+म्+अ+न्' ऐसा क्रम होगा। इस क्रम के प्रथम दो वर्णों के संयोजन से **'ओम्'** शब्द की उत्पत्ति होती है।

संस्कृत शब्द **'मनः'** पद के **'म'** और **'न'** अक्षरों का यदि विपर्यय किया जाय तो **'नमः'** पद बनता है इसका अर्थ यह है कि अपना बहिर्मुख मन अंतर्मुख होगा अर्थात् बाह्य संसार की तरफ दौड़ता मन आंतर सन्मुख होगा, तब यह **'नमो'** पद प्रगट होगा।

नमस्कार महामन्त्र में इस **'नमो'** पद का छः बार स्मरण कराया है। इस **'नमो'** पद में बहुत गंभीर भाव छिपे हुए हैं, जैसे **'नमो'** यानि विशुद्ध मन का नियोग, मन का शुद्ध प्रणिधान, विषय-कषाय से निवृत होना, सांसारिक भावों में दौड़ते मन को रोकना।

उपरान्त यह **'नमो'** पद सन्मान, श्रद्धा, भक्ति और आंतरिक बहुमान सूचक भी है और इससे भी विशेष परिचय में **'नमो'** सर्व समर्पण भाव सूचक है, इससे भी आगे बढ़कर कहें तो 'नमो' बगैर शर्त सर्व समर्पण भाव का सूचक है।

'नमो' पद में पंचपरमेष्ठिओं के प्रति प्रमोद भाव रहा हुआ है। जहां प्रमोद भाव है, वहां अनुमोदना के बीज में से सर्व समर्पण भाव का वृक्ष खड़ा होता है। जिस तरह प्रमोद

भाव का नमस्कार के साथ सम्बन्ध है, उसी तरह समर्पण भाव का भी नमस्कार के साथ सम्बन्ध है।

जब पंचपरमेष्ठी के प्रति बिना शर्त सर्व समर्पण भाव प्रगट होता है, तब अपने में रहे हुए पशुत्व रूपी दुर्भावों के प्रति अधोमुखी चैतन्य सिद्धत्व, तरफ-उर्ध्वीमुख सद्भाव के प्रति बहता है। अपने नीचे की ओर जाते भाव प्रवाह को ऊपर की ओर आकर्षित करानेवाला जबरदस्त बल श्री पंचपरमेष्ठिओं में है, परन्तु इस बल में काम करनेवाली **'नमो'** पद की आकर्षण शक्ति मुख्य कारण है।

नमस्कार महामंत्र में अनुमोदना पंचपरमेष्ठिओं की है। इस अनुमोदना का बहुत महत्व है। तीनों काल की सर्व श्रेष्ठ महाविभूतिओं की ओर अनुमोदना प्रगटाने की चाबी **'नमो'** पद में है। **'नमो'** पद से पंचपरमेष्ठिओं के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित होता है। अनुमोदना का सम्बन्ध बाह्य के बजाय अभ्यंतर मन के साथ विशेष है, जिससे अनुमोदना का बल बहुत है।

अनुमोदना नमस्कार की प्राथमिक भूमिका है, जब कि सर्व समर्पण भाव नमस्कार की पराकाष्ठा है। इस तरह **'नमो'** पद में अचिंत्य सामर्थ्य है। इसमें रमण करने से आराधना के अंतिम ध्येय तक पहुँचा जा सकता है।

पंचपरमेष्ठिओं के महाविद्युत का प्रवाह तो बह ही रहा है सिर्फ अपनी आत्मा में प्रकाश करने के लिये **'नमो'** पद का बटन खोलना चाहिए।

पंचपरमेष्ठिओं का बहुत महत्व है, परन्तु उनके महत्व का लाभ अपने को देने की सामर्थ्य **'नमो'** पद में है।

इसलिए साधकों के लिए **'नमो'** पद का विशेष महत्व है।

संक्षेप में यह **'नमो'** पद मोक्ष की कुञ्जी है।

अरिहंत पद की विचारणा

'अरिहंत' यानि **'अर्हत्'**। यह **'अर्हत्'** शब्द अर्ह धातु से बना है जो कि योग्य होने का अर्थ बतलाता है, अर्थात् जो महापुरुष सुरासुरेंद्र की पूजा के योग्य हो वह 'अर्हत्' कहलाता है।

श्री भद्रबाहु स्वामी ने आवश्यक निर्युक्ति में कहा है कि

अरिहंति वंदण-नमंसणाइं, अरिहंति पूयसक्कारं।
सिद्धिगमणं च अरिहा, अरहंता तेण वुच्चंति॥

जो वंदन-नमस्कार के योग्य हैं, जो पूजा सत्कार के योग्य है, और जो सिद्धिगमन के योग्य है, वे अरिहंत अर्थात् अर्हत् कहलाते हैं।

अर्हम्, अरहंत और अरिहंत ये सब समान अर्थवाले हैं। इनमें अर्हत् संस्कृत का शब्द है, बाकी के सब प्राकृत के रूपान्तर हैं।

'अरहत' तथा **'अरुहंत'** अरिहंत शब्द के पाठांतर हैं। तीनों के अलग २ अर्थ हो सकते हैं। अरिहंत अर्थात् कर्म या मोह रूपी शत्रु को नाश करनेवाला। अरहंत अर्थात् तीनों लोक में पूजा के योग्य। अरुहंत अर्थात् पुनः पैदा न होनेवाला अर्थात् संसार में पुनः नहीं आनेवाला।

नवकार में **'अरिहंताणं'** पद बहुबचन है। पाँचवें पद में रहे हुए **'लोए'** तथा **'सव्व'** पद यहां जोड़ने से **'नमो अरिहंताणं'** पद का अर्थ **"सब लोक के सब अरिहंतों को**

मेरा नमस्कार हो" ऐसा होता है। यहां सर्व शब्द का अर्थ सर्वकालीन करें तो यह नमस्कार केवल वर्तमानकाल के अरिहंतों को ही नहीं वरन् तीनों काल के अरिहंतों को होता है। लोक और काल के लिए हरेक पद में इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

अरिहंत धर्म तीर्थ की स्थापना करनेवाले होने से धर्म तीर्थंकर या तीर्थंकर कहलाते है। राग द्वेष को पूरी तरह जीतनेवाले होने के कारण जिन कहलाते हैं और सब पुरुषों में उत्तम होने से पुरुषोत्तम कहलाते हैं। इस प्रकार वे दूसरे अनेक नामों से पहिचाने जाते हैं।

अरिहंत को देवाधिदेव कहा जाता है क्योंकि वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग और सर्व शक्तिमान होते हैं। उनमें दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, काम, मिथ्यात्व, अज्ञान, निद्रा, अविरति, राग और द्वेष ये अठारह दोष नहीं होते।

अरिहंत के बारह गुण

श्री अरिहंत परमात्मा अनन्त गुणों के भण्डार हैं। उनके सम्पूर्ण गुणों को कौन गिन सकता है? जिस तरह समुद्र के जल बिंदुओं को, पृथ्वी के तमाम रेत के कणों को तथा आकाश के ताराओं को सामान्य मनुष्य नहीं गिन सकते उसी तरह उनके अनन्त गुणों को मनुष्य नहीं गिन सकता। इतने पर भी उनकी विशेषता को ध्यान में रखने के लिए

उनके गुणों को बारह संख्या में संग्रहीत कर लिया गया है इसलिये वे नीचे लिखे बारह गुणों से पहिचाने जाते हैं।

वे जहां विराजमान होते हैं वहां उनके देहमान से बाहर गुणा ऊँचे अशोक वृक्ष की रचना होती है, दिव्य पुष्पों की वर्षा होती है, दिव्य ध्वनि सुनाई देती है, चँवर डुलते हैं, स्वर्णमय सिंहासन की रचना होती है, जगमगाता भामण्डल रहता है, देव दुन्दुभि बजती है, और मस्तक पर तीन छत्र रहते हैं। इन आठ गुणों को आठ प्रातिहार्य कहते हैं, क्योंकि वे प्रतिहारी की तरह सदैव साथ ही रहते हैं। इसके अलावा वे अपायापगमातिशय, पूजातिशय, ज्ञानातिशय, और वचनातिशय वाले होते हैं।

श्री अरिहंतों की कल्याणकारी साधना

श्री अरिहंत परमात्मा की आत्मा अपने पूर्व के तीसरे भव में श्री जिन नामकर्म की निकाचना करते समय **'सवि जीव करूं शासन रसो'** की भावना से बीस स्थानक आदि तपश्चरण की कल्याणकारी साधना करने वाले होते हैं। उसके प्रभाव से चरम भव में उनमें जन्म से चार अतिशय, और केबलज्ञान के बाद देवकृत उन्नीस अतिशय, कर्मक्षय से ग्यारह अतिशय, इस प्रकार अनुक्रम से चौंतीस अतिशय उत्पन्न होते हैं। उपरोक्त बारह गुणों में उप लक्षण से चौंतीस अतिशय का समावेश हो जाता है।

श्री अरिहंत परमात्मा का नाम, स्थापना, द्रव्य, उनकी पैंतीस गुणयुक्त वाणी, उनके अतिशय, उनके तीर्थ आदि वस्तुओं में जो अचिंत्य सामर्थ्य उत्पन्न होती है, उसका मुख्य

कारण उनकी तीसरे भव में सर्व जगत कल्याण के आशयवाली उत्तम भावना से की गई कल्याणकारी आराधना है।

अरिहंत साकार ईश्वर है और सिद्ध निराकार ईश्वर स्वरूप है। उपासना का क्रम ऐसा है कि प्रथम साकार की उपासना और पीछे निराकार की उपासना करना इसलिये वही क्रम यहां मान्य रखा गया है। साकार ईश्वर के द्वारा ही निराकार ईश्वर का बोध होता है; इसलिये उसका उपकार इस संसार में बहुत बड़ा है और इसीसे श्रीनवकार के प्रथम पद में स्मरण किया गया है।

सिद्ध पद की विचारणा

सिद्ध अर्थात् सर्व कर्मों का क्षय करके हुई शुद्ध आत्मा। जिसे जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक कुछ भी नहीं होता। वे लोक के अग्र भाग में सिद्ध शिला पर विराज कर अक्षय, अनन्त, अव्याबाध सुख का निरंतर उपभोग कर रहे हैं। भूतकाल में ऐसे अनन्त सिद्ध हो गये हैं। आज वर्तमान में भी अनेक आत्मा सिद्ध होते हैं और भविष्य में भी अनन्त आत्मा सिद्ध होंगे।

सिद्ध भगवान आठ गुणों से पहिचाने जाते हैं (१) अनन्त ज्ञान, (२) अनन्त दर्शन, (३) अनन्त अव्याबाध सुख, (४) अनंत चारित्र, (५) अक्षय स्थिति (६) अरूपी-पन, (७) अगुरुलघुत्व अर्थात् न भारीपन और न हलका-पन, और (८) अनंत वीर्य।

सिद्धों की आत्मा में समस्त लोक को हिला सके ऐसी शक्ति होती है, परन्तु उसे इस शक्ति का उपयोग करने की जरुरत नहीं होती।*

आचार्य पद की विचारणा

आचार्य यानि ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार तपाचार और वीर्याचार इन पांच आचारों का स्वयं पालन करनेवाले और दूसरों को पालन करानेवाले। वे गच्छ के नायक होते हैं और सारणादि द्वारा साधुओं की सार सम्हाल रखते हैं तथा परम करुणा रस से भरपूर परमात्मा के शासन की उन्नति के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। वे छत्तीस गुणों से पहिचाने जाते हैं। जैसे कि—

पांचों इंद्रियों के विषय पर काबू रखनेवाले तथा नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की बाड़ को धारण करनेवाले, चारों प्रकार के कषाय से मुक्त, पांच महाव्रत से युक्त, पांच प्रकार के आचार का पालन करने में समर्थ, पांच समिति और तीन गुप्ति से युक्त, इन छत्तीस गुणों से युक्त आचार्य होता है। आचार्य के छत्तीस गुणों की गणना दूसरी तरह से भी होती है।

उपाध्याय पद की विचारणा

उपाध्याय यानि साधुओं को शास्त्रों का अभ्यास कराने वाले, उनकी व्याख्या शास्त्रकारों ने इस प्रकार की है, "उप-

*इस सिद्धि गति प्राप्ति में प्रधान कारण अरिहंत परमात्मा की आज्ञा का पालन है। इसका विशेष वर्णन और सिद्धि गति का विशेष वर्णन इस पुस्तक में 'भव अटवी में सार्थवाह' प्रकरण में दिया गया है।

समीपे अधिवसनात् श्रुतस्य आयो-लाभो भवति येभ्यस्ते उपाध्याया":—जिनके पास रहने से श्रुत का लाभ हो वे उपाध्याय कहलाते है।

उपाध्याय भगवन्त २५ गुणों से पहिचाने जाते हैं, वे इस प्रकार–११ अंग और १२ उपांग स्वयं पढ़े और साधुओं को पढ़ावें तथा चरण सित्तरी और करण सित्तरी युक्त होते हैं।

साधु पद की विचारणा

साधु अर्थात् निर्वाण मार्ग की साधना करनेवाले अथवा स्वहित और परहित इस प्रकार उभयहित को साधनेवाले। वे निम्न सत्ताइस गुणों से पहिचाने जाते है।

पांच व्रतों को पालने वाले	५
रात्रि भोजन का त्याग	१
छकाय जीव की रक्षा	६
पांच इंद्रियों पर संयम	५
तीन गुप्ति का पालन	३
लोभ से मुक्त	१
क्षमा धारण करे	१
चित्त को निर्मल रखे	१
पडिलेहण करे	१
संयम में रहे	१
परिषह सहन करे	१
उपसर्ग सहन करे	१
	२७

सब प्राणियों के हित का आशय साधुओं के दिल में अंकित रहता है। साधु धर्म का लक्षण शास्त्रों में निम्न प्रकार बतलाया है:—

"सामायिकादिगतविशुद्धक्रियाऽभिव्यङ्ग्यसकल-सत्त्व-हिताशयामृतलक्षण स्वपरिणामः एव साधु धर्मः।"

सामायिवादि विशुद्ध क्रियाओं द्वारा प्रगट हुआ सब प्राणियों के हित का आशयरूप अमृत लक्षण स्वपरिणाम यह साधु धर्म है।

इस प्रकार पंचपरमेष्ठी के कुल १०८ (१२+८+३६ +२५+२७) गुण हैं। परमेष्ठी के गुणों का बारंबार चिंतन करने से अपना मन नवकार में एकाग्र होता जाता है।

नमस्कार के प्रथम पांच पदों से पांच परमेष्ठिओं को नमस्कार होता है। इसीलिए इसे परमेष्ठी नमस्कार, परमेष्ठी मंत्र, पंच परमेष्ठी नमस्कार या पंच परमेष्ठी मंत्र कहा जाता है।

नमस्कार चूलिका का विचार

पंच नमस्कार कैसा है? इसके लिये पीछे के चार पदों में अर्थात् चूलिका में बताया गया है कि इन पांचों को किया गया नमस्कार सर्व पापों का प्रणाशक है। प्रणाशक यानि जड़मूल से पापों का नाश करनेवाला। सामान्य तौर पर नाश हो तो वह फिर उत्पन्न हो सकता है, परन्तु जड़मूल से नाश हो तो फिर कभी उत्पन्न नहीं होता।

मनुष्य को जो दुःख, कष्ट और आपत्ति का अनुभव होता है, वह अशुभ कर्म के उदय से होता है. परन्तु इन

अशुभ कर्मों का सम्पूर्ण नाश हो जाय तो फिर दुःख, कष्ट और आपत्ति का अनुभव होने का प्रसंग नहीं आता। तात्पर्य यह है कि पंचपरमेष्ठी को किया गया नमस्कार सर्व पापों का और परिणाम में सर्व दुःखों का नाश करनेवाला है।

नवकार के पिछले दो पदों में बतलाया गया है कि यह नमस्कार सब मंगलों में प्रथम मंगल रूप है। मंगल शब्द की व्याख्या शास्त्रकारों ने अनेक प्रकार से की है, परन्तु उसकी मुख्य व्याख्या **'मंगति हितार्थं सर्पतीति मंगलम्'**-- 'जो प्राणिओं के हित के लिये प्रवर्ते वह मंगल,' यह व्याख्या यहां ग्रहण करने की है। प्राणिओं के हित की प्रवृत्ति अनेक प्रकार से होती है, इसलिए मंगल भी अनेक प्रकार के हैं और इसलिये यहा 'मंगलाणं च सव्वेसिं' शब्दों का प्रयोग किया गया है। मंगल के यदि द्रव्य मंगल और भाव मंगल ऐसे दो भेद करें तो इस 'सव्वेसिं' शब्द से दोनों प्रकार के मंगल को ग्रहण करना है। द्रव्य मंगल यानि शुभ पदार्थ जैसे कि स्वस्तिक, श्रीवत्स, नंद्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मीनयुगल, दर्पण आदि। दधि, दुर्वा स्वर्ण वगैरह की गिनती भी शुभ पदार्थो में होती है। भाव मंगल यानि अहिंसा, संयम, तप, स्वाध्याय, ज्ञान आदि शुभ भाव।

प्रथम मंगल अर्थात् उत्तम-उत्कृष्ट मंगल। पंच नमस्कार सर्व मंगलों में उत्कृष्ट मंगल है। इसलिए मंगल रूप में यह अद्वितीय है। इसका स्थान और कोई अन्य नहीं ले सकता। तात्पर्य यह है कि यह नमस्कार मंगल द्रव्य और भाव दोनों

से प्राणी का अत्यंत हित करनेवाला है, इसलिये उसे किसी भी प्रकार का उपद्रव-दुःख नहीं हो सकता। भाव से पंचपरमेष्ठी का स्मरण करनेवाला भव्य आत्मा अशुभ विचार या परिणाम की धारा पर नहीं चढ़ता।

संक्षेप में कहा जाय तो नवकार का स्मरण यानि पंच परमेष्ठी का स्मरण, पंचपरमेष्ठी का स्मरण यानि आत्म शुद्धि का स्मरण, और आत्म शुद्धि का स्मरण यानि मुक्ति, मोक्ष या निर्वाण का स्मरण। इस प्रकार नमस्कार का स्मरण जीवन के अंतिम ध्येय का स्मरण करा कर मनुष्य को अनन्त सुख की ओर ले जाता है। इसलिए शास्त्रों में वह परम मन्त्र या प्रवर मन्त्र गिना जाता है।

श्रीनमस्कार महामंत्र एक प्रकार की बिजली है अथवा वराल है, एक प्रकार की अग्नि है अथवा जल है। बिजली से जिस प्रकार प्रकाश होता है उसी प्रकार श्रीनमस्कार महामंत्र के ध्यान से आत्म प्रकाश होता है। वराल से जिस प्रकार यंत्र चलता है, उसी तरह श्रीनमस्कार महामंत्र के जाप से जीवनयंत्र व्यवस्थित रूप से चलता है। अग्नि से जैसे ईंधन जलता है, वैसे श्रीनमस्कार महामंत्र के स्मरणरूपी अग्नि से पापरूपी ईंधन जलता है। जल से जैसे मैल दूर होता है वैसे श्रीनमस्कार महामंत्र की आराधनारूपी जल से कर्ममैल धुलता है।

श्री परमेष्ठी नमस्कार का विशेष परिचय

जीयात् पुण्यांगजननी, पालनी शोधनी च मे ।
हंसविश्राम–कमल–श्रीः सदेष्टनमस्कृतिः ॥ १ ॥

जो (पंच परमेष्ठी-नमस्कृति) माता की तरह पुण्य रूपी शरीर को उत्पन्न करती हैं और जीव रूपी हंस को विश्राम लेने के लिये कमल की शोभा को धारण करती हैं, वे श्री पंचपरमेष्ठी-नमस्कृति हमेशा जयवंती रहो ।

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पांचों को जैन शासन में **'पंचपरमेष्ठी'** की संज्ञा दी गई है । इष्ट नमस्कृति, परमेष्ठी नमस्कार और नमस्कार महामंत्र इसी के दूसरे नाम हैं । पंचपरमेष्ठी के गुणों के खयाल से उनके प्रति नम्रता पूर्वक सच्चा भक्ति भाव प्रगट होता है । इसलिए संक्षेप में उनका स्वरूप नीचे बताया जाता है ।

श्री अरिहंतों का उपकार

(१) श्री अरिहंत परमात्मा मोक्षमार्ग के आद्य प्रकाशक होने से विश्व पर उनका महान् और अजोड़ उपकार है । मोक्ष का मार्ग चर्मचक्षु को अगोचर होता है । केवलज्ञान रूपी चक्षु के बिना वह साक्षात नहीं जाना जा सकता । श्री अरिहंत परमात्माओं की आत्मा सम्पूर्ण जगत का कल्याण करनेवाली—सर्वहितकारिणी ऐसी प्रकृष्ट शुभ भावना सहित, पूर्व भवों में मोक्ष मार्ग की ऐसी सुन्दर आराधना करते हैं कि जिससे चरम-भव में वे तीन ज्ञान सहित जन्म

लेते हैं, योग्य अवसर आने पर संयम अंगीकार करते हैं, अप्रमत्त भाव से संयम का पालन करते हैं, घाती कर्मों का क्षय करते हैं और केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद साक्षात मोक्ष मार्ग को ज्ञान चक्षु से देख कर उसे यथार्थ रूप में जगत के जीवों के सामने प्रगट करते हैं।

उनके द्वारा बताये मार्ग पर चल कर अनेक आत्मा शुद्ध पद प्राप्त करते हैं और अजरामर बनते हैं। भविष्य में भी इस मोक्ष मार्ग का प्रवाह चालू रहे उसके लिये श्री अरिहंत परमात्मा तीर्थ की स्थापना करते हैं और उस तीर्थ के आलंबन से अनेक भव्यात्मा मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं। संक्षेप में तीन काल में मोक्ष मार्ग चालू रहता है। जिसमें मुख्य सहयोग श्री अरिहंत परमात्माओं का होता है और इसीलिए उनका उपकार अजोड और महान् है। ऐसे उपकारी अरिहंतों को नमस्कार करने से अपने अन्तःकरण में कृतज्ञता नाम का गुण प्रगट होता है।

श्री सिद्धों का अविनाशीपन

सिद्ध परमात्माओं का मुख्य गुण अविनाशीपन है। श्री सिद्ध परमात्माओं का यह अविनाशीपन का गुण समग्र मुमुक्ष आत्माओं का लक्ष्यबिंदु है। श्री अरिहंत परमात्मा भी दीक्षा लेते समय सिद्धपद को नमस्कार करते हैं और जगत को सिद्धपद के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। इसीलिये ही अनुपम उपकारी के रूप में उनकी गणना होती है। जगत के तमाम पदार्थों पर काल का प्रभाव है। यही एक ऐसा पद है कि जिसपर काल का

प्रभाव नहीं है। इस पद को प्राप्त करने के बाद जीव कभी भी अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता है। इसीलिये सिद्धपद अविनाशी कहा जाता है। सिद्ध परमात्माओं के अविनाशी स्वरूप का विचार जीव को सिद्ध बनने की अचिंत्य प्रेरणा देता है, हिम्मत देता है, आश्वासन देता है और जीवन के छिपे हुए वीर्योल्लास में अपूर्व वृद्धि कराता है। श्री सिद्ध परमात्माओं को भावपूर्वक नमस्कार करने से अपनी आत्मा में सत्तागत (शक्ति रूप में) रहा हुआ सिद्धपन क्रमशः प्रगट होता है।

श्री आचार्यों का सदाचार

नमस्कार में तीसरा पंद आचार्य भगवंतों का है। मुमुक्षुओं के लिए मोक्ष साध्य है और सदाचरण साधन है। कारण बिना कार्य की प्राप्ति नहीं होती। जिसको मोक्ष की इच्छा हो उसे मोक्ष का अनन्य साधन भूत सदाचार को भी जीवन में अपनाना ही होगा। तीसरे पद में रही हुई आत्मा स्वयं पंचाचार का पालन करती है और संसार को भी इस मार्ग पर चलने की सतत प्रेरणा अपने जीवन और उपदेश से देती है। पंचाचार के पालन में जगत के तमाम सुन्दर आचारों का समावेश हो जाता है। पंचाचार का पालन अथवा उसका प्रेम जीव में मोक्ष प्राप्ति की योग्यता प्राप्त कराता है। इसके सिवाय सद्गति में गमन करने के लिए जीव असमर्थ बन जाता है। तीसरे पद को नमस्कार यानि सदाचार की पूजा अथवा सदाचार पर प्रेम की अभिव्यक्ति। सच्चे भाव से सदाचार को अथवा सदाचारी को किया गया नमस्कार किसी भी समय निष्फल नहीं जाता है।

श्री उपाध्यायों का विनय

नमस्कार में चौथा पद उपाध्याय भगवंत का है। इनका मुख्य गुण विनय है। विनय गुण मोक्षमार्ग के लिए बहुत उपयोगी है। इसके बिना मोक्षमार्ग में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। वास्तव में विनय से ही मोक्ष मार्ग की शुरुआत होती है। नमस्कार भी एक प्रकार का विनय ही है। विनय के बिना उत्तम प्रकार की विद्या-अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने की विद्या प्राप्त नहीं होती। इस विद्या-विज्ञान के बिना मोक्ष की प्राप्ति कभी भी नहीं होती। छोटे बड़े सब गुणों का मूल विनय है। इस चौथे पद में रही हुई आत्मा विनय गुण का पालन करती है और दूसरों को भी विनय गुण की शिक्षा देती है। इस पद को नमस्कार अर्थात् विनय गुण को नमस्कार है। आत्मिक गुणों की प्राप्ति में ऐसा नियम है कि जिस गुण की आत्मा हार्दिक इच्छा करता है और उसे प्राप्त करने के लिये सच्चे अन्तःकरण से प्रयास करता है यह गुण उसमें प्रकट हुए बिना नहीं रहता। गुण बाहर से नहीं आते, अन्दर से ही प्रकट होते हैं। इसके लिये हृदय की सच्चाई तथा तीव्र लगन की जरूरत है। इस पद को नमस्कार करने से विनय गुण की प्राप्ति होती है। विनय गुण यानि बाह्य-अभयंतर सर्व प्रकार की ऋद्धि-सिद्धियों का उत्पत्ति स्थान। विनय गुण की प्राप्ति के लिये गुणी आत्माओं को भावपूर्वक नमस्कार करना चाहिये। भाव नमस्कार यानि इस गुण को प्राप्त करने की उत्कट इच्छा पूर्वक मन, वचन, काया की शुभ प्रवृत्ति।

श्री साधुओं की सहायवृत्ति

श्री नमस्कार में पांचवां पद साधुओं का है। प्राप्त हुई शक्ति और सामग्री का यदि सदुपयोग नहीं किया जावे, तो वह शक्ति दिन प्रतिदिन हीन-क्षीण होती जाती है और यदि उसका उचित सदुपयोग किया जावे तो वह शक्ति और सामग्री उत्तरोत्तर अधिकाधिक तीव्र-तेजस्वी बनती जाती है। जिसमें किसी को सहयोग देने की वृत्ति नहीं, उसमें कभी भी साधुता नहीं आ सकती। इतना ही नहीं, परन्तु प्राप्त शक्ति का सदुपयोग न करने से जोव इस प्रकार का आवरण उपार्जन करता है कि उसके कारण उसे भविष्य में अधिक प्रकाश मिलना रुक जाता है और प्राप्त शक्तियों को पुनः प्राप्त करने की भूमिका भी नष्ट हो जाती है। इस प्रकार प्राप्त शक्ति का सदुपयोग न करना वह स्वयं के लिये अहितकर है। साधु पद को प्राप्त हुआ विवेकी आत्मा प्रकृति के इस सनातन नियम का भली प्रकार जानकार होने से अपने को प्राप्त हुई तमाम शक्तियों को स्व पर का अहित न हो किन्तु हित हो उसी प्रकार सत्कार्यों में निरंतर लगा देता है। दूसरों के हित कार्य में उसे कभी थकान नहीं लगती, कारण दूसरों के हित में ही अपना हित उसने समझ रखा है।

अनादि काल से जीव अशुद्ध वृत्तियों से भरा हुआ है, जिससे उसमें स्वार्थवृत्ति सहज है। यह स्वार्थवृत्ति ही जीवन में पशुता का अंश है। इसी के कारण जगत में अनेक प्रकार की कठिनाइयां और संघर्ष खड़े होते हैं, जब कि दूसरों का हित

करने की वृत्ति दिव्यता का स्रोत है, भाव ऐश्वर्य की सुवास है। यह सहायवृत्ति सहज नहीं है, वह अभ्यास द्वारा प्राप्त करने की वस्तु है, बहुत समय तक आदर और सत्कारपूर्वक किये गये सतत अभ्यास के बिना यह स्थिर नहीं होती। इस सहायवृत्ति को–दूसरों का सहायक बनाने की वृत्ति को जागृत करने का अमोघ उपाय साधुपद को भाव से नमस्कार करना है इस सहायवृत्ति जागृत करने से स्वार्थवृत्ति विलोप होती है।

कार्य–कारण की सनातन व्यवस्था

तात्पर्य यह है कि सेवा गुण (सहायवृत्ति) के विकास बिना सच्चा विनय गुण प्रगट नहीं हो सकता। विनय गुण का स्वरूप ही ऐसा है कि उसमें बाह्य सेवा और हृदय का प्रेम ये दोनों वस्तुएँ चाहिये। ये दोनों हों तब ही विनय गुण वास्तविक बन सकता है। विनय गुण के विकास बिना सदाचार की विद्या यानि मोक्ष मार्ग का सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता और सदाचार की विद्या यानि मोक्ष मार्ग का सच्चा ज्ञान किए बिना सदाचार का पूर्ण पालन नहीं हो सकता। सदाचार के पूर्ण पालन बिना सिद्ध पद की प्राप्ति नहीं हो सकती। सिद्ध पद की प्राप्ति की अभिलाषा अरिहंत पद की आराधना के बिना सम्भव नहीं। इस प्रकार एक अपेक्षा से पांचों पद कार्य कारण रूप होने से समान आदरणीय होते हैं। कार्य सिद्धि की इच्छावाला कभी भी कारणों की उपेक्षा नहीं करता। इतना ही नहीं, वरन् वास्तविक कारणों के सेवन में ही अपना तमाम पराक्रम खर्च करता है। क्योंकि वास्तविक कारणों में लगा रहना ही कार्य सिद्धि का अमोघ

मन्त्र है। हमेशा कारणों का सेवन करना चाहिये। कार्य तो योग्य अवसर पर उसके पास आकर अवश्य खड़ा रहेगा ही।

एक गांव से दूसरे गांव जाना हो, वहां बीच में चलने की क्रिया गाँव प्राप्ति का कारण है। प्रयाण का काम चालू है तो गाँव स्वयं आकर खडा रहता है, उसी प्रकार निश्चय को लक्ष्य में रख कर वास्तविक कारणों के सेवन में लगे रहने से फलस्वरूप जो कार्य होता है वह उसके पास आकर खड़ा रहता ही है। इस प्रकार से कार्य-कारण की सनातन व्यवस्था है।

नमस्कार एक महान् शक्ति

पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करने से जिस तरह सहाय-वृत्ति, विनय, सदाचार, अविनाशीपन और परोपकार आदि लोकोत्तर गुणों के प्रति प्रेम जागृत होता है, उसी तरह दूसरे भी अनेक लाभ होते हैं। वास्तव में यह पंच नमस्कार एक महान् शक्ति है अथवा शक्ति का पुञ्ज है। प्रतिपक्षी वस्तु को दूर करने के लिए हमेशा शक्ति की जरूरत होती है।

"**मोह ही जीव का वास्तविक शत्रु है।**" अनादिकाल से इस जीव का सच्चा प्रतिपक्षी शत्रु कोई है तो आठ प्रकार के कर्म है। इन कर्मों में भी मोहनीय कर्म मुख्य है, आठ कर्मों मे यह सर्वोपरी है, इस मोहनीय कर्म को जीतना कठिन है। मोहनीय कर्म दो प्रकार के हैं। एक दर्शन-मोहनीय और दूसरा चारित्र-मोहनीय। मोहनीय कर्म को जीतने से दूसरे सब कर्मों की शक्ति जर्जरित हो जाती

है। परमेष्ठी नमस्कार से मोहनीय कर्म का समूल नाश हो जाता है और मोह नाश से दूसरे कर्म अवश्य नाश होते हैं। इसलिए नवकार में "**सव्वपावप्पणासणो**" यह पद कहा है।

मोहनाश का उपाय

अब यहां नमस्कार से मोहनीय कर्म किस तरह नाश होते हैं, इस पर विचार करेंगे। मोहनीय कर्म में भी दर्शन मोहनीय बलवान है, नवकार के प्रथम पद "**नमो अरिहंताणं**" से दर्शन मोहनीय कर्म जीता जाता है। दर्शनमोहनीय अर्थात् उलटी मान्यता। अरिहंत को भाव से नमस्कार करने से जीव सम्यग् मान्यता में आता है। जीव की उलटी मान्यता ही दर्शनमोह का बड़ा बल है। जो आत्मा शुद्ध भाव से अरिहंत को नमस्कार करता है, उसकी उलटी मान्यता दूर होती है। वास्तव में तो जिसने अरिहंत को नमन किया, उसने सन्मार्ग को नमन किया, जिससे उसकी उन्मार्ग की रुचि हटी और वह सन्मार्ग की रुचिवाला बना। इससे दर्शन मोह के मर्मस्थान का भेदन होता है और पीछे क्रमशः वह सर्वथा नाश हो जाता है।

नमस्कार का अचिंत्य प्रभाव

सामान्यतया संसार में नमस्कार के कारण मनुष्य ख्याति प्राप्त करता है परन्तु जब वह नमस्कार अरिहंत परमात्मा के प्रति होता है तब तो उस नमस्कार की शक्ति अत्यंत सामर्थ्यवाली बन जाती है। नमस्कार किया हो, परन्तु नमस्कार का विषयभूत अरिहंत परमात्मा न हो तो उतनी

सामर्थ्य प्रगट नहीं होगी। इस तरह नमस्कार का विषय भूत अरिहंत हो परन्तु भाव नमस्कार न हो तो भी उतनी सामर्थ्य प्रगट नहीं होगी। जब भाव नमस्कार और नमस्कार का विषयभूत अरिहंत भगवान हो तब अनादि काल से जो मिथ्यात्व दूर न हुआ, वह भी दूर हो जाता है। ऐसे बलवान प्रतिपक्षी को सहज में जीतनेवाला होने से नमस्कार एक महान् शक्ति, अथवा शक्ति-पुंज है, यह कहना सर्वथा उचित है।

मोह का प्रथम भेद दर्शन मोह है, उसी तरह दूसरा भेद चारित्र मोह है। चारित्र मोह के पच्चीस भेद हैं। उनमें भी क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार मुख्य हैं। अब यहाँ नमस्कार महामंत्र के पवित्र पदों से ये चार कषाय किस तरह जीते जाते हैं, उसका भी पश्चानुपूर्वी से विचार करेंगे।

क्रोध को जीतने का उपाय (साधु पद)

"नमो लोए सव्वसाहूणं" इस पद से क्रोध को जीतने का बल प्रगट होता है। क्योंकि भाव साधुता को प्राप्त हुए मुनिवृंद सतत् रीति से क्षमा के सहारे क्रोध को जीतने के लिये कटिबद्ध हुए हैं, इस कारण साधुओं को **'क्षमाक्षमण'**—क्षमा प्रधान साधु की तरह संबोधन किया जाता है। उनके आश्रय में आनेवाले दूसरे भी क्रोध को जीतने में समर्थ होते हैं और उनमें भी क्षमा गुण का प्रादुर्भाव होता है।

मान को जीतने का उपाय (उपाध्याय पद)

"नमो उवज्झायाणं" इस पद को नमस्कार करने से

मान नाम का कषाय दोष दूर होता है और नम्रता गुण प्रगट होता है। उपाध्याय स्वयं विनय गुण को धारण करने वाले होते हैं। जिसने जिस गुण को आत्मसात् कर लिया है, उसके साथ बैठनेसे अपने में भी वह गुण प्रगट होता है।जिस तरह तीर्थंकर भगवंत के समवसरण में जाति वैर भाववाले प्राणी भी प्रभु के सानिध्य में वैर भाव भूल जाते हैं और शांत बन जाते हैं। उसी तरह जहां विनय-नम्रता हो वहाँ मान-अभिमान नहीं टिक सकता।

माया को जोतने का उपाय (आचार्य पद)

"**नमो आयरियाणं**" इस पद से मायाचार दूर होता है। प्राप्त शक्ति को छिपाना, अर्थात् उसका सदुपयोग न करना मायाचार कहलाता है। सदाचार की क्रियाओं में संलग्न रहा हुआ भावाचार्य अपना बल जरा भी नहीं छिपाते। आचार्य पद को नमस्कार करने से यथाशक्य शुभ क्रिया में पराक्रम प्रगट होता है और उससे मायाचार अर्थात् माया नाम का दोष दूर होता है। जब माया हटती है तब सरलता नाम का गुण प्रगट होता है।

लोभ को जोतने का उपाय (सिद्ध पद)

"**नमो सिद्धाणं**" यह पद सांसारिक लोभ को दूर करने वाला है। सिद्ध परमात्मा की अनन्त ऋद्धि का दर्शन होने के बाद सांसारिक लोभ रह नहीं सकता। भ्रमर तभी तक गुंजारव करता है जब तक उसे पुष्प का पराग नहीं मिलता। जीव को जगत के पदार्थों का लोभ तभी तक रहता है, जब

तक आत्मा की अनंत ऋद्धि का दर्शन उसे नहीं होता। सिद्ध पद को नमस्कार करने से वास्तव में अपनी आत्मा में रही हुई अनन्त ऋद्धि का दर्शन होता है, जिससे सांसारिक लोभ दूर हो जाते हैं और संतोषवृत्ति प्रगट होती है।

नमस्कार पुण्यरूपी शरीर को उत्पन्न करनेवाली माता है।

इस तरह पंचपरमेष्ठी नमस्कार से मोहनीय कर्म के मुख्य भेद रूप दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय रूप क्रोध, मान, माया तथा लोभ आदि दोष दूर होते हैं। इसलिए यह क्रिया अचिंत्य प्रभावशाली गिनी जाती है। अनुभवी पुरुषों ने इस नमस्कार की क्रिया का प्रभाव स्वयं में अनुभव किया है और केवल करुणा बुद्धि से संसार के सामने कई प्रकार से बताया भी है। अद्‌भुत सामर्थ्यवाली नमस्कार की क्रिया में महाज्ञानी पुरुष भी मुग्ध बने हैं। उसके गुणानुवाद में पीछे नहीं रहे हैं। इतना ही नहीं जिस प्रकार जगत के जीवों को इस नमस्कार क्रिया के प्रति रुचि, प्रेम और आदर पैदा हो, उसी प्रकार उसकी महिमा दर्शाने का अथक प्रयत्न भी किया है।

श्री सिद्धसेनाचार्य रचित "**श्री नमस्कार महात्म्य**" नामक ग्रंथ रत्न में **इस नमस्कार क्रिया को पुण्य रूपी शरीर को जन्म देनेवाली माता की उपमा दी है।** माता जिस तरह बाह्य शरीर को जन्म देती है उसी तरह नमस्कार रूपी माता पुण्य रूपी शरीर को उत्पन्न करती है। बाह्य

शरीर को जन्म देनेवाली माता है, यह बात जगत सिद्ध हैं, नमस्कार माता है यह बात सत्य होने पर भी जगत के जीवों के खयाल के बाहर है, उसे लक्ष्य में लाने के लिये नमस्कार को पुण्य रूपी शरीर को उत्पन्न करनेवाली माता की उपमा दी है। नमस्कार की क्रिया बिना पुण्यरूपी शरीर उत्पन्न नहीं हो सकता और पुण्यरूपी शरीर की प्राप्ति के बिना बाह्य शरीर की, या अन्य किसी भी तरह की कोई भी सामग्री को सफलता सम्भव नहीं हो सकती अर्थात बाह्य शरीर आदि साधन लाभदायक नहीं होते, बल्कि कई तरह से हानिप्रद बनते हैं।

इसके सिवा बाह्य शरीर में भी निरोगता, दीर्घायुता, सुन्दरता, निर्दोषता, आदेयता, श्लाघनीयता, सहृदयता, सौम्यता आदि गुण अंदर के पुण्य रूपी शरीर के बिना नहीं प्रगट होते। शरीर की निर्दोषता, स्वभाव की सुन्दरता और बाह्य ऐश्वर्य आदि ये सब पुण्यरूपी आन्तरिक शरीर के मूर्त प्रतीक हैं। एक कारण है तो दूसरा कार्य है। एक ही समय में उत्पन्न हुए दो बालकों में स्वभाव, बल, बुद्धि, वैभव, आरोग्य और अभिरति आदि में फर्क होता है, इसका कोई वास्तव में आंतरिक कारण होना चाहिये और वह पुण्य रूपी शरीर है। जिसका पुण्य रूपी आंतरिक शरीर पुष्ट होता है, उसे उत्तम वस्तुएँ स्वयं प्राप्त हो जाती हैं।

यहां पुण्यरूपी शरीर का मतलब पुण्यानुबंधी पुण्य समझना चाहिए। जीव जब एक गति से दूसरी गति में जाता है, तब उसके साथ दो शरीर होते हैं। एक कार्मण और

दूसरा तेजस। ये दो शरीर जीव के साथ अनादि काल से होते हैं और संसार पर्यंत रहते हैं। उसमें कार्मण शरीर अर्थात् आत्मा को लगे हुए कर्मों का समूह। जीव जिस प्रकार का कार्मण शरीर लेकर आता है, उसी प्रकार का बाह्य (तीसरा) शरीर और वैभव आदि सामग्री उसे प्राप्त होती है। यदि उसमें पुण्य की प्रबलता होती है तो कार्मण शरीर कहलाता है। यह पुण्यानुबंधी पुण्य उत्तम वस्तुओं में उत्तम रुचि पैदा कराता है, जिससे प्रशंसनीय गिना जाता है, मोक्ष के अनुकूल उत्तमोत्तम प्रकार की सामग्री प्राप्त कराने में अग्रगण्य रहता है।

कर्म की परतन्त्र दशा में रहा हुआ जीव अनादि अभ्यास के योग से सहज भाव से अशुभ में तन्मय हो जाता है। जीव की यह अशुभ दशा शुभ आलंबन के बिना दूर नहीं हो सकती और शुभ आलंबनों की प्राप्ति पुण्यानुबंधी पुण्य बिना सुलभ नहीं।

'जीव को बनना है सर्व कर्म से रहित' आराधक मात्र का यही अन्तिम ध्येय होता है। परन्तु यह दशा प्राप्त होने से पूर्व बीच में एक अवस्था में से अवश्य गुजरना पड़ता है। इस अवस्था का नाम 'कुशलानुबंधि कर्तव्यों में आत्मा को ओत प्रोत बना देना है।' यह बात उदाहरण से समझेंगे।

पुण्यानुबंधि पुण्य की उपादेयता

किसी आदमी को दीवाल पर एक सुन्दर चित्र बनाने की इच्छा हुई। इस कार्य के लिये पहले दीवाल को ठीक

करना होता है, अर्थात् उसमें के खड्डे आदि दूर कर, जमीन को समतल, कोमल और स्वच्छ बनानी होती है। अपना बनाया चित्र उसमें झलक उठे उसके लिये तमाम आवश्यक प्रयत्न करने होते हैं। सब कुछ होने के बाद ही वहां चित्र सुन्दर बन पाता है। यहाँ तीन अवस्था हुई। प्रथम दीवाल चित्र के लिये अयोग्य थी वह पहली अवस्था, उसे उपाय द्वारा योग्य बनाई वह दूसरी अवस्था और उसके योग्य होने के बाद उस पर चित्र बना, यह तीसरी अवस्था। यदि बीच में योग्य उपायों द्वारा दीवाल को योग्य बनाने का काम न किया गया होता तो वहां चित्र कभी अच्छा बन नहीं सकता था। उसी प्रकार यहां भी जीव अनादि काल से अशुभ भाव में रमण करता है, उसे पहले पुण्यानुबंधि पुण्य से उत्पन्न होने वाले उत्तमोत्तम निमित्तों के बल से शुभ भाव में लाना पड़ता है और इस तरह जीव में शुभ की प्रतिष्ठा होने के बाद, अर्थात् अणु अणु में शुभ भाव की एकमेकता होने के बाद ही जीव रूपी दीवाल पर शुद्धि का रंग चढ़ सकता है। यहां भी तीन अवस्था हुई। प्रथम अशुभ, उसे उपायों द्वारा शुभ बनाना दूसरी, और शुभ बनने के बाद उसके ऊपर शुद्ध दशा रूपी रंग का चढ़ना तीसरी। यह क्रम अनादि काल से है। जिस किसी को भी शुद्ध दशा प्राप्त हुई है, उन सभी ने इसी प्रकार क्रमशः विकास करके ही की है। अशुभ की रुचि जहां तक है वहां तक शुभ आलंबन की बहुत ही आवश्यकता है। शुभ के बल से अशुभ का राग दूर होने पर शुभ स्वयं अपने आप पलायन कर जाता है। क्योंकि वह

सज्जन मित्र की तरह है। जरूरत हो तब तक सहायता के लिये उपस्थित रहता है और आवश्यकता पूरी हो जाने पर स्वयं चला जाता है। इसका मुख्य काम अशुभ को दूर हटाने का है। जिस प्रकार अरंड़ो का तेल पेट के पुराने मल को निकाल खुद भी निकल जाता है उसी प्रकार पुण्यानुबन्धि पुण्य अशुभ की रुचि को दूर हटा कर मोक्ष के अनुकूल उत्तम वस्तुओं में उत्तम रुचि करा, सन्मार्ग में स्थिर कर, जरूरत हो तब तक उपस्थित रह कर अनेक प्रकार से सहायता करता है, और आवश्यकता न होने पर स्वयं भी चला जाता है। नमस्कार महामंत्र ऐसे कुशलानुबधि पुण्य को उत्पन्न करानेवाला होने से इसे पुण्य रूपी शरीर को उत्पन्न करने वाली माता की उपमा दी गई है, वह यथार्थ है। वास्तव में तो इससे उत्तरोत्तर मोक्ष प्राप्त होता है। परन्तु यहां साध्य-दशा को गौंण रख साधन दशा को मुख्य बताकर यह फल बताया है। इस से यह भी सिद्ध होता है कि साध्य से साधन का महत्व जरा भी कम नहीं है। कार्य सिद्धि के इच्छुक को जितनी कीमत कार्य को होती है, उतनी ही अथवा उससे ज्यादा कीमत उसके साधन की होती है। दरअसल कारण बिना कार्य नहीं होता इसलिये कारण की उपेक्षा करना यह कार्य की उपेक्षा करने के बराबर है और कारण का आदर कार्य का आदर करने के बराबर है।

जमीन में पानी प्रगट करना, यह कार्य है और कुआ खोदने की क्रिया कारण है। जो मनुष्य वास्तविक कारणों में लगा रहता है, उसका कार्य अवश्य सिद्ध होता है और

कारणों का अनादर कर उसमें लगा नहीं रहता तो कभी भी कार्य सिद्धि नहीं होती। योग्य भूमि में कुआ खोदने पर पानी का स्रोत स्वयं निकलता है, उसी तरह शुभ अनुष्ठानों में रमे रहने से आत्मा का शुद्धिरूपी कार्य भी अपने आप प्रगट होता है। वस्त्र को उज्जवल करना कार्य है। वस्त्र को धोने की क्रिया से जैसे उसमें उज्जवलता अपने आप प्रगट होती है, उसी तरह शुभ अनुष्ठानों में संलग्न रहने से आत्मारूपी वस्त्र में भी उज्जवलता अपने आप प्रगट होती है। इन सब कामों में साधन की ही महत्वता है। इस प्रकार साधन का आदर कार्य का ही आदर है। इसके विपरीत साधन का अनादर, साधन की उपेक्षा या साधन में मध्यस्थता, यह कार्य के प्रति अनादर, उपेक्षा और मध्यस्थता ही है।

मुमुक्षुओं के लिये मोक्ष साध्य है, यह बात जितनी निश्चित है, उतना ही मोक्ष कुशलानुबंधि पुण्य की पुष्टि के बिना कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता यह बात भी उतनी ही निश्चित है। यह कुशलानुबंधि पुण्य की प्राप्ति भी परमेष्ठी नमस्कार बिना नहीं होती यह भी निश्चित है। इसलिये यहां परमेष्ठी नमस्कार को मोक्ष का अनन्य कारण भूत पुण्यानुबंधि पुण्य की जननी कहा है।

पुण्यरूपी अंग का पालन करनेवाला नमस्कार है

पुत्र को जन्म देने मात्र से माता का कार्य पूरा नहीं हो जाता। जन्म देने से भी पालन पोषण करने का उत्तरदायित्व और अधिक है। यह उत्तरदायित्व माता बराबर पूरा करती

है। जगत में पाल्य-पालक सम्बंध अनेक प्रकार के हैं। राजा प्रजा का पालन करता है, पति पत्नी का पालन करता है, सेठ नौकर का पालन करता है, परन्तु इन सब पालन में कोई भी पालक अपना स्वत्व देकर अपने आश्रित का पालन नहीं करता; जब कि माता अपना स्वत्व देकर अपना सुख, सुविधा, शांति और सर्वस्व भोग देकर पुत्र का पालन करती है। मात्र पालन ही करती है यही नहीं वरन् अपने जीवन में सुन्दर संस्कारों का सिंचन कर पुत्र में भी उनको उतारती है। बालक पर जिन हजारों उपदेशों का असर नहीं होता, उतना असर माता के आचरण का होता है। बालक की अव्यक्त अवस्था में उपदेश फलीभूत नहीं होता। परन्तु माता के प्रकृतिगत सुन्दर संस्कारों का असर उसके जीवन पर होता है। अधिकतर उस वक्त के अच्छे-बुरे संस्कारों के अनुसार बालक का जीवन बनता है। अहिंसा प्रेमी माता का बालक स्वाभाविक रूप में दयालु बनता है। स्वयं के उत्तम हुए बिना उत्तमता के संस्कार दिये नहीं जा सकते। आज तक जगत को जितने महापुरुषों की भेट मिली हे, उसके वास्तविक कारण का यदि पता लगाया जाय तो उत्तम नर रत्न निर्माण करने में मुख्य भाग त्याग और वात्सल्य की मूर्ति माता का अथवा माता जैसा हृदयवाला पवित्र आत्मा के और किसी का नहीं है। अपने सर्वस्व का त्याग कर माता पुत्र का पालन करती है, इसके अलावा उसमें दूसरी एक विशेषता यह है कि उसे कभी यह विचार नहीं आता कि मैं कोई उपकार करती हूँ। कदाचित् पुत्र अयोग्य निकल जाय तब भी माता अपने हृदय में पुत्र के अवगुण

को स्थान नहीं देती, बल्कि उसकी उन्नति कैसे हो, इसकी रात दिन चिंता करती है। यह हृदय माता को ही मिला है और इसीलिये नीति मार्गानुसारी के गुणों में बड़ों की गिनती में माता का नाम सब से पहला लिया जाता है। माता की ये सब विशेषताएँ जगत को मान्य हैं, इसलिये जिसके दिल में जिस वस्तु की महत्ता घर कर गई है उसे प्रसिद्ध दृष्टांत द्वारा उपदेश देने से अल्प प्रयास द्वारा अप्रसिद्ध वस्तु भी समझाई जा सकती है, अतः यहाँ नमस्कार को माता कहने में पूर्व पुरुषों ने इस रीति को स्वीकार किया है। यहां नमस्कार रूपी माता का विचार करना है। नमस्कार रूपी माता मात्र पुण्यानुबंधि पुण्य रूप शरीर को जन्म देती है इतना ही नहीं, परन्तु पुण्य शरीर का पालन पोषण भी वही करती है। उत्तम वस्तु की प्राप्ति के बाद उसका सदुपयोग करना, यही उसकी पुष्टि है। नमस्कार से जो पुण्य उपार्जन होता है वह कुशलानुबंधि पुण्य है, नमस्कार से उत्तरोत्तर वह पुष्ट बनता जाता है और पूर्ण विकास भी नमस्कार से ही होता है।

नमस्कार की रुचि के बिना कदाचित् ऊँचा पद प्राप्त हो जाय, परन्तु परिणाम में वह लाभदायक नहीं होता कारण कि नमस्कार की रुचि बिना किया पुण्य, विपाक काल में जीव को बेभान बनाकर अधिक अंधकार में धकेल देता है। नमस्कार की रुचि से जो विकास होता है वही परिणाम में हितकारक होता है। नमस्कार वस्तु को प्राप्त कराता और उसका सदुपयोग भी कराता है। इसलिये वह कुशलानुबंधि पुण्य कहलाता हैं। इस कुशलानुबंधि पुण्य की सहायता के

बिना जिस तरह उत्तम प्रकार की सामग्री सुलभ नहीं है, उसी तरह उसकी सहायता के बिना उत्तम सामग्री का सदुपयोग भी सम्भव नहीं है। आत्म-विकास के जिज्ञासु किसी भी भव्यात्माओं को नमस्कार से प्राप्त होनेवाले कुशलानुबंधि पुण्य की सहायता बिना काम नहीं चल सका और चल भी नहीं सकता। चोर और श्वापद आदि से भरपूर भयंकर जंगल में योग्य जानकार जिस प्रकार उस भयंकर जंगल का उल्लंघन करा इच्छित स्थान पर पहुँचाता है, उसी तरह पुण्यानुबंधि पुण्य रूपी सहायक भी राग द्वेष आदि दोषों रूपी चोर और श्वापदों से भरपूर भयंकर भव अटवी का उल्लंघन करा इच्छित स्थान पर अर्थात् मोक्षनगर में पहुँचाने में सहायता करता है। जिस प्रकार सीढ़ी की सहायता बिना ऊँचे महल पर नहीं चढ़ा जा सकता उसी प्रकार पुण्यानुबंधि पुण्य की सहायता बिना अप्रमत्तादि उच्च गुणस्थानकों तक नहीं पहुँचा जा सकता। इन सब की जड़ नमस्कार होने से नमस्कार को यहाँ पुण्य रूपी शरीर को जन्म देनेवाली और पालन पोषण करनेवाली माता कहा गया है। इस तत्त्व को जानने के बाद नमस्कार के प्रति अधिक आदर जागृत होता है, यह स्वाभाविक है।

पुण्यरूपी अंग को पवित्र रखने वाला नमस्कार है।

माता पुत्र को जन्म देती है और पुत्र का पालन पोषण करती है, उसी तरह पुत्र को स्वच्छ रखने का काम भी माता करती है। यहां भी नमस्कार जिस तरह पुण्यरूपी शरीर को जन्म देता है, और उसका पालन पोषण करता है,

उसी तरह उसे पवित्र रखने का काम भी वही करता है। पुण्य रूपी अंग को पवित्र रखने का अर्थ यह है कि पुण्यानुबंधि पुण्य को वह दृढ़ (पुष्ट) करता है, उसमें पौद्गलिक आशंसादि दोष रूपी मलीनता न आजाय उसका ध्यान रखता है, उत्तरोत्तर अधिक अधिक कुशलानुबंधि बनाकर जीव की अधिक अधिक शुद्धि करता है और शुद्धि की पराकाष्ठा अर्थात् मोक्षपद तक पहुँचाता है।

कुशलानुबंधि पुण्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह उत्तरोत्तर अधिक अधिक विकास में सहायता करे। जीव में लौकिक कीर्ति आदि की इच्छा अथवा प्राप्त गुणस्थानों की ओर आसंगादि दोषों के आजाने की संभावना रहती है, उन्हें दूर कर आत्म विकास की पराकाष्ठा की ओर पहुँचाता है, जीव की पूर्ण शुद्धि करता है। नमस्कार रूपी माता की यही विशेषता है कि वह पुण्य रूपी अंग का इस प्रकार पालन पोषण और शुद्धि करता है कि जिसके कारण जीव की शुद्धि स्वयं ही हो जाती है।

जंगल में रहनेवाले भील-भीलनी का विकास नमस्कार के प्रारम्भ से हुआ था, जिससे यह विकास तथा उसी तरह सुदर्शन सेठ के जीव का सुभग के भव में नमस्कार महामन्त्र के स्मरण से विकास शुरु हुआ और उसी के कारण दूसरे ही भव में महा-पुरुषों को भी आश्चर्य उत्पन्न करे ऐसा अद्भुत जीवन उसका शास्त्रों में स्वर्णाक्षरों में अंकित हुवा है।

जीव रूपी हंस को विश्रांति का स्थान नमस्कार है

हंस विश्राम कमल श्रीः—नमस्कार जीव रूपी हंस की

विश्रांति के लिये कमल की शोभा के समान है। संसार में जीव को कहीं भी विश्रांति नहीं है। कषाय रूपी ताप से यह जीव सतत् तप रहा है। कर्म रूपी मेल से सना हुआ है। तृष्णा रूपी तृषा से तृषातुर हो रहा है ऐसी दशा में शान्ति कहां से मिले ? विपरीत दशा में दौड़ दौड़ कर जीव थक गया है। विश्रांति के लिये जहां जहां जाता है, वहां कहीं भी उसे विश्रांति नहीं मिलती। जगत में विश्रांति अनेक प्रकार की मानी जाती है। लोभी को धन प्राप्ति विश्रांति लगती है, कामी को राग के साधन विश्रांति रूप लगते हैं, रोगी को आरोग्य की प्राप्ति विश्रांति लगती है, भूखे को भोजन और प्यासे को पानी विश्रांति लगती है, जबकि बोझा उठानेवाले को बोझा दूर हो यह विश्रांति लगती है, परन्तु ये सब वास्तविक विश्रांतियाँ नहीं हैं बल्कि दुःखों के क्षणिक प्रतिकार हैं। वास्तविक और अंतिम विश्रान्ति तो भाव नमस्कार की प्राप्ति होना ही है। इसके सिवाय दूसरी विश्रान्ति थोड़ी देर के लिये ही कुछ शान्ति दे, परन्तु अन्त में वे जीव की थकावट में अधिक वृद्धि करती हैं। वही विश्रान्ति सच्ची विश्रान्ति मानी जायगी जिसकी प्राप्ति होने पर जीव में विश्रांति उत्तरोत्तर बढ़ती रहे। ऐसी विश्रान्ति नमस्कार से प्राप्त होती है। नमस्कार की प्राप्ति से जीव का भाव दारिद्रय दूर हो जाता है, तट पर पहुंचे जहाज की स्थिति को प्राप्त करता है। इससे उसका आंतरिक आनन्द बढ़ता रहता है। जीव रूपी हंस को यदि परमेष्ठी नमस्कार रूपी सुशोभित कमल की श्रेणी में लीन किया जाय तो उसे अनु-

पम विश्रान्ति मिल सकती है। महाज्ञानी भी अपनी आत्मा की सच्ची विश्रान्ति के लिए इस मंत्र का ही ध्यान करते हैं। इस महामंत्र के ध्यान में यदि जीव लीन हो जाय तो इसे चारों ओर से विश्रांति स्वयं प्राप्त हो जाती है।

नमस्कार सदा जयवंत रहो

इस प्रकार नमस्कार के गुण अपार हैं और इसी से विवेकी आत्मा प्रतिदिन इस नमस्कार का आदर पूर्वक आराधन करता है। इस असार संसार में नमस्कार मंत्र ही एक सारभूत वस्तु है। यह इष्ट नमस्कृति सदा जयवंती रहे ! और सब आदरपूर्वक नवकार की आराधना कर शाश्वत सुख को प्राप्त करें।

श्री नमस्कार महामंत्र में सर्व द्रव्यों का स्वरूप है, संसार और मोक्ष का गणित है; सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, प्रगटाने की पद्धति है; धर्म की कथा है, इस प्रकार सर्व अनुयोग नवकार में हैं।

श्री नमस्कार महामन्त्र की सर्वदृष्टिता

(१) मंत्रशास्त्र की दृष्टि से नमस्कार महामंत्र सर्व पाप रूपी विष को नाश करनेवाला है।

(२) योग शास्त्र की दृष्टि से पदस्थ ध्यान के लिये इसमें परम पवित्र पदों का आलंबन है।

(३) आगम साहित्य की दृष्टि से सर्वश्रुतों में अभ्यन्तर विद्यमान है तथा चूलिका सहित वह महाश्रुत स्कंध की उपमा को प्राप्त है।

(४) कर्म साहित्य की दृष्टि से एक एक अक्षर की प्राप्ति के लिये अनन्तानन्त कर्मस्पर्धकों का विनाश अपेक्षित है तथा एक एक अक्षर के उच्चारण से भी अनन्त अनन्त कर्म रसाणुओं का नाश होता है।

(५) ऐहिक दृष्टि से इस जन्म में प्रशस्त अर्थ, काम और आरोग्य की प्राप्ति तथा उसके योग से चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

(६) परलोक दृष्टि से मुक्ति तथा मुक्ति प्राप्त न हो तब तक उत्तम देवलोक और उत्तम मनुष्य कुल की प्राप्ति कराता है। उसके परिणाम से थोड़े समय में बोधि, समाधि और सिद्धि प्राप्त होती है।

(७) द्रव्यानुयोग की दृष्टि से शुरु के दो पद स्वयं आत्मा

का ही शुद्ध स्वरूप है और बाद के पद शुद्ध स्वरूप की साधक अवस्था के शुद्ध प्रतीक रूप है।

(८) चरणकरणानुयोग की दृष्टि से साधु और श्रावक की सामाचारी के पालन में मंगल के लिये और विघ्न निवारण के लिये उसका उच्चारण बारंबार आवश्यक है।

(९) गणितानुयोग की दृष्टि से नवकार के पदों की नौ की संख्या, गणित शास्त्र की दृष्टि से दूसरी संख्याओं की अपेक्षा अखण्डता और अभंगता का विशिष्ट स्थान रखती है तथा नौ की संख्या से नित्य अभिनव भावों की उत्पत्ति होती है। नवकार की आठ संपदाएं अणिमादि आठ सिद्धिओं को सिद्ध कराती है। अनानुपूर्वी से श्री नवकार के पदों का परावर्तन चित्त की स्थिरता का अमोघ कारण बनता है।

(१०) धर्मकथानुयोग की दृष्टि से अरिहन्तादि पांच परमेष्ठिओं के जीवन चरित्र अद्‌भुत कथाओं के प्रतीक हैं, नमस्कार की आराधना करनेवाले जीवों की कथाएं भी आश्चर्यकारक उन्नति को दर्शानेवाली हैं तथा ये सब कथाएं सात्त्विकादि रसों का पोषण करनेवाली हैं।

(११) चतुर्विध संघ की दृष्टि से नवकार मंत्र सबको एक शृंखला में बांधनेवाला तथा सबको समान स्तर पर पहुंचानेवाला है।

(१२) चराचर विश्व की दृष्टि से नवकार के आराधक सब जीवों को अभय देनेवाले होते हैं, सदैव सारे विश्व की एक समान सुख शांति चाहते हैं और उसके लिए सब ही प्रकार के प्रयत्न, किसी प्रकार की फल प्राप्ति की आशा के बिना

निरन्तर करते रहते हैं।

(१३) व्यक्तिगत उन्नति की दृष्टि से कोई भी प्रकार की बाह्य साधन-सामग्री के अभाव में भी साधक केवल मानसिक बल से सर्वोच्च उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है।

(१४) समष्टिगत उन्नति की दृष्टि से परस्पर को समान आदर्श का पूजक बनाकर सत्श्रद्धा, सत्ज्ञान तथा सच्चारित्र के सत्पथ पर टिके रहने का उत्तम बल प्रदान करता है।

(१५) अनिष्ट-निवारण की दृष्टि से नवकार का स्मरण अशुभकर्म के विपाकोदय को रोकता है और शुभकर्म के विपाकोदय के अनुकूल बनाता है, नवकार के प्रभाव से सभी अनिष्ट इष्ट रूप में बदल जाते हैं, जिस तरह अटवी महल के समान, सर्प फूल की माला के समान बनते हैं।*

(१६) इष्ट सिद्धि की दृष्टि से नवकार शारीरिक बल, मानसिक बुद्धि, आर्थिक वैभव, राजकीय सत्ता, ऐहिक संपत्ति तथा दूसरे अनेक प्रकार के ऐश्वर्य, प्रभाव और उन्नति को कराने वाला है, क्योंकि वह चित्त की मलीनता और दोषों को दूर कर निर्मलता और उज्जवलता प्रगटाता है। सर्व उन्नति का बीज चित्त की निर्मलता है और यह निर्मलता नवकार से सहज हो सिद्ध होती है।

*इस विषय में विशेष जानकारी के लिये देखो लेखक कृत 'नमस्कार महामंत्रनां वृष्टांतों" नामक पुस्तक : इस पुस्तक में नवकार विषयक २१ वृष्टांत दिए गये हैं।

जाप की सिद्धि के लिए प्रयोजनभूत ज्ञान

जाप में सिद्धि के इच्छुक साधक को जाप में अति प्रयोजन भूत हकीकतों का ज्ञान बराबर रुचिपूर्वक होना चाहिये। रुचि पूर्वक का ज्ञान अर्थात् ज्ञान मुजब जीवन में यथाशक्ति उतारने की अभिलाषा। इसके बिना साधना के मार्ग में आगे नहीं बढ़ा जा सकता, इसलिये यहां जाप में अति उपयोगी बातें बतलाई जाती हैं।

प्रथम जाप करनेवाले साधक को परमेष्ठी भगवंतों का स्वरूप गुरु के पास से भली प्रकार समझना चाहिये। उसका बारंबार चिंतन-मनन कर अपने नाम की तरह आत्मसात् कर लेना चाहिये। जैसे अपना नाम लेते ही अपना समग्र स्वरूप खयाल में आ जाता है वैसी ही जाप करते समय मंत्र के अक्षरों का अर्थ अपने मन के सामने प्रगट हो जाना चाहिये।

परमेष्ठी भगवंतों का हमारे पर कितना उपकार है, तथा उनके ऋण से हम कितने दबे हुए हैं, उसका खयाल जाप करनेवाले को बराबर रखना चाहिये। परमेष्ठी भगवंतों का आलंबन न मिलने के कारण भूतकाल में अनंत भव भ्रमण करने पड़े, उनका अंत आज उनके अवलम्बन से आ रहा है, इसकी खुशी होना चाहिये। मानस जाप करते समय काया और वस्त्र की शुद्धि के साथ साथ मन और वाणी का पूर्ण मौन रखना चाहिये।

जाप का उद्देश्य पहले से ही स्पष्ट और निश्चित कर लेना चाहिये। सर्व जीवों का हित हो, सब जीव परमात्मा के शासन में रुचिवंत हों, यह उद्देश्य सबसे श्रेष्ठ है। भव्यात्माओं को मुक्ति प्राप्त हो, संघ का कल्याण हो, विषय और कषाय की परवशता से मैं शीघ्र मुक्त हो जाऊं, मैत्री आदि भावनाओं से मेरा अंतःकरण सदा सुवासित रहे, आदि उद्देश्यों में से कोई प्रशस्त उद्देश्य निश्चित कर लेना चाहिये। जाप करते समय कदाचित् चित्तवृत्ति चंचल रहे तो थोड़ी देर जाप बंद कर निम्न वाक्यों में से कोई एक वाक्य या ऐसी कोई दूसरी विचारणा में अपने चित्त को लगावें।

"जगत में सब जीव सुखी हों, रोगी सर्व निरोगी बनें, विश्व के कोई जीव पाप न करें, विश्व के कोई जीव दुखी न हों, विश्व के समस्त दोषों का नाश हो, सबको सद्बुद्धि मिले, सर्व जीवों को बोधि बीज प्राप्त हो, मैत्री आदि भावनाओं की वृद्धि हो।"

इस प्रकार के उत्तम विचार चित्त में लाने से चित्त की चंचलता दूर होती है। इसलिये इस प्रकार चित्त को स्वस्थ कर तुरन्त पुनः जाप शुरु कर देना चाहिये।

साधक को राग द्वेष में चित्त को नहीं लगाना चाहिये परन्तु समतायुक्त रहने का प्रयत्न करना चाहिये।

समता से जाप में सहज ही प्रगति होगी, समता चित्त में शांति का साम्राज्य स्थापित करेगी और इससे नवकार का स्मरण स्थाई बनेगा। शांति, समता और समर्पण इन तीनों

को साधक जितना अधिक अपने जीवन में उतारेगा उतनी ही उसकी अधिक प्रगति होगी।

साधक को अपने सब ही सम्बन्धों में आध्यात्मिकता स्थापित करनी चाहिये। किसी भी प्रकार के अयोग्य आकर्षणों की ओर झुकाव नहीं होना चाहिये। उसी तरह किसी को भी किसी प्रकार के राग द्वेष में बांधने का प्रयास नहीं करना चाहिये।

साधना के परिणाम के लिए अधीर न होना चाहिए परन्तु धैर्य धारण करना चाहिए। साधना में बीते प्रत्येक पल की जीवन पर अचूक असर होती है। जबकि नवकार सूक्ष्म भूमिकाओं में अप्रगट रूप से शुद्धि का कार्य करता है तब उसका प्रभाव चाहे तात्कालिक मालूम नहीं होता, परन्तु धीरे धीरे योग्य समय पर यह बाहर आता है और अपनी समग्रता में तथा अपने वातावरण में उसके प्रभाव का प्रगट रूप में अनुभव होता है। जब तक साधक के चित्त में चंचलता, अस्थिरता, अश्रद्धा, चिंता आदि होते हैं तब तक वह प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए उन सब का अभाव करके चित्त में शांति, स्थिरता, अडगता, आदि को स्थापित करना साधक के लिए अति आवश्यक है।*

साधक को जाप की सिद्धि के लिए स्वयं में कौन-कौन से गुण होने चाहिए, उन योग्य गुणों का चिंतन मनन करना चाहिए।†

साधक को यह भी निश्चय होना चाहिए कि उद्देश्य

---

* जीवन में सद्गुणों की साधना कैसे करना इस विषय में देखो लेखक कृत ६०८ पृष्ठ का "**सद्गुण साधना**" नामक पुस्तक

† इस विषय में अधिक जानकारी इस पुस्तक में ही आगे दी गई है।

की सफलता इस जाप के प्रभाव से ही होनेवाली है। जैसे जैसे सफलता मिलती जाय वैसे वैसे उसे समर्पण भाव अधिक अधिक चित्त में उतारते जाना चाहिए ।

जाप की संख्या कितनी हुई इसका ध्यान रखने के साथ साथ जाप में चित्त की एकाग्रता कितनी हुई इसका भी ध्यान बराबर रखना चाहिए, और एकाग्रता लाने के लिए भाव की विशुद्धि बढ़ाते रहना चाहिए। भाव की विशुद्धि जैसे जैसे बढ़ती है वैसे वैसे एकाग्रता के साथ हृदय का उल्लास भी बढ़ता है और जैसे जैसे उल्लास बढ़ता है वैसे वैसे कर्म क्षय अधिक होता है।

जाप से अन्य कार्य हो न हो, परन्तु हृदय शुद्धि होती है और हृदय शुद्धि के फल स्वरूप बुद्धि भी निर्मल बनी रहती है ऐसा बारम्बार चिंतवन करना। बुद्धि निर्मल होने से सब पुरुषार्थों की सिद्धि होती है ऐसा शास्त्र वाक्य सदैव याद रखना। "बुद्धि को निर्मल करने का ध्येय जाप द्वारा अवश्य पूरा होता है"—ऐसी श्रद्धा रखना चाहिए। जाप करनेवाले साधक को विषयों को विष वृक्ष के समान समझना, संसार के समागमों को स्वप्नवत् देखना, अपनी वर्तमान अवस्था को नाटक का भाग मानना, शरीर को कैदखाना और घर को मुसाफिर खाना मानना चाहिये। इस प्रकार अनित्यादि भावना से अपनी आत्मा को परिपूर्ण करना। संथारे पोरिसी* की गाथाओं में बताये पदार्थों के अर्थ का चिंतवन पूर्वक स्वाध्याय करने से दिन प्रतिदिन साधना मार्ग में आगे बढ़ने का बल प्रगट होता है। साधक को जाप से प्राप्त

*संथारा पोरिसी सूत्र अनुवाद सहित इस पुस्तक में आगे दिया गया है।

होनेवाले नीचे के गुणों का भी चिंतन करना चाहिए। जैसे—

श्री नवकार मंत्र का जाप करने से आत्मा को शुभ कर्म का आश्रव होता है, अशुभ का संवर होता है, पूर्व कर्म की निर्जरा होती है। लोक स्वरूप का ज्ञान होता है, सुलभ बोधिपन प्राप्त होता है और सर्वज्ञकथित धर्म की भवोभव प्राप्ति करानेवाला पुण्यानुबंधि पुण्यकर्म उपार्जन होता है। इस प्रकार की शुभ भावनाएँ चित्त में निरन्तर रमणता करे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए।

●

भौतिकवाद के युग में अध्यात्मवाद का अमीं-पान करने के लिए श्री नमस्कार महामन्त्र के समान कोई उत्तम साधन नहीं, कोई निर्मल और सरल मंत्र नहीं। यह महामंत्र कुविकल्पों से मन की रक्षा करता है। बुरे विचारों से मन की रक्षा करना यह एक महत्व की वस्तु है। वर्तमान युग में धन, सत्ता व वैभव की रक्षा करने के लिये, बल, आरोग्य का रक्षण करने के लिये अनेक साधनों के आयोजन किये गये और होते हैं परन्तु संकल्प विकल्प से मन की रक्षा करने के लिये एक भी समर्थ साधन आयोजित किया हो ऐसा सुनने में नहीं आया। इसके लिये नवकार मंत्र एक समर्थ साधन है। पूर्व महर्षियों ने मन की रक्षा करने के लिये अनेक प्रकार के मन्त्रों की रचना की है, ऐसे सर्व मंत्रों में श्री नमस्कार महामन्त्र का स्थान जैन शासन में सर्वोपरि है।

जाप में प्रगति के इच्छुकों को निम्न नियमों का आग्रह पूर्वक पालन करना आवश्यक है।

(१) दुर्व्यसनों का त्याग।

(२) अभक्ष्य भक्षण का त्याग।

(३) श्री जिन पूजन आदि श्रावकाचार का पालन, तथा यथाशक्ति तप-जप, ध्यान और आवश्यक क्रियाएँ।

(४) बाह्य जीवन में खासकर प्रामाणिकता और नीति-मत्ता का पालन-रक्षण।*

(५) त्रिकाल विश्व कल्याण की श्रेष्ठ भावना पूर्वक कम से कम बारह बारह नवकार मंत्र का नियमित जाप।

(६) श्री नमस्कार महामंत्र के धारण करनेवाले को अपना परम बंधु समझ उसके सुख दुख में परस्पर सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार रखना।

(७) पंच परमेष्ठी नमस्कार के प्रति प्रीति-भक्ति जागृत हो ऐसा वाचन, मनन, परिशीलन दिन में थोड़ी देर प्रति-दिन नियमित करना।

(८) आराधकों को नमस्कार की आराधना में उत्तेजना मिले इस हेतु से साहित्य की वृद्धि, अनुभव की सामग्री तथा जाप के अभ्यास क्रम की विधि आदि योजनाओं द्वारा मार्ग दर्शन देने का प्रयत्न करना और करवाना।

——

* उत्तम आचार-विचार, न्याय-नीति, योग, अध्यात्म एवं परमात्म-भक्ति के विषय में अधिक जानकारी के लिये देखो लेखक कृत ६०० पृष्ठ का पुस्तक **"धर्म साधना"**

महामन्त्र की साधना से होने वाले लाभ

सामान्य फल—साधना के क्रम प्रमाण से साधना करने से शारीरिक रोग आदि उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न रोग आदि दोषों का नाश होता है।

मध्यम फल—महामंत्र की साधना का बल बढ़ने से जगत साधक के अनुकूल वर्ताव करता है, साधक का अंतः-करण और विचार पवित्र और शुद्ध होता है, वचन आदरणीय बनते हैं और शुभ भावों की वृद्धि होती है।

उत्तम फल—इस साधना के प्रताप से अपूर्व आत्मिक आनन्द का अनुभव होता है, मन प्रफुल्लित होता है, संतोष वृत्ति प्रगट होती है। काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि संताप करनेवाले क्लेशकारी भाव निर्बल होते हैं, भावनादि गुणों की वृद्धि होती है और धीरता, उदारता, गंभीरता आदि भाव ऐश्वर्य की वृद्धि होती है।

उत्तमोत्तम फल---इस संसार में यदि सर्वोत्तम फल कोई है तो वह एक ही है और वह है "विश्व कल्याण की परमोच्च भावना"। श्री परमेष्ठी की साधना का यह श्रेष्ठतम फल साधक साधना से प्राप्त कर सकता है अर्थात् श्री परमेष्ठी की साधना साधक को परमेष्ठी बनाती है, सर्व श्रेष्ठ बनाती है, जगत पूज्य बनाती है और क्रमशः सर्व कर्म

से मुक्त बनाकर पारलौकिक सर्वश्रेष्ठ फल-सिद्धिपद प्राप्त कराती है ।

'साधना के मार्ग में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक जो कुछ विकास होता है वह देव-गुरु की कृपा का ही फल है' ऐसी श्रद्धा साधक को अवश्य पूर्ण बनाती है। परन्तु 'यह तो मेरे प्रयत्न का फल है' इस प्रकार से 'अहं' को महत्व देने से विकास रुक जाता है। इसलिये इस मार्ग के अनुभवी पुरुषों का निम्न कथन साधक को हमेशा के लिये अपने हृदय में अंकित कर लेना जरूरी है। योग शास्त्र के बारहवें प्रकाश में आ० श्री हेमचंद्राचार्यजी ने इस सम्बंध में कहा है कि–

अथवा गुरुप्रसादा-दिहैव तत्त्वं समुन्मिषति नूनम् ।
गुरुचरणोपास्तिकृतः, प्रशमजुषः शुद्धचित्तस्य ॥

गुरु के चरण की सेवा करनेवाला, शांत रस में लीन रहनेवाला और पवित्र अंतःकरणवाले साधक को गुरु की कृपा से इसी भव में ही अवश्य तत्त्व का प्रकाश होता है।

तत्र प्रथमे तत्त्व-ज्ञाने संवादको गुरुर्भवति ।
दर्शयिता त्वपरस्मिन्, गुरुमेव सदा भजेत्तस्मात् ॥

पूर्व जन्म में प्रथम तत्त्व प्रकाश के अभ्यास में उपदेश दाता गुरु होते हैं और दूसरे भव में भी उस तत्त्व ज्ञान को दिखानेवाले गुरु हैं, इस कारण तत्त्व के पकाश के लिये गुरु की ही निरंतर 'सेवा' करना ।

यद्वत्सहस्रकिरणः, प्रकाशको निचिततिमिरमग्नस्य ।
तद्वद्गुरुरत्र भवे-दज्ञानध्वांतपतितस्य ॥

जिस प्रकार गहरे अंधकार में रखे पदार्थों को सूर्य दिखाता है उसी प्रकार अज्ञान रूपी अंधकार में सोये जीवों को इस भव में तत्त्वोपदेश रूप सूर्य के द्वारा ज्ञान मार्ग बताने वाले गुरु हैं। इस कारण अपनी मति कल्पना से किये गये कष्टकारक उपायों का त्याग कर गुरु के उपदेश के अनुसार साधक को तत्त्वाभ्यास में प्रीति करनी चाहिये। इस तरह साध्य की सिद्धि के लिये तत्त्वदर्शक गुरु के उपकार की स्मृति और अरिहंत परमात्मा के पवित्र नाम का निरंतर स्मरण बराबर चालू रखना, साधक के लिये आवश्यक है।

—

ग्रीष्म की प्रचण्ड गर्मी के बाद वर्षा ऋतु का शुभ आगमन होता है, उसी तरह श्री नवकार महामंत्र के उच्च कोटि के ध्यान की गर्मी प्रगट होने के बाद सदाचार रूपी समता सामायिक का मंगल आगमन होता है। सुवर्ण को घड़ने से पहले उसे पूरी तरह तपाया जाता है, पीछे वस्तु बनाई जा सकती है, उसी तरह श्री नवकार के ध्यान की गर्मी द्वारा विशुद्ध हुए जीवन में समता सामायिक का निर्माण हो सकता है। नवकार के ध्यान का पूरा पूरा पुट दिये बिना जीवन में समता सामायिक के योग्य पुण्य पवित्र अध्यवसायों की नई रचना नहीं हो सकती और तब तक सच्चे सुख के आनंद का अनुभव नहीं हो सकता। कृत्रिम सुखों में तब तक ही रहा जाता है जब तक समता सामायिक के परम आनंद का अनुभव नहीं होता।

जाप किस तरह किया जाय ?

जाप के तीन प्रकार हैं। (१) भाष्य (२) उपांशु और (३) मानस। ये तीनों उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। अर्थात् भाष्य से उपांशु और उपांशु से मानस जाप का फल बहुत अधिक है। इतना होने पर भी जाप की शुरुआत तो भाष्य से ही करना उत्तम है। जो भाष्य जाप के अभ्यास के बिना उपांशु जाप का आश्रय लेते हैं या उपांशु जाप के अभ्यास बिना सीधा मानस जाप का आश्रय लेता है, उसे जप सिद्धि नहीं होती। कदाचित् किसी महापुरुष को पूर्व जन्म के संस्कारों के बल से इस क्रम का आश्रय लिये बिना सिद्धि हो भी जाय तब भी उसे राजमार्ग नहीं मानना चाहिये। भाष्य और उपांशु जाप का अभ्यास होने के बाद मानस जाप करना लाभदायक है।

भाष्य, उपांशु और मानस आदि जाप के लक्षण

"यस्तु परैः श्रूयते स भाष्यः।" जिसे दूसरे सुन सके वह भाष्यः अर्थात् होठ हिलाकर स्पष्ट उच्चारण रूप बैखरी वाणी से मन्त्र का जाप करना उसे भाष्य जाप कहा जाता है। यह जाप मधुर स्वर से ध्वनि श्रवण पूर्वक बोलकर करना। भाष्य जाप से चित्त निरव शांत बनता है। यह जाप वचन प्रधान है। इसे वाचिक जाप भी कहा जाता है।

यह जाप भली प्रकार सिद्ध करने के बाद मध्यमा वाणी से जाप किया जाय, उसे 'उपांशु' कहा जाता है।

'उपांशुस्तु परैरश्रूयमाणोऽन्तर्जल्परूपः।

'दूसरे न सुन सके ऐसा परन्तु अंदर से रटण रूप हो वह उपांशु'। इसमें होठ, जीभ आदि का व्यापार तो चालू रहता है, परन्तु प्रगट आवाज नहीं होती। इस जाप में वचन की निवृत्ति होती है। काया की प्रवृत्ति इसमें प्रधान होती है।

इस जाप की सिद्धि के बाद हृदय गता **'पश्यंति'** वाणी से जाप करना उसे **'मानस'** जाप कहा जाता है।

मानसो मनोमात्रवृत्तिनिर्वृत्तः स्वसंवेद्यः।

"मानस जाप उसे कहा जाता है जो मात्र मन की वृत्तियों द्वारा ही होता है और साधक स्वयं उसका अनुभव कर सकता है।" इस जाप में काया की और वचन को प्रवृत्ति निवृत्त होती है अर्थात् होठ आदि अवयवों का हलन, चलन और उच्चारण सर्वथा रुक जाता है। जाप करते समय दृष्टि को प्रतिमा, मन्त्राक्षरों, अथवा नासिका के अग्रभाग पर स्थिर रखना। यदि ऐसा न हो सके तो नैत्र बंद कर कल्पना से अक्षरों को लक्ष्य में रख जाप करना। मानस जाप अच्छी तरह सिद्ध होने पर नाभिगता 'परा' वाणी से जाप किया जाय उसे **'अजपा'** जाप कहते हैं। दृढ़ अभ्यास होने से इस जाप में चिंतन बिना भी मन में निरन्तर महामन्त्र का रटण होता रहता है। जब उपयोग न हो तब भी श्वासोच्छबास

की तरह यह जाप चालू रहता है। जैसे कोई आदमी चार बजे उठने का दृढ़ संकल्प करके सो जाता है, तो उस संकल्प बल से ही, चार बजे उठता है, ऐसा अजपा जाप चालू रहता है और बराबर चार बजे उठ सकता है वैसे अजपा जाप भी दृढ़ संकल्प और दीर्घ अभ्यास से सिद्ध हो सकता है। इस स्थिति में बिना प्रयत्न के भी 'अखण्ड जाप' चालू रहता है और उससे शरीर के रोम रोम में इष्ट देव का स्मरण चालू रहता है। इस प्रकार के जाप से साधक को अनिर्वचनीय सुख का अनुभव होता है।

नवकार का प्रत्येक अक्षर मंत्र स्वरूप है

नवकार के पांच अथवा नव पदों को अनानुपूर्वी से भी चित्त की एकाग्रता के लिये गिना जाता है। नवकार का एक एक अक्षर अथवा एक एक पद का जाप भी बहुत फल को देनेवाला है। योग शास्त्र के आठवें प्रकाश में कहा है कि पंचपरमेष्ठी के नाम से उत्पन्न हुई सोलह अक्षर की विद्या है, उसका दो सौ बार जाप करने से उपवास का फल होता है। **'अरिहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय साहू'** ये सोलह अक्षर जानना। इसी प्रकार भव्य जीव **'अरिहंत सिद्ध'** इन छः अक्षर के मंत्र को तीन सौ बार, **'अरिहंत'** इन चार अक्षर के मंत्र को चार सौ बार और अरिहंत के आदि अक्षर **'अ'** वर्ण रूप मंत्र को पांच सौ बार चित्त की एकाग्रता से गिने तो उपवास का फल मिलता है।

नवकार के वर्णों के जाप का मात्र इतना ही फल नहीं है, परमार्थ से तो नवकार के जाप का फल स्वर्ग और मोक्ष

है। फिर भी यहां जो सामान्य फल बताया गया है. वह जीव को नवकार के जाप में प्रवृत्ति कराने के उद्देश्य से बताया गया है।

उपरान्त कहा है कि नाभि कमल में सर्वतोमुखी 'अ'-कार, शिरः कमल में 'सि' कार, मुख कमल में 'आ' कार, हृदय कमल में 'उ' कार और कंठ कमल में 'सा' कार रहा हुआ है ऐसा सोच कर ध्यान करना चाहिये तथा दूसरे भी सर्व कल्याण करनेवाले मंत्र बीज का चिंतवन करना। इस लोक के फल की इच्छा करनेवालों को 'ॐ'कार सहित पाठ करना और निर्वाण पद की इच्छा करनेवालों को ॐकार रहित पाठ करना। इस तरह चित्त की स्थिरता के लिये इस मंत्र के वर्ण और पदों को अनुक्रम से अलग करके भी जाप किया जाता है। श्री महानिशीथ सूत्र में इस मंत्र को अनंत गम-पर्याय और अर्थ का प्रसाधक तथा सर्व महामंत्र और प्रवर विद्याओं का उत्कृष्ट बीज स्वरूप बताया है। इस मंत्र का जाप आत्मा के लिये सब तरह से हितकारक है। जाप करते करते थकावट हो जाय तो 'ध्यान' करना और ध्यान करते करते थकावट आ जाय तो 'जाप' करना तथा दोनों से थकावट हो जाय तो स्तोत्र बोलना। शास्त्रों में जाप आदि का बहुत फल बताया है। जैसे करोड़ पूजा के बराबर एक स्तोत्र है, करोड़ स्तोत्र के बराबर एक जप है, करोड़ जाप के बराबर एक ध्यान है, और करोड़ ध्यान के बराबर एक लय है। लय अर्थात् चित्त की लीनता, एकाग्रता, स्थिरता, या स्वरूप में रमणता, जो कि ध्यान की सर्वोत्तम अवस्था है।

——

जाप के पांच प्रकार

शास्त्र में जाप के पांच प्रकार बताये हैं जिनके विषय में बताया है कि—

शाब्दाज्जापान्मौन-स्तस्मात् सार्थस्ततोऽपि चित्तस्थ।
श्रेयानिह यदिवाऽऽवात्म-ध्येयैक्यं जापसर्वस्वम् ॥

शब्द जाप के बजाय मौन जाप अच्छा है। मौन जाप के बजाय सार्थ जाप अच्छा है। सार्थ जाप से चित्तस्थ जाप अच्छा है और चित्तस्थ जाप के बजाय ध्येयैक्य जाप अच्छा है क्योंकि वह जाप का सर्वस्व है।

(१–२) शाब्द जाप अर्थात् भाष्य या वाचिक जाप और मौन जाप अर्थात् उपांशु जाप। इन दोनो का वर्णन पहले आ गया है।

(३) सार्थ जाप अर्थात् अर्थ सहित जाप। अर्थ को ध्यान में रख कर जाप करना। अर्थ की विचारणा नीचे लिखे माफिक हो सकती है, जैसे—

नमो अरिहंताणं पद बोलते ही अपने मन में समवसरण में बैठे, चतुर्मुख से मालकोश राग मे बारह पर्षदा के सामने मेघ ध्वनि सदृश गंभीर घोष से देशना देते श्री अरिहंत भगवान का चित्र खड़ा हो जाय तो उसे सार्थ जाप कहा जा सकता है।

बहुत से मनुष्यों को अर्थ का ज्ञान नहीं होता, इसलिए वे अपनी दृष्टि के समक्ष वाच्य पदार्थों का खयाल नहीं ला सकते और इसलिये ध्येय में जैसी तन्मयता होनी चाहिये वह नहीं होती, यदि तन्मयता बराबर हो तो अपूर्व आनन्द प्राप्त हो ऐसा नियम है, इसलिये महामंत्र की साधना करनेवाले को नमस्कार का अर्थ बराबर जान लेने का प्रयास करना जरूरी है और इसीलिये अलग २ अनेक दृष्टि से इस पुस्तक मे अनेक जगह नमस्कार महामन्त्र का अर्थ और भावार्थ समझाने का प्रयत्न किया गया है ।

नमो सिद्धाणं पद बोलते ही लोक के अग्र भाग पर की शुद्ध स्फटिक समान पैंतालीस लाख योजन की सिद्धशिला और उस पर बिराजमान हुए निरंजन, निराकार, वीतराग, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, पूर्ण सुखी, सर्व शक्तिमान ऐसे अनन्त सिद्ध भगवंतों का खयाल स्पष्ट हो जाना चाहिये ।

नमो आयरियाणं पद बोलते ही महान् आचार्य जो कि प्रभु शासन के नायक हैं, पंचाचार से विभूषित हैं और शिष्यों से भी पंचाचार का पालन करा रहे हैं—यह चित्र खड़ा हो जाना चाहिये ।

नमो उवज्झायाणं पद बोलते ही श्रुत के पारगामी उपाध्यायजी महाराज साधुओं को सूत्र सिद्धांत की वाचना दे रहे हैं, इस प्रकार का चित्र मन में खड़ा होना चाहिये ।

नमो लोए सव्वसाहूणं पद बोलते ही शांत, दांत, धीर, गम्भीर, क्रिया-तत्पर, स्व पर कल्याण की साधना करनेवाले साधु महात्माओं का चित्र मन में स्पष्ट हो जाना चाहिये ।

एसो पंचनमुक्कारो इत्यादि चूलिका के पद बोलते ही, इन पांच नमस्कार से मेरे पापों का नाश हो रहा है, मुझे उत्कृष्ट मंगल की प्राप्ति हो रही है, ऐसा खयाल मन में स्पष्ट अंकित हो जाना चाहिये। इस प्रकार यदि जाप हो तो चित्त की चंचलता कम हो कर, एकाग्रता बढ़ेगी और उससे आनन्द की भी वृद्धि होगी।

(४) चित्तस्थ जाप–चित्तस्थ जाप अर्थात् मानस जाप। इस जाप में एकाग्रता बहुत चाहिये। जिनका मन इधर उधर घूमता रहता है, वे यह जाप नहीं कर सकते। मन बन्दर के समान है और वह चारों तरफ दौड़ता रहता है यह बात सत्य है, परन्तु अभ्यास से उसे ठिकाने लाया जा सकता है। कहा कि—

अभ्यासेन स्थिरं चित्तं, अभ्यासेनानिल-च्युतिः।
अभ्यासेन परानन्दो, अभ्यासेनात्मदर्शनम्॥

अभ्यास से चित्त स्थिर होता है, अभ्यास से वायु को (प्राण को) काबू में रखा जा सकता है अभ्यास से परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है और अभ्यास से आत्म-दर्शन हो सकता है।

वाग्योग से मनोयोग की अधिक विशेषता है। इसलिये मौन जाप श्रेष्ठ है। महान् पुरुषों ने स्तोत्र के बजाय जाप को कोटि गुणा अधिक लाभदायक बताया है। योग जनित प्रातिभ ज्ञान के बल से यह बात उन्होंने निश्चित की है। जाप में अभ्यंतर परिणाम की वृद्धि विशेष होती है। जाप

ध्यान की भूमिका भी मानी है। ध्यान पर पुनः आरूढ़ होने के लिये भी यह बहुत उपयोगी होता है।

(५) ध्येयैकत्व जाप---ध्येयैकत्व जाप अर्थात् आत्मा और परमात्मा की एक्यता। आत्मा ध्याता है, परमात्मा या परमेष्ठी ध्येय है। दोनों के मध्य की यह भेद रेखा मिट जाय अर्थात् जपनार ध्याता ध्येय रूप परमेष्ठी के साथ एकमेक बन जाय तब यह जाप सिद्ध हुआ कहा जाता है। जाप का अंतिम रहस्य यह है, इसलिये इसे जाप का सर्वस्व कहा जाता है।

यांत्रिक साधनों के द्वारा आकाश में उड़ने की या पृथ्वी के पैदें में बैठने की शक्ति को प्राप्त करना यह मानव मन को कभी राहत देनेवाली नहीं है बल्कि अधिक अशांत बनानेवाली है। अशांत मनवाला मनुष्य यहां रहे या अन्य स्थान पर जाय दोनों बराबर है। मानव जीवन में धन, वैभव या सत्ता ये कोई महत्त्व की वस्तु नहीं है किन्तु अपने मन को जीतना यही परम पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थ की सिद्धि मन को स्वाधीन करने से होती है। मन वश करने का सर्वोत्तम साधन महामंत्र नवकार है।

जाप के तेरह प्रकार

महामंत्र की साधना में मुख्य वस्तु जाप है, इसीलिये कहा है कि **जपात्सिद्धि र्जपात्सिद्धि-र्न संशयः**—जप से सिद्धि होती है। इसमें जरा भी संशय नहीं। यह शास्त्र वचन है। इसलिये इस जाप की विविध प्रकार की जानकारी हो तो इसके भिन्न भिन्न प्रकृति वाले जीव अपनी २ भूमिका के अनुसार जाप का जो प्रकार अपने लिये ठीक हो उन्हें जानकर उसके द्वारा अपनी प्रगति कर सकता है। इसलिये जाप के विशेष प्रकार यहां बतलाये जाते हैं।

अपेक्षा विशेष से शास्त्र में जाप के तेरह प्रकार भी माने गये हैं। वे इस प्रकार हैं।

रेचकपूरककुम्भाः, गुणत्रयं स्थिरकृति स्मृतो हक्का।
नादो ध्यानं ध्येयैकत्वं, तत्वं च जपभेदाः॥

(१) रेचक (२) पूरक (३) कुम्भक (४) सात्त्विक (५) राजसिक (६) तामसिक (७) स्थिरकृति (८) हक्का (१०) नाद (११) ध्यान १२) ध्येयैकत्व और (१३) तत्त्व, ये जाप के तेरह भेद हैं।

(१) रेचक जाप—शरीर के भीतर के वायु को नाक द्वारा बाहर निकालते हुए जो जाप किया जाय वह रेचक जाप।

(२) पूरक जाप—वायु को नाक द्वारा शरीर में ले जाते हुए जो जाप किया जाय वह पूरक जाप।

(३) कुंभक जाप—वायु को शरीर में स्थिर करते हुए जो जाप किया जाय वह कुम्भक जाप।

(४) सात्त्विक जाप—शान्ति कर्म के लिये किया गया जाप सात्त्विक जाप।

(५) राजसिक जाप—राजसिक कार्य के लिये किया गया जाप राजसिक जाप।

(६) तामसिक जाप— तामसिक कामों के लिये किया गया तामसिक जाप।

राजसिक व तामसिक जाप मुमुक्षुओं के करने के लिये नहीं है।

(७) स्थिर कृति जाप—चाहे जैसे विघ्न सामने आवे फिर भी स्थिरता पूर्वक जाप किया जाय वह स्थिर कृति जाप।

(८) स्मृति जाप—दृष्टि को नाक के अग्र भाग पर अर्थात् आंखों की दोनों भौहों के बीच का स्थान स्थिर कर मंत्र का मन से रटण करने में आवे वह स्मृति जाप।

(९) हक्का जाप—जिस मंत्र के अंत्यपद क्षोभ कारक हो, उसका जाप करना वह हक्का जाप। अथवा जिसमें श्वांस लेते और निकालते समय हकार का विलक्षणता पूर्वक उच्चारण करते रहना वह हक्का जाप।

(१०) **नाद जाप**--जाप करते समय मन में भ्रमर की तरह गुंजार की आवाज हो वह नाद जाप।

(११) **ध्यान जाप**---मंत्र पदों का वर्णादि पूर्वक ध्यान करना वह ध्यान जाप।

(१२) **ध्येयैक्य जाप**--ध्याता और ध्येय की ऐक्यता। इसका वर्णन पहले आ गया है।

(१३) **तत्त्व जाप**--पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच तत्त्व हैं। इनके अनुसार जाप करना वह तत्त्व जाप।

जाप के इस प्रकार में ध्यान योग और स्वरोदय दोनों का समावेश हो जाता है।

श्री नमस्कार महामंत्र आध्यात्मिक अनुभवों की चाबी है। सब साधनों की चाबियों की जादू की पेटी भी इसे कहा जा सकता है।

× × ×

आराधना के बाद ही यह सत्य समझ में आता है कि श्री पंचपरमेष्ठी मात्र काल्पनिक भावना नहीं है, परन्तु ऊँची भूमिका में का एक परम सत्य है।

श्री परमेष्ठियों के स्मरण का महत्व

जाप द्वारा परमेष्ठिओं का स्मरण अपने अंतरात्मा में जैसे बढ़ता जाता है, वैसे २ आनन्द बढ़ता जाता है। मुझे प्रेम है ऐसा कहने मात्र से प्रेम होना नहीं माना जाता। सोते, उठते, बैठते, चलते, फिरते वही वस्तु याद आवे, उसी का स्मरण हुआ करे, उसके बिना चैन नहीं पड़े, तब समझना कि अपने हृदय में जाप प्रेम जगा है।

श्रीपाल महाराज को आपत्ति और संपत्ति दोनों में सर्वत्र अरिहंत परमात्मा का स्मरण होता रहता था। दुष्ट विचार से धवल सेठ ने जब उन्हें समुद्र में गिराया तब भी उनके मुंह से "**नमो अरिहंताणं**" पद निकला। जब वे नाटक देख रहे थे तब भी वे अरिहंत का स्मरण कर रहे थे। उत्तम पुरुषों के अंतःकरण में इस प्रकार परमात्मा का स्मरण निरंतर चालू ही रहता है।

परदेश गमन के समय मयणासुन्दरी ने भी श्रीपाल महाराज को यही कहा था कि अरिहंतादि को एक क्षण भी कभी मत भूलना क्योंकि परमात्मा को न भूलना और उनका सदैव स्मरण करना ही सर्व संपत्ति का अमोघ बीज है, ऐसी दृढ़ श्रद्धा मयणासुन्दरी के हृदय में थी। जब हृदय में परमात्मा आते हैं तब सब कार्यों की सिद्धि अवश्य होती है। ऐसा शास्त्र

का वचन है। विपत्ति सच्ची विपत्ति नहीं है परन्तु परमात्मा को भूल जाना यही विपत्ति है। इसी तरह संपत्ति सच्ची संपत्ति नहीं परन्तु परमात्मा को न भूलना और उनका सदैव स्मरण करना यही सच्ची संपत्ति है।

परमात्मा का स्मरण आत्मा को कितना लाभदायक है और परमेष्ठी स्मरण कैसा होना चाहिये, इस सम्बन्ध में अनुभवियों के निम्न उद्‌गार यहाँ विचार करने योग्य हैं। वे कहते हैं कि—

"सहज स्थिति प्राप्त करने का मार्ग परमात्मा का स्मरण है। इसलिये अब मैं श्वासोश्वास में परमात्मा का ही स्मरण करूँगा जिससे एक दिन अवश्य परमात्मा की प्राप्ति होगी।"

"परमात्मा का स्मरण करने से सुख याने निज स्वरूपानन्द की प्राप्ति होती हैं और दुःख याने जन्म, जरा, मरण का नाश होता है। परमात्मा का स्मरण करनेवाला अन्त में परमात्मा बन जाता है।"

"जिस प्रकार पनिहारी रास्ते में हिलती, चलती, डोलती तथा अन्य बहिनों के साथ बात करते हुए भी सिर पर रखी मटकी को नहीं भूलती, उसी तरह विवेकी पुरुष को भी परमात्मा के स्मरण में अपनी सूरता (अपना उपयोग) को निरंतर जागृत रखना चाहिवे।"

"जिस प्रकार पतंगिया दीये के प्रेम में आसक्त होकर क्षण में अपने प्राण त्याग देता है और अपने शरीर का मोह नहीं करता उसी प्रकार मुमुक्षुओं को अपने मन को परमात्मा, के स्मरण में लगाने में जरा भी नहीं हिचकिचाना चाहिये।"

"हे, आत्मा ! तू अपनी सूरता भगवत स्मरण में लगादे फिर तेरे में संसार का कोई भी अवगुण प्रवेश नहीं कर सकेगा अर्थात् तेरी वृत्ति संसार में तल्लीन नहीं होगी।"

"हे पुरुष ! तू परमात्मा का स्मरण करने में जरा भी आलस्य मत करना ! जितना स्मरण करेगा उतना ही लाभ होगा। प्रभु स्मरण से सारी दुनिया तेरी सेवा करेगी और शरीर छूटने पर तू अमरापुरी में जायगा।"

"भगवान का स्मरण करने मात्र से भव्य जीवों का अनादि संसार से उत्पन्न हुए समस्त दुःखों का एक दम नाश हो जाता है।"

"हे जिन ! अचिंत्य महिमावाला आपका स्तवन तो दूर रहा, परन्तु आपका नाम स्मरण ही तीनों जगत की रक्षा करता है।"

"हे प्रभु आपकी आकृति को हृदय में धारण करने से दूसरा कोई रूप हृदय में स्फुरायमान नहीं होता। तुम्हारे रूप का स्मरण होते ही पृथ्वी में दूसरे किसी रूप की प्रसिद्धि नहीं होती। इसलिये 'तू ते हूँ" ऐसी अभेद बुद्धि के उदय से "युष्मद् अस्मद्'। पद का उल्लेख भी नहीं होता। कोई अगोचर परम चैतन्यमय ज्योति अन्तर में स्फुरायमान होती हैं।"

भ्रमरी के ध्यान से इलिका जिस तरह भ्रमरी हो जाती है उसी तरह परमात्मा का सतत स्मरण और ध्यान करने से आत्मा परमात्मा बन जाती है।

महापुरुषों का कथन है कि परमात्मा का स्मरण कीर्तन करने से करोड़ों तप का फल मिलता है, सब कामनाएँ सिद्ध होती है, अंत:करण और जन्म सफल होता है, कष्ट और विघ्न दूर होते हैं, मंगल और कल्याण की परम्परा मिलती है. महिमा और आदर की वृद्धि होती है, प्रत्येक स्थान पर सुयश और महोदय होता है, दुर्जनों का चिंतन किया काम निष्फल होता है, यश, कीर्ति और बहुमान बढ़ता है, आनन्द, सुख, लीला और लक्ष्मी प्राप्त होती है, भवजल तरण, शिवसुख मिलन और आत्मोद्धारकरण सुलभ होता है। दुर्गति के द्वारों की रुकावट और सद्गति के द्वारों का उद्घाटन होता है।

इसीलिये परमात्मा का स्मरण परम निधान है। अमृत का कुम्भ है। रात दिन करने योग्य है। क्षण भर भी भूलने लायक नहीं है। इसे स्मरण करनेवाले को नव निधान प्राप्त होते हैं, कल्पवृक्ष उसके आंगन में है, आठ महा-सिद्धियाँ घर में हैं। परमेष्ठिओं का स्मरण करने से बिना किसी प्रकार के शारीरिक कष्ट के भवजल से पार हो जाते हैं और अजरामरपद की प्राप्ति हस्तामवलकवत् हो जाती है।

परमात्मा के स्मरण सम्बन्धी निम्न काव्य उपयोगी होने से यहां दिये जाते हैं।

"अरिहंत अरिहंत समरतां, साधे मुक्तिनु धाम;
जे नर अरिहंत समरशे, तेहनां सरशे काम.
सूतां बेशता उठतां, जे समरे अरिहंत;
दु.खीयानां दुःख भांगशे, लेशे सुख अनन्त.

आश करो अरिहंतनी, बीजी आश निराश;
जेम जगमां सुखीया थया पाम्या लील विलास.

× × ×

"पंचम काले पामवो, दुल्लहो, प्रभु देदार;
तो पण तारा नामनो, छे मोटो आधार".

× × ×

अरिहंत देव सुसाधु गुरु, धर्म ज दया विशाल;
जपहु मंत्र नवकार तुम, अवर म झंखो आल.

× × ×

"निश दिन सूतां जागतां, हियडाथी न रहे दूर रे;
जब उपकार संभारीये, तब उपजे आनन्द पूर रे.

× × ×

"ताहरी गत तुंही जाणे हो देव, स्मरण भजन
ते वाचक जश करेजी"

× × ×

"प्रभु प्रभु लय लागी नही, पडया न सद्गुरु पाय;
देख्या नहीं निज दोष तो, तरीये कौन उपाय.

जब नवकार मंत्र के स्मरण में इतना रस आ जावे तब समझना कि अब नवकार पर प्रेम जागृत हुआ है।

जाप करनेवाले साधक को ध्यान में रखने लायक बातें

जाप के लिये निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये।

(१) निश्चित समय–साधारणतया श्री नमस्कार महामंत्र के जाप के लिये ब्राह्म मुहुर्त (पिछली चार घड़ी रात्रि) और तीन संध्या का निश्चित समय श्रेष्ठ है। तीन संध्या इस प्रकार समझना। (१) सूर्य उदय के पूर्व की एक घड़ी और उदय के बाद की एक घड़ी (२) मध्याह्न पहले की एक घड़ी व पीछे की एक घड़ी (३) सूर्यास्त पहले की एक घड़ी व बाद की एक घड़ी (अथवा सूर्यास्त पीछे की दो घड़ी या सूर्योदय पहले की दो घड़ी भी संध्या गिनी जाती है) जाप करने के लिये इन तीन संध्या के समय को उत्तम बताया है; परन्तु इसमें भी पहली संध्या अधिक अच्छी है। क्योंकि उस समय वातावरण शांत होता है और मस्तिष्क भी शांत होता है। इसके सिवाय सूर्योदय से लेकर दश बजे तक और पिछली रात्रि का समय भी जाप के लिये अच्छा बताया गया है।

श्री नवकार मन्त्र का स्मरण जब २ अनुकूलता हो तब २ बारम्बार करने का शास्त्र में जो विधान है; इस प्रकार के जाप से शुभ संस्कारों की सतत जागृति रहती है उस अपेक्षा

से समझना। बारंबार स्मरण से शुभ संस्कारों की जागृति रहती है यह सत्य है, तो विशिष्ट आत्मशक्ति जागृत करने के लिये जाप की प्राथमिक भूमिका में ऊपर बताये गये समय की मर्यादा का पालन करना आवश्यक है। प्राथमिक भूमिका में जाप करनेवाले को अमुक समय निश्चित कर लेना चाहिये। जाप की प्राथमिक शक्तियों के अनुभव के लिये समय को निश्चित रखना जरूरी है।

(२) निश्चित आसन–श्री नवकार के जाप के लिये आसन श्वेत, शुद्ध ऊन का रखना। वस्त्र भी सफेद पहनना चाहिये और माला भी सफेद डोरे की गूंथी हुई होना चाहिये। श्वेत रंग शुक्ल लेश्या का प्रतीक है। शुक्ल ध्यान के योग्य भूमिका के भाव को आकर्षिक करने की शक्ति दूसरे रंगों की अपेक्षा इसमें अधिक है। प्रकाश के अधिक परमाणुओं को अपने प्रति आकर्षित करने का विशिष्ट गुण भी श्वेत रंग में है। पद्मासन आदि आसनों में से जिस आसन से सुखपूर्वक लम्बे समय तक बैठा जा सके उस अनुकूल आसन को निश्चित कर उस आसन से जाप करना।

शरीर और मन का आपस में सम्बन्ध है। शरीर बरतन के स्थान पर है और मन पानी के स्थान पर है, शरीर चंचल होता है तो उसकी असर मन पर होती है अर्थात् मन भी चंचल हो जाता है। इसलिये साधना की शुरुआत में आसन निश्चित करना ही चाहिये। आसन की स्थिरता का आधार भोजन की शुद्धि पर है। इसलिये साधक को अपनी प्रकृति के अनुकूल सात्विक और परिमित भोजन करना चाहिये।

उणोदरी का पालन करना चाहिये। भारी, तला हुआ और मसालों से भरपूर पदार्थ नहीं लेना चाहिये। इसके सिवा कम से कम संध्या का भोजन नहीं करना चाहिये।

शुभ भावनाओं से मन को शांत कर दृष्टि को नाक पर स्थापित करना चाहिये। सीधा बैठना चाहिये। ढींचण जमीन को स्पर्श करना चाहिये; करोड़ रज्जू सरल होना चाहिये। होठ बन्द रखें, दाँत दाँत को न छुए इसका खयाल रखना चाहिये। जगह भी निश्चित रखना चाहिये। एक स्थान पर श्रीनवकार मंत्र का जाप करने से उस जगह का वातावरण विशिष्ट कोटि का हो जाता है। बारंबार स्थान बदलने से और कहीं भी इच्छा माफिक जाप करने से स्वस्थ वातावरण उत्पन्न नहीं होता और शक्ति भी इधर उधर बिखर जाती है। इसलिये बिना किसी खास प्रयोजन व अत्यन्त जरूरी कारण बिना जाप का स्थान नहीं बदलना चाहिये। संयोगवश स्थान बदलना पड़ जाय तो भी बैठने का आसन तो एक ही रखना चाहिये।

(३) निश्चित दिशा—जाप नियमित रूप से पवित्र और एकान्त स्थान में, पूर्व या उत्तर दिशा के सामने बैठ कर, मकान के सब से नीचे के भाग में करना अथवा जिन मंदिर में भगवान के सन्मुख करना। स्थान जितना पवित्र होता है उतनी ही जाप में विशेष तल्लीनता आती है। इस बारे में सूरिपुन्दर श्रीहरिभद्राचार्यजी ने योगबिन्दु नामक ग्रन्थ रत्न में जो वर्णन किया है, वह अत्यंत उपयोगी होने से यहां बतलाया जाता है।

आचार्य श्री फरमाते हैं कि "धार्मिक पुरुषों का प्रधान लक्षण इष्ट देवता के मंत्र का जाप है। यह जाप इष्ट देव की स्तुति रूप है। मंत्र से जिस प्रकार सर्प दंश का विष दूर होता है उसी तरह जाप से पाप रूपी विष का नाश होता है। यह जाप देवता के सन्मुख, जलाशय, नदी या द्रह के पास, अथवा फल-फूल से लदे हुए विशिष्ट वृक्षोंवाले बगीचे के भीतर करना। माला से, अंगुली के पहर से, या हृदय कमल आदि विशिष्ट स्थान से मंत्र का जाप करना, जाप करते समय दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर और चित्त मंत्रों के पद पर एकाग्र करना।"

धूप और दीप से वातावरण शांत और शुद्ध रहता है। इसलिये यथासम्भव गृहस्थ साधक को गाय के शुद्ध घी के दीपक और दशांग जैसे उत्तम धूप की सामग्रीवाले स्थान को पसंद करना।

(४) निश्चित माला—श्रीनवकार मंत्र के जाप के लिये शुद्ध सूत की, असली स्फटिक की या शुद्ध चांदी की माला को अच्छा समझना।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव अनुसार जाप के फल की तारतम्यता होती है, इसलिये जाप में उपयोगी वस्तुएं अर्थात् माला आदि यदि शुद्ध हो तो उल्लास की वृद्धि होती है। जाप हमेशा किसी खास माला से ही करना। जहाँ तक हो माला को बदलना नहीं चाहिये। माला को अपने हृदय की सम श्रेणी में धारण करना चाहिये। और वह माला पहिने हुए वस्त्रों या पैर को स्पर्श नहीं करे इसका खयाल

रखना चाहिये। तथा मेरू का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

इस प्रकार करने से श्रीनवकार महामंत्रों के वर्णों के जाप द्वारा आराधक की आत्मशक्ति नवकारवाली के मणिये में केन्द्रित होती है। अन्त में कुछ समय बीतने के बाद आत्मशक्ति के केंद्र समान बनी उस मणियोंवाली माला के द्वारा जाप करने से आत्म शक्तिओं का शीघ्र विकास होता है। प्रारम्भ में कुछ दिन माला से जाप करना, पीछे नंदावृत्त और शंखावृत्त से गिनने का अभ्यास करना। नंदावृत्त से बारह की संख्या सीधे (जीमणा) हाथ से गिनना और शंखावृत से बांये हाथ से नौ की संख्या गिनना। इस प्रकार बारह को संख्या को नौ बार गिनते १०८ की संख्या होगी।

बायें	हाथ	का	शंखावृत	सीधे	हाथ	का	नंदावृत्त
३	४	५	०	३	४	५	१२
२	९	६	०	२	७	६	११
१	८	७	०	१	८	९	१०

इसके अलावा जब समय मिले तब जैसे बने वैसे समान साधना और समान विचारवाले अधिक साधकों के साथ मिल कर एक स्थान पर अधिक समय के लिये सहयोग से जाप की साधना करना चाहिये, इससे जाप में अधिक शक्ति उत्पन्न होती है।

(५) निश्चित संख्या—जाप का जघन्य प्रमाण इतना निश्चित करना चाहिये कि जीवन के अंत तक उतनी संख्या

से कम जाप कभी भी न हो। नियत प्रमाण से अधिक हो परन्तु कम तो नहीं हो। निश्चित संख्या पर दृढ़ रहने से जाप करनेवाले की वृत्तियां जगत के पदार्थों से पराङ्मुख होकर आत्माभिमुख बनती है। किसी भी संख्या की निश्चितता के बिना अव्यवस्थित किया गया जाप शक्तिओं को केन्द्रित करने में समर्थ नहीं होता। निश्चित संख्या को कायम रखने से आंतरिक शक्तिओं का विकास सरलता से हो सकता है। आधुनिक विज्ञान के कितने ही प्रयोगों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि अमुक निश्चित की हुई जगह, अमुक निश्चित किया गया समय, और अमुक निश्चित की गई संख्या से धाराप्रवाह जाप करने से अमुक प्रकार का निश्चित वातावरण तैयार होता है और उसमें प्रवेश करनेवाले खराब आचार-विचार वाले भी चमत्कारिक रीति से वातावरण के पवित्र संस्कारों से घड़ी भर के लिये उस वातावरण के रंग से रंजित हो जाते हैं। यह है स्थान, समय और संख्या की निश्चितता की महिमा ! यह है शब्द शक्ति के विद्युत तरंगों का प्रभाव! मोक्ष में गये अनंतानंत पुण्यात्माओं के आत्मबल के वाहकरूप श्रीनवकार महामंत्र के वर्ण हैं, वह प्रत्येक वर्ण दिव्य शक्ति के निधान हैं, अनादि सिद्ध है। इन अड़सठ वर्णों को समय, स्थान, दिशा और संख्या आदि की नियमिततापूर्वक गिनने में बहुत लाभ है। जाप की प्राथमिक भूमिका में उपरोक्त बातें उपयोगी होने से आराधक को अपनी आत्म शक्ति के विकास के लिए उसे आदरपूर्वक अपनाना चाहिये।

जाप की यह बाह्य विधि है; उसके साथ 'यह जाप सर्व जीवों के भव ताप को शांत करे' इस भावना की वृद्धि करने से साधक के अहं भाव का नाश होता है। अहंकार का नाश होना यही जाप का श्रेष्ठ फल है।

जाप में विशेष प्रगति के उपाय

जाप पहले नवकारवाली आदि के आलंबन से, शंखावृत्त नंदावृत्त आदि से और बाद में हृदय कमल में नवकार के अक्षरों की धारणा से करना। अक्षरों की धारणा का अभ्यास करने की रीति इस प्रकार है।

अक्षर देखने की प्रथम रीति

महामंत्रों के अक्षरों के साथ चित्त का मिलान हो इसके लिये प्रारम्भ में काले रंग पर सफेद अक्षरवाला छपा कार्ड सामने रख कर पढ़ना। एक बार अड़सठ अक्षर पढ़े जाय तब एक जाप पूरा हुआ समझना। अक्षर पढ़ते समय जो अक्षर पढ़े जावें उन अक्षरों पर ही दृष्टि का उपयोग रखना, क्योंकि अपने को यह महामंत्र बाल्यावस्था से ही प्राप्त हुआ होने से अति परिचित है। इसलिये दृष्टि का उपयोग 'न' पढ़ते 'मो' पर, 'मो' पढ़ते समय 'अ' पर और 'ता' पढते समय 'णं' पर, इस प्रकार उपयोग और जाप का उच्चारण आगे पीछे हो जाना सम्भव है। ऐसा न होने पावे इसके लिये छोटा बालक पढ़ता हो उस प्रकार पढ़ें—जैसे

न—मो—अ—रि—हं—ता—णं। इस तरह अलग २ पढ़ना। धीरे २ अभ्यास बढ़ने से शीघ्र पढ़ते समय भी उच्चारण और दृष्टि का उपयोग साथ रहेगा। इस प्रकार

पढ़कर जाप का अभ्यास चालू रहने से थोड़े समय बाद आंखें बंद करने पर भी अक्षर दिखाई देंगे। पीछे हृदय रूपी कागज पर ध्यान रूपी कलम से अपने नाम की तरह पंच परमेष्ठी के नाम को लिखते हों वैसे एकाग्रता से जाप करना। प्रारम्भ में ऐसी एकाग्रता नहीं आवे फिर भी ध्येय तो वही रखना, इससे दिन प्रति दिन स्थिरता बढ़ती जायगी।

अक्षर देखने की दूसरी रीति

ऊपर बताये गये तरीके से नियमित जाप करने के बाद नैत्रों को बन्द कर अक्षरों को दृष्टि के सामने लाने के लिये दूसरे भी प्रयोग हैं। जैसे—नैत्र बंद कर सामने एक काला पाटिया रखना, पीछे धारणा से ही हाथ में चाक का टुकड़ा लेकर उस पर 'नमो' ऐसा कल्पना से लिखना। इस तरह लिखा हुआ दिखाई देगा। जब तक न दिखाई दे तब तक बार २ इस तरह प्रयत्न करते रहना चाहिये। पीछे **'अरिहंताणं'** लिखना। बार २ प्रयत्न करने से वह दिखाई देगा। इस प्रकार नौ पदों के लिये प्रयत्न करना। अक्षर देखने के लिये इस तरह का प्रयत्न हररोज थोड़ी देर करना और इस प्रयत्न के साथ २ प्रथम रीति की तरह जाप भी चालू रखना।

अक्षर देखने की तीसरी रीति

सफ़ेद हीरों के ढेर की कल्पना करना, पीछे आँखें बँद कर कल्पना से उसमें से हीरा लेकर एक २ हीरे को क्रमशः रखते 'न' का आकार बनाना। इस प्रकार सब ही अक्षर कल्पना से बनाना। वे अक्षर सफेद हीरे जैसे चमकते

हुए दिखाई देंगे। इस तरह हरेक पद के अक्षर स्पष्ट दिखाई देना शुरु होने पर पीछे दूसरी आगे की रीतियां अनुकूल हो जाती है और साधना में शीघ्र विकास शुरु होने लगता है। अक्षर न भी दिखाई दे तब भी उपरोक्त जाप उपयोगी है, इससे एकाग्रता तो अवश्य ही बढ़ती है। इसलिये यह प्रयत्न तो चालू रखना ही चाहिये। इस प्रयत्न के साथ प्रथम रीति के अनुसार जाप भी चालू रखना।

भगवान की प्रतिमा आंखें बंद करके देखी जा सके इसके लिये भी प्रयत्न करना। अनुकूलता हो तो महा प्रभावशाली श्रीशंखेश्वरजी जैसे पवित्र तीर्थ में जाकर अट्ठम या तीन आयंबिल कर प्रतिमा के समक्ष बैठ कर अभ्यास करना लाभप्रद हैं।

धारणा से मानसिक पूजा

तीन नवकार के २७ पदों से भगवान की प्रतिमा की पूजा धारणा से दो बार नीचे लिखे क्रम से करना।

(१) सोधे पैर का अंगूठा (२) बांये पैर का अंगूठा (३) सीधा (जीमणा) जानु (४) बायां जानु (५) सीधा कांडु (६) बायां काँडु (७) सोधा कंधा (८) बायां कंधा (९) सिर शिखा, इन हरेक स्थान पर एक २ पद बोलने से एक नवकार पूरा होगा। पीछे (१०) भाल प्रदेश (११) कंठ (१२) हृदय (१३) नाभि कमल (१४) हथेली (१५) पुनः सीधे पैर का अंगूठा (१६) बायें पैर का अगूठा (१७) सीधा जानु (१८) बायां जानु, इन हरेक स्थान पर एक २ पद बोलने से दूसरा नवकार पूरा होगा और वहां से नाभि

तक हरेक स्थान पर एक २ पद गिनते तीसरा नवकार पूरा होगा। इस तरह दर्शन, पूजन आदि करते समय, धारणा से प्रतिमा की कल्पना कर तीन नवकार गिनना। इससे एकाग्रता में प्रगति होगी। चित्त की एकाग्रता के अभ्यास के लिये यहां तो मात्र 'दिक्सूचन' किया है। तात्पर्य यह है कि जिस तरह साधक की चित्तवृत्ति परमेष्ठिओं के ध्यान में एकाग्र हो उसी तरह इस प्रकार के दूसरे भी आवश्यक प्रयत्न करने में प्रयत्नशील रहा जा सकता है।

कहा है कि 'अभ्यासः कर्मणा कौशलमावहति" अर्थात् अभ्यास से कार्य में कुशलता प्रगट होती है। जिस बालक को एक पहाड़ा याद करने में महिनों व्यतीत हो जाते हैं वह भी समर्थ विद्वान हो जाता है ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं। इसी तरह प्रारम्भ में कठिन मालूम होनेवाला जाप भी उसका सतत अभ्यास करने पर सरल बन जाता है, इसलिये साधक को जाप में प्रगति लाने के लिये सतत अभ्यास चालू रखना चाहिये।

> जैसे तिल में तेल, कमल में मकरंद, और समग्र लोक में पंचास्तिकाय स्थित है, उसी तरह सब आगमों में पंच मंगल महाश्रुतस्कंध (नवकार) रहा हुआ है।

ध्यान करने वाले के लक्षण

पहले प्रयोजनभूत ज्ञान के प्रकरण में बतलाया गया है कि 'साधक को योग्य गुणों का चिंतन करना चाहिये' वे गुण अब यहां कहे जाते हैं।

अमुचन् प्राणनाशेऽपि, संयमैकधुरीणताम् ।
परमप्यात्मवत्पश्यन्, स्वस्वरूपापरिच्युतः ॥१॥

प्राण का नाश हो जाय फिर भी सदाचार में अग्रेसरपना नहीं छोड़नेवाला, दूसरे जीवों को भी अपनी आत्मा की तरह देखनेवाला, अपने स्वरूप से पीछे न हटनेवाला।

उपतापमसंप्राप्तः, शीतवातातपादिभिः ।
पिपासुरमरीकारी — योगामृतरसायनम् ॥२॥

ठंड, गर्मी, और वायु आदि से दुखी न होनेवाला और अजरामर दशा को देनेवाला ऐसा योग रूपी अमृत रसायण पीने का इच्छुक।

रागादिभिरनाक्रान्तं, क्रोधादिभिरदूषितम् ।
आत्मारामं मनः कुर्वन्, निर्लेपः सर्वकर्मसु ॥३॥

राग द्वेषादि से नहीं दबा हुआ, क्रोध, मान, माया और लोभादि से अदूषित ऐसे अपने मन को आत्मानंद में लगाने वाला तथा सर्व कामों में निर्लेप रहनेवाला।

विरतः काम भोगेभ्यः, स्वशरीरेऽपि निस्पृहः ।
संवेगहृदनिर्मग्नः, सर्वत्र समतां श्रयन् ॥४॥

काम भोग से विरक्त, अपने शरीर के प्रति भी निःस्पृह, संवेगरूप द्रह में मग्न, शत्रु और मित्र, स्वर्ण और पत्थर, निंदा और स्तुति आदि सर्व विषयों में समभाव रखनेवाला ।

नरेन्द्रे वा दरिद्रे वा, तुल्यकल्याणकामनः ।
अमात्रकरुणापात्रं, भवसौख्यपराङ्मुखः ॥५॥

राजा हो या रंक हो, दोनों के कल्याण का इच्छुक, सब जीवों पर करुणा करनेवाला और संसार के सुखों से पराङ्मुख ।

सुमेरुरिव निष्कम्पः, शशीवानन्ददायकः ।
समीर इव निःसंगः, सुधीर्ध्याता प्रशस्यतेः ॥६॥

मेरू पर्वत की तरह (उपसर्ग-परिषहादि से) अडोल, चंद्रमा की तरह आनन्ददायक और वायु की तरह निःसंग (अप्रतिबद्ध) ऐसे बुद्धिमान ध्याता ध्यान करने के लिये लायक है ।

इनके सिवा अनुभवियों को नीचे की हितशिक्षा भी महामंत्र के साधक को उपयोगी है ।

दक्षो जितेन्द्रियो धीमान्, कोपानलजलोपमः ।
सत्यवादी विलोभश्च, मायामदविवर्जितः ॥१॥
मानत्यागी दयायुक्तः, परनारीसहोदरः ।
जिनेन्द्रगुरुभक्तश्च, मंत्रग्राही भवेन्नरः ॥२॥

मंत्र को गुरु के पास से ग्रहण कर उसका ध्यान करने वाला मनुष्य चतुर, इंद्रियों को जीतनेवाला, बुद्धिमान, कोप रूपी अग्नि के लिये जल समान, अर्थात् हर स्थिति में

शांति रखने वाला, सत्यवादी, निर्लोभी, माया और मद से रहित, अहंकार का त्याग करनेवाला, दयावान, परस्त्री को बहिन समान समझनेवाला अर्थात् उसके सामने कभी भी विकार की दृष्टि से नहीं देखनेवाला और श्री जिनेश्वरदेव तथा गुरु के प्रति परम भक्ति रखनेवाला, होना चाहिये।

और भी एक जगह कहा है कि—

शुचिः प्रसन्नो गुरुदेवभक्तो,
दृढ़व्रतः सत्यदयासमेतः।
दक्षः पटुर्बीजपदावधारी,
मंत्री भवेदीदृश एव लोके॥

बाह्य और अभ्यंतर पवित्रतावाला, सौम्य चित्तवाला गुरु और देव का भक्त, लिये व्रत में अति दृढ़, सत्यवान, दयावान, चतुर, बुद्धिशाली और मंत्र तथा पदों को धारण करनेवाला, ऐसा पुरुष जगत में मंत्र साधक होता है।

परमेष्ठी ध्यान माला में भी परमेष्ठी मंत्र की साधना करनेवाले साधक में कैसे गुण होने चाहिये इस बारे में बताया है कि—

शांत दांत गुणवंत, संतन सेवाकारी,
वारित, विषय कषाय, ज्ञान दर्शन सुबिचारी॥१॥
स्याद्वाद रसरंग, हंसपरि शमरस झीले,
शुभ परिणाम निमित्त, अशुभ सविकर्मने छीले॥२॥
तादृश नर परमेष्ठि पद—साधननां कारण लहे,
शाह शामजी सुतरत्न, नेमिदास इण पर कहे॥३॥

जो शान्त हो, दांत अर्थात् इंद्रियों को जीतनेवाला हो, गुणवन्त अर्थात् अहिंसा, सत्य, दया, क्षमा, मैत्री, कृतज्ञता, परोपकार आदि गुणों को धारण करनेवाला हो, संत पुरुषों की सेवा करनेवाला हो, जिसने विषय और कषाय को जीत लिया हो, जो ज्ञान और दर्शन का आराधक हो, हर काम पूरी तरह विचार कर करनेवाला हो, जो स्याद्वाद अर्थात् अनेकांतवाद के रंग में रंगा हुआ हो, और हंस की तरह समरस में निमग्न हो, जो शुभ परिणाम निमित्तों की शोध करनेवाला हो और सभी अशुभ कर्मों को छोड़नेवाला हो, वही पुरुष पंच परमेष्ठी की साधना-आराधना अच्छी तरह कर सकता है।

साधना की प्रारम्भिक अवस्था में साधकों में इन सब गुणों का होना संभव नहीं और साधना को शुरुआत में ही शास्त्रकार सब के लिये ऐसा आग्रह भी नहीं करते। क्योंकि ऊपर जो लक्षण बताये गये हैं, वे सम्पूर्ण लक्षण यदि जीवन में प्रगट हुए हों, तो फिर ध्यान करने की जरूरत ही नहीं होती। इसलिये तात्पर्य यह है कि उपरोक्त गुणों को प्राप्त करने का ध्येय प्रत्येक साधक का होना चाहिये। निश्चय दृष्टि को हृदय समक्ष रखकर शक्ति के अनुसार शक्य कार्यों में जो शुभ प्रवृत्ति होती है तो वह अवश्य फलदायक होती हैं। पूर्णता को लक्ष्य में रखकर जो कोई सत्प्रवृत्ति होती है, वह बीज में से फूटे हुए अंकुर के स्थान पर है। बीज के भीतर वृक्ष होने की शक्ति को प्रगटाने का प्रारम्भ अंकुर फूटने से होता है। यह प्राथमिक अवस्था अंकुरारूप है और पूर्णता वृक्ष रूप है। साधक में ऊपर बताये सम्पूर्ण गुण नहीं, परन्तु अंकुर

जितने गुण तो होने ही चाहिये। इतनी योग्यता प्राप्त होने के बाद अनुकूल हवा, पानी, बाड़ रक्षाण, आदि की सहायता से जैसे अंकुर वृक्ष का रूप धारण करता है, उसी तरह अंकुर जितने गुण जीव में प्रगट हो गये हों तो फिर ध्यान आदि की मदद से वे गुण अनुक्रम से पूर्ण स्वरूप में प्रगट हो सकते हैं अर्थात् प्राथमिक योग्यता के गुणों के बाद सरलता से आगे बढ़ा जा सकता है।

सामान्यतया भिन्न २ प्रकार की योग्यतावाले साधकों में साधना के योग्य गुणों का विकास निम्न क्रम से संभव हो सकता है।

परिमित और सात्विक आहार करनेवाले, दृढ़ मन वाले, अचपल आसन और स्थिर दृष्टिवाले साधक को प्रारंभिक कक्षा के विद्यार्थी में रख सकते हैं।

अपरोपतापी, (दूसरों को संताप नहीं देनेवाला) देवगुरु-भक्त, विनयवान, ईर्ष्या-मात्सर्य-असूया-द्वेष आदि से परांङ्मुख, गुणानुरागी, सुशील और प्रसन्न मनवाले साधक को प्रारम्भिक कक्षा के आगे की कक्षावाला कहा जा सकता है।

सब जीवों का हित चितवन करनेवाले, सब जीवों के साथ मैत्री भाव रखनेवाले और करुणारस में निमग्न साधक को उत्तम गुणवाला कहा जा सकता है।

सर्व जीवों को आत्म स्वरूप के समान देखनेवाले, सर्वत्र समता भाव को धारण करनेवाले, तथा नरेन्द्र और दरिद्र दोनों की समान भाव से कल्याण की भावना करने

वाले साधक को उत्तमोत्तम माना जाता है। ऐसा गुणवान साधक अचिंत्य महिमाशाली महामंत्र की सम्पूर्ण साधना कर सकता है ओर साक्षात अनुभव भी कर सकता है।

इस प्रकार क्रमशः सद्‌गुणों को प्राप्त करने का अभ्यास करनेवाला प्रत्येक साधक अपने जीवन में उत्तरोत्तर अधिक योग्यता पैदा कर सकता है । इसलिये सद्‌गुणों को जीवन में उतारने के लिये उपरोक्त गुणों को हमेशा स्थिर बुद्धि से विचार करना चाहिये और जीवन में उतारने का यथा-शक्ति प्रयत्न करना चाहिये।

•

श्री नवकार मंत्र में अजब खूबी यह है कि जैसे-जैसे उसका स्मरण किया जाता है, वैसे-वैसे धर्म के प्रति अनुराग प्रगट होता जाता है, और अन्त में मनुष्य सर्वथा धर्मपरायण बन जाता है। इस संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो भक्तिप्रयुक्त इस नवकार से जीवों को प्राप्त न हो।

साधक जीवन में अत्यन्त उपयोगी

श्रीवाचकजश को अनुभव वाणी

श्री महामंत्र के जाप-ध्यान आदि में प्रगति की इच्छा करनेवाले विवेकी साधक श्रीवाचकज़श की निम्न अनुभव वाणी का बराबर चिंतन-मनन पूर्वक लक्ष्य में लेकर उसमें बताये नियमों का यथाशक्ति पालन करने में प्रयत्नशील रहना अत्यंत हितकारी है ।

निन्द्यो न कोऽपि लोकः पापिष्ठेष्वपि भवस्थितिश्चिन्त्या
पूज्यागुणगरिमाढ्या, धार्यो रागो गुणलवेऽपि ॥१॥

किसी की निन्दा न करना, पापी के बारे में भी भव स्थिति का चिंतन करना, गुण गौरव से पूर्ण ऐसे मनुष्यों की सेवा करना, थोड़े गुणवान के गुणों के प्रति भी गुणानुरागी बनना ।

ग्राह्यं हितमपि बाला-दालापैदुर्जनस्य न द्वेष्यम् ।
त्यक्तव्या च पराशा, पाशा इव संगमा ज्ञेयाः ॥२॥

बालक के भी हित वचन ग्रहण करना, दुर्जन के प्रलाप को सुन कर द्वेषभाव न करना, दूसरे की आशा का त्याग करना और सर्व संयोगों को बंधन रूप जानना ।

स्तुत्या स्मयो न कार्यः, कोपोपि च निन्दया जनैःकृतया ।
सेव्या धर्माचार्यास्तत्त्वं जिज्ञासनीयं च ॥३॥

दूसरों से की गई स्तुति से गर्व न करना और उसके द्वारा की गई निन्दा से क्रोध न करना, धर्मगुरुओं की सेवा करना, तत्त्व को जानने की इच्छा करना ।

शौचं स्थैर्यमदंभो, वैराग्यं चात्मनिग्रहः कार्यः ।
दृश्या भवगतदोषा—श्चिन्त्यं देहादिवैरूप्यम् ॥४॥

शौच, स्थिरता, अदंभ वैराग्य का सेवन करना, आत्मा का निग्रह करना, भव अर्थात् संसार दुःख रूप है इत्यादि संसार के दोषों का विचार करना, देहादिक के विरूपपने का चिंतन करना ।

भक्तिर्भगवति धार्या, सेव्यो देशः सदा विविक्तश्च ।
स्थातव्यं सम्यक्त्वे, विश्वस्यो न प्रमादरिपुः ॥५॥

भगवान पर भक्ति धारण करना, एकान्त पवित्र प्रदेश की निरन्तर सेवन करना, सम्यक्त्व में स्थिर रहना और प्रमाद रूपी शत्रु का विश्वास नहीं करना ।

ध्येयात्मबोधनिष्ठा, सर्वत्रैवगमः पुरस्कार्यः ।
त्यक्तव्याः कुविकल्पाः स्थेयं वृद्धानुवृत्या च ॥६॥

आत्म बोध की निष्टा का ध्यान करना, सर्वत्र आगम को आगे करना, कुविकल्पों का त्याग करना ओर वृद्धों का अनुसरण करना ।

साक्षात्कार्यं तत्त्वं, चिद्रूपानन्दमेदुरैर्भाव्यम् ।
हितकारी ज्ञानवता—मनुभववेद्यः प्रकारोऽयम् ॥७॥

तत्त्व का साक्षात्कार करना तथा आत्मानन्द के द्वारा पूर्णता प्राप्त करना । जिन्हें अनुभव द्वारा जाना जा सके वैसा इस प्रकार ज्ञानियों को हितकारी है ।

——

महामन्त्र का ध्यान

जाप के बाद ध्यान को योग्यता आती है क्योंकि:—

१. जाप का अनुष्ठान यम-नियम पूर्वक होना चाहिए, जिससे उसमें **यम-नियम** सिद्ध होते हैं।

२. नियत जाप पूरा करने के लिये लम्बे समय तक एक आसन पर स्थिर बैठना पड़ता है, जिससे **आसन सिद्धि** भी होती है।

३. जाप में **यत्रमनस्तत्र मरुत्** इस नियम से **प्राणायाम** भी हो जाता है।

४. जाप करते समय इन्द्रियों और मन को विषयों से पूरा विराम प्राप्त होता है जिससे **प्रत्याहार** का भी अभ्यास होता है।

५. जाप के समय मन की वृत्तियों का प्रवाह एक निश्चित ध्येय में बहता है, इसलिए **धारणा** भी विकसित होती है।

इस प्रकार जाप के अनुष्ठान से यम-नियमादि पूर्व अंग सिद्ध होते हैं और जिससे ध्यान की योग्यता बढ़ती है। जिसने मन्त्र सिद्धि के भक्ति, शुद्धि, आसन, धारणा, मुद्रा आदि सोलह अंग माने हैं, वहां भी चौदहवां स्थान जाप को, पन्द्रहवां स्थान ध्यान को और सोलहवां स्थान समाधि

को दिया है। अर्थात् जाप के बाद ध्यान का क्रम आता है यह निश्चित है।

योगि सम्राट पू० श्रीहेमचन्द्राचार्यजी योगशास्त्र के आठवें प्रकाश में पदस्थ ध्यान का वर्णन करते हुए बताते हैं कि:—

तथा पुण्यतमं मन्त्रं, जगत्त्रितयपावनम्।
योगी पंच-परमेष्ठी-नमस्कारं विचिन्तयेत् ॥१॥

तीनों जगत को पवित्र करनेवाले और अत्यंत पवित्र ऐसे पंच परमेष्ठी नमस्कार मन्त्र की योगियों को विशेष चिंतवना करनी चाहिए।

अष्टपत्रे सिताम्भोजे, कर्णिकायां कृतस्थितिम्।
आद्यं सप्ताक्षरं मंत्रं, पवित्रं चिन्तयेत् ततः ॥२॥
सिद्धादिकचतुष्कं च, दिक्पत्रेषु यथाक्रमम्।
चूलापादचतुष्कं च, विदिक्पत्रेषु चिन्तयेत् ॥३॥

आठ पंखड़ी के सफेद कमल की कल्पना करना, उस कमल की कर्णिका में अर्थात् मध्य भाग में, सात अक्षर वाले पहले पवित्र मंत्र '**नमो अरिहंताणं**' का चिंतवन करना। पीछे सिद्धादि चार मन्त्रों का दिशाओं के पत्रों से क्रम से चिंतवन करना और चूलिका के चार पदों का विदिशा के पत्रों में चिंतवन करना।

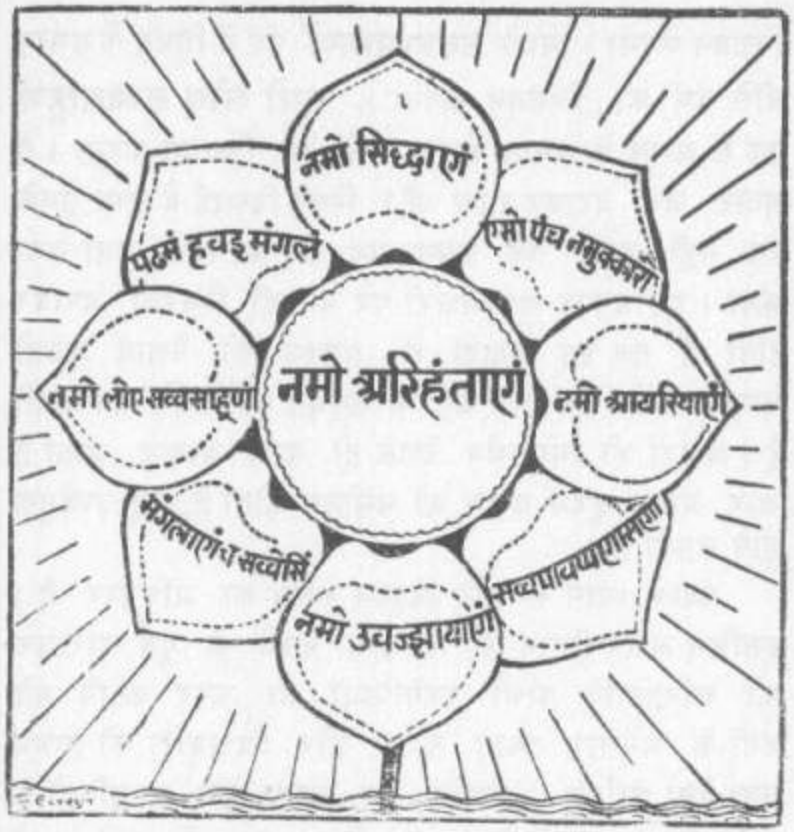

पिंडस्थ और पदस्थ ध्यान आकृति और रंग के खयाल बिना नहीं हो सकते, इसलिए जहां तक हो सके तब तक सुन्दर और घुमावदार अक्षरों की कल्पना करना और परमेष्ठिओं के वर्ण के अनुसार उनका ध्यान करना । अर्थात् **नमो अरिहंताणं'** पद में चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के समान सफेद वर्ण का चिंतवन करना । **'नमो सिद्धाणं'** पद में अरुण प्रभा के समान रक्त (लाल) वर्ण का चिंतवन करना । **'नमो आयरियाणं'** पद में स्वर्ण के समान पीले वर्ण का

चिंतवन करना। **'नमो उवज्झायाणं'** पदं में प्रियंगु के समान नीले वर्ण का चिंतवन करना। **'नमो लोए सव्वसाहूणं'** पद में अंजन के समान श्याम वर्ण का चिंतवन करना। ये अक्षर जब बराबर स्पष्ट और स्थिर दिखाई दें तथा उनके रंग नहीं बदलें तब अपना मन उन पर स्थिर हुआ समझना। इस प्रकार जब अक्षरों पर मन की स्थिरता बराबर होती है तब इन अक्षरों से प्रकाश की रेखायें फूटती मालूम देती है और अन्त में अद्‌भुत ज्योतिर्मय बन जाती है। अक्षरों को ज्योतिर्मय देखते ही परम आनन्द आता है और अपना हृदय कमल जो अधोमुख होता है, वह उर्ध्वमुख होने लगता है।

पदस्थ ध्यान के पहले पिंडस्थ ध्यान का अधिकार है। इसलिए अक्षर चिंतन का अभ्यास करने से पूर्व आराधक को अरिहंतादि पांचों परमेष्ठियों का ऊपर बताये गये रंगों के अनुसार ध्यान करना और चित्तवृत्ति को तन्मय बना देना चाहिए। अर्थात् उस समय उन २ मूर्तियों के दर्शन सिवाय दूसरे विचार या विकल्प मन में नहीं उठने देना चाहिए। अरिहंत भगवान का ध्यान अष्ट महाप्रातिहार्य से युक्त करने का है यह लक्ष्य में रखना चाहिए। अभ्यास की शुरुआत में मनोवृत्ति अल्प समय तक स्थिर रहेगी। परन्तु जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ेगा वैसे-वैसे वह अधिक समय तक स्थिर रहेगी और उतना समय अपूर्व आनन्द सागर में गोते लगाता हो ऐसा अनुभव होगा।

ध्यान के प्रारम्भ में, अरिहंत और मैं, सिद्ध और मैं, आचार्य और मैं, उपाध्याय और मैं, तथा साधुओं और मैं,—

ऐसा द्वैतभाव होता है। परन्तु ध्यान में प्रगति होने के बाद यह द्वैत भाव दूर हो जायगा। मेरी आत्मा ही अरिहंत है, मेरी आत्मा ही सिद्ध है, मेरी आत्मा ही आचार्य है, मेरी आत्मा ही उपाध्याय है और मेरी आत्मा ही साधु है, ऐसा अद्वैत भाव उत्पन्न होकर आत्म तत्त्व का सम्पूर्ण साक्षात्कार होगा जो कि धर्म का अंतिम ध्येय है, योग का अन्तिम आदर्श है और साधना का अन्तिम फल है।

इस प्रकार नवकार मन्त्र का ध्यान चैतन्य और आनंद की चरम सीमा पर पहुँचानेवाला है। इससे दूसरे अन्य कई लाभ सहज में प्राप्त हो जाते हैं इसमें कोई आश्चर्य नहीं। योग से जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब महामंत्र के ध्यान से प्राप्त होती हैं 'क्योंकि महामन्त्र का ध्यान श्रेष्ठ प्रकार का योग है।

●

अनेक जन्मों के अपार पुण्य के बल से सर्वज्ञ ऐसे श्रीवीतराग भगवंतों के शासन को प्राप्त हुए भव्यात्माओं को विश्वोपकारी जीवन की सब योग्यता प्राप्त करानेवाले परम मंत्र श्रीनवकार को घड़ी भर के लिये भी अलग करना, संसार के भयानक हमलों को नजदीक बुलाने के बराबर है।

आराधना में विकास की भूमिका का क्रम

(१) शब्दानुसंधान (२) अर्थानुसंधान (३) तत्त्वानुसंधान और (४) स्वरूपानुसंधान । इन चार भूमिका पर क्रमशः श्री नमस्कार महामन्त्र की आराधना हो सकती है । शब्दानुसंधान की अंतिम अवस्था आने पर अर्थानुसंधान की शुरुआत होती है । अर्थानुसंधान की अन्तिम अवस्था पर तत्त्वानुसंधान की शुरुआत, होती है, इसी तरह तत्त्वानुसंधान की अन्तिम अवस्था पर स्वरूपानुसंधान की शुरुआत होती है और स्वरूपानुसंधान की अन्तिम भूमिका ही परमात्मस्वरूप की प्राप्ति हैं ।

(१) शब्दानुसंधान

शब्दानुसंधान से नवकार की साधना करना । अर्थात् अपनी योग्यता के अनुसार नवकार के अक्षरों का भाष्य, उपांशु और मानस आदि जाप से बराबर अभ्यास करना । माला और शंखावृत्त आदि से किये गये जाप का समावेश उपांशु में होता है । अर्थात् अल्प उच्चार सहित हलन-चलन यह उपांशु का लक्षण है । जो बैखरी वाणी पूर्वक मात्र उच्चार से जाप होता है वह भाष्य जाप कहलाता है और बिना उच्चार तथा बिना हलन चलन के केवल धारणा से किया गया जाप मानस जाप कहलाता है । इस प्रकार तीनों तरह

के जाप से अक्षरों को आत्मसात करना, उनका बराबर परिचय कर लेना, इसका नाम शब्दानुसंधान है।

(२) अर्थानुसंधान

'अर्थानुसंधान' अर्थात् परमेष्ठिओं की अर्थ से विचारणा करना। यह विचारणा निम्न प्रकार से की जा सकती है—

(१) परमेष्ठियों के जीवन प्रसंग की विचारणा (२) परमेष्ठियों के गुणों का चिंतन (३) परमेष्ठियों के उपकार की विचारणा (४) परमेष्ठियों में रही हुई अपूर्व और अनन्त शक्तियों के सामने अपनी तुच्छ अवस्था की विचारणा (५) परमेष्ठियों में रही हुई सर्व जीवों के प्रति कल्याण भावना के कारण उनमें स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हुई सर्वोत्तम करुणा, वात्सल्य, प्रेम और परार्थरसिकता आदि की विचारणा (६) उनको नमस्कार करने के द्वारा स्व हृदय में शरणागत का भाव लाना और उसे विकसित करना, उनकी कृपा प्राप्ति के लिए प्रणिधान (एकाग्रता) पूर्वक बारम्बार प्रार्थना करना (७) पंच परमेष्ठी भगवंतों में रही हुई कल्याण भावना के अनुरूप अपना आत्म भाव करना। अर्थात् पंच परमेष्ठिओं में रही हुई विश्व कल्याण की भावना के अनुकूल अपनी आत्म भावना को बनाना। इस भावना से वासित होकर भावनामय होने के लिए उनका जाप, उनका ध्यान और उनके साथ एकता का अभ्यास करना।

श्रीमहामन्त्र के पदों की (१) पदार्थ से (२) वाक्यार्थ से और (३) महावाक्यार्थ से विचारणा करना, यह भी

अर्थानुसंधान है। **'नमो अरिहंताणं'** पद की यह विचारणा निम्न प्रकार से की जा सकती है।

(१) पदार्थ—'नमो' पद का अर्थ नमस्कार है ! यह है विनयपूर्वक भक्ति से पूर्ण हृदय का समर्पण। नमस्कार करनेवाले में अपनी लघुता और अरिहंत की महत्ता का खयाल पूर्वक का सन्मुख भाव हो। पूज्य-पूजक भाव संबंध से भगवन्तों के गुणों में अभेदता, तन्मयता, एकता प्राप्त हो। यह पदार्थ है।

'अरिहंताणं' पद का अर्थ **'अरिहंतों को'** अर्थात् सर्व जगत के कल्याण की सर्वोच्च कामना से सर्वोत्कृष्ट पुण्यप्रकर्ष-पूर्ण, सर्व सत्त्वहितप्रद श्री धर्मचक्रवर्तिपन की उत्तमोत्तम पदवी प्राप्त करनेवाले को।

इस प्रकार श्रीनमस्कार महामंत्र के दूसरे पदों के भी यथार्थ अर्थों को गुरु कृपा से प्राप्त कर चिंतवन करना।

(२) वाक्यार्थ—'नमो अरिहंताणं' इस वाक्य का अर्थ अरिहंतों को नमस्कार हो ! ऐसा होता है।

यहां अरि अर्थात् शत्रु और हंत अर्थात् उसे नाश करने वाला। जगत के सब जीवों का वास्तव में कोई शत्रु है तो वह अशुभ कर्म है और उसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, असूया, द्वेष, मात्सर्य, हिंसा, क्रूरता, कृतघ्नता, स्वार्थ-परायणता और राग आदि मुख्य हैं।

मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य आदि भावनाओं के बल से इन अंतरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर परमात्म-भाव को प्राप्त हुए और सब जगत को परमात्मपद को प्राप्त

कराने की भावनावाले तीर्थंकर देवों को मेरा भक्तिपूर्वक नमस्कार हो ! यह वाक्यार्थ हुआ ।

दूसरे भी ऐसे अविरुद्ध वाक्यार्थ गुरु कृपा से जानना ।

(३) महा वाक्यार्थ—इस नमस्कार महामन्त्र में देव, गुरु, धर्म, धर्म का फल, स्वरुप और उसका विश्व प्राधान्य बताया गया है । शुरु के दो वाक्यों में देव, पीछे के तीन वाक्यों में गुरु भगवंतों, दो पद के छट्ठे वाक्य में पूर्वार्ध से धर्म और उत्तरार्ध से उसका फल तथा दो पदों के अन्तिम वाक्य में स्वरूप और सर्व श्रेष्ठता बताई गई है ।

जैसे प्रथम के दो पदों में जगत के सर्व श्रेष्ठ, भाव से परमेष्ठी पद को प्राप्त हुए ऐसे श्रीअरिहंत और सिद्ध ये देव हैं । पीछे के तीन पदों में आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु ये तीन गुरु हैं । इन पांचों को किया गया नमस्कार धर्म है । उस नमस्कार से सर्व दुःखों का नाश और सुख की प्राप्ति होती है । यह उसका फल है । यह नमस्कार जगत के सब दुःखों का नाश कर सब सुखों को देने में सामर्थ्य-वान होने से परम मंगल स्वरूप है और सर्वश्रेष्ठ है ।

इसी तरह दूसरे भी अविरुद्ध अर्थों की विचारणा करना यह महा वाक्यार्थ कहलाता है और ये तीनों अर्थानु-संधान हैं ।

(३) तत्त्वानुसंधान

'तत्त्वानुसंधान' अर्थात् पंच परमेष्ठी भगवंतों में और उनमें भी मुख्यतः अरिहंत परमात्मा की सर्व जीवों के प्रति कल्याण भावना सम्बन्धी विशेष विचारणा करना । यह विचारणा इस प्रकार हो सकती है । करुणासागर परमात्मा

में रहे हुए गुणप्रकर्षपन, अचिंत्य शक्ति, परार्थरसिकता और परम करुणा की तरफ आंतरिक श्रद्धा को बढ़ाना। श्री अरिहंत परमात्मा को सर्व कल्याण की भावना के विश्वमय स्वरूप को विचारना। इससे श्री अरिहंत परमात्मा में रही हुई करुणा, प्रेम और वात्सल्य के प्रति भावात्मक मिलन होगा। साधना के अलावा समय में भी परमात्मा के प्रति अनुसंधान चालू रहेगा। साधना समय में रोमांच-झनझनाहट का अनुभव होगा। प्रभु के प्रति अंतरंग अभिरुचि, अत्यंत बहुमान, और बिना शर्त शरणागति भाव उत्पन्न होने से अखण्ड प्रेम और यथाशक्य आज्ञा का पालन करने की प्रेरणा अपने आप अन्दर से प्रगट होगी। महामंत्र की साधना करते करते महामंत्र के अक्षरों से निकलती अग्नि ज्वाला से अथवा प्रतिमाजी का ध्यान करते भगवान के मुंह से निकलती अग्नि ज्वाला से स्वदेह और अनादि से लगे हुए विषय-कषाय आदि अंतर शत्रु जलते हैं, ऐसा अनुभव करना।

फिर महामंत्र के अक्षरों का ध्यान करते समय अक्षरों से अमृत का फव्वारा निकलता है, ऐसा अनुभव करना। प्रतिमा का ध्यान करते समय प्रभु के नैत्रों से अमृत निकलने का अनुभव करना, इस अमृत से अपनी आत्मा को पूर्ण रूप से भर रहे हैं, ऐसा अनुभव करना। रोम २ में अमृत व्याप्त हो जाने पर स्वाभाविक रूप से आत्मा में सर्व जीवों के प्रति आत्म-तुल्य भाव और प्रेम का अनुभव करना। सब जीवों के कल्याण की भावना प्रगट होने पर अपूर्व आनन्द का अनुभव करना, ये अनुभव सहज होंगे।

इस तरह अमृतपूर्ण शुद्ध आत्म द्रव्य स्वरूपवाला होने पर अपने में स्वाभाविक रूप में जीव मात्र की कल्याण भावना उत्पन्न होती देखे। इस प्रकार एक्य भाव को प्राप्त हुए स्वयं को परमेष्ठी में लीन होता देखे, यही परमेष्ठी साधना का तात्पर्य है। यह महामंत्र के आलंबन से हुए जाप, ध्यान आदि का सर्व श्रेष्ठ फल है।

इस प्रकार हमेशा अनुभव होते २ साधना के समय के सिवाय भी सब तरफ आत्म तुल्य दृष्टि स्थिर होगी। सब की हित चिन्ता चालू रहेगी। अपने ही सुख दुःख की चिन्ता और अन्य विकल्प जो कि स्वार्थ से उत्पन्न होते हैं और स्वार्थ जो सब पापों की जड़ है, उसका विलय होगा। सब की हितचिंता यह परमार्थ है। इस परमार्थ भाव से परमेष्ठी पद की प्राप्ति होती है, इसलिये आत्म हित की भावना वालों को 'सर्व आत्माओं का हित हो' ऐसी भावना सतत रखनी चाहिये।

इस तरह सब तरफ प्रेम प्रगट होने पर आंतरिक वृत्तियां एक दम शान्त होने लगेगी और साधना में अधिक २ एकाग्रता, व आनन्द का अनुभव होगा। अक्षरों और प्रतिमा के ध्यान के समय उनमें से निकलते दिव्य-प्रकाश में व्याप्त होने का अनुभव होगा और उस समय आत्मज्ञान अर्थात् आत्म स्वरूप का अनुभव होगा। इसी का नाम तत्त्वानुसंधान अथवा तात्पर्यानुसंधान है।

ऐदंपर्यार्थ—दूसरे अर्थानुसंधान में श्रीमहामंत्र सम्बन्धी पदार्थ, वाक्यार्थ और महावाक्यार्थ की विचारणा पहले हो

चुकी है। तीसरे तात्पर्यानुसंधान में ऐदंपर्यार्थ का समावेश निम्न प्रकार हो सकता है।

पंचपरमेष्ठो में नौ तत्त्व

चौदह पूर्व के सारभूत श्री नमस्कार महामंत्र में देव, गुरु और धर्म का जो स्वरूप है, वही विश्व का स्वरूप है क्योंकि विश्व का स्वरूप नव तत्त्वों के अतिरिक्त नहीं है और नवपद स्वरूप यह नमस्कार भी नवतत्त्व स्वरूप होने से विश्व स्वरूप से अलग नहीं है।

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बंध, निर्जरा और मोक्ष इन नौ तत्त्वों का ज्ञान पंच परमेष्ठी के ज्ञान से निम्न प्रकार होता है, इसलिए पंच परमेष्ठी से विश्व स्वरूप नौ तत्त्व अलग नहीं है।

पाप प्रकृति से सर्वथा रहित और पुण्य प्रकृति के प्रकर्ष को प्राप्त अरिहंत के ज्ञान से–ध्यान से पाप और पुण्य इन दो तत्त्वों का ज्ञान हो जाता है।

अजीव के संग से सर्वथा रहित और जीव तत्त्व से पूर्ण श्री सिद्ध भगवान के ज्ञान से अजीव और जीव तत्त्व का ज्ञान होता है।

शुद्ध आचरण का पालन करनेवाले और करानेवाले आचार्य भगवंत आश्रव के द्वारों को रोकनेवाले और संवर भाव को प्राप्त किये हुए होते हैं, इसलिये उनके ध्यान से संवर और आश्रव तत्त्व का ज्ञान होता है।

उपाध्याय भगवंत ज्ञान-ध्यान में लीन होने से उनको बंध कम होता है और ज्ञान-ध्यान के बल से निर्जरा अधिक

होती है, इसलिये उनके ध्यान से बंध और निर्जरा तत्त्व का ज्ञान होता है।

साधु भगवंत मोक्ष मार्ग के साधक होने से उनके ध्यान से मोक्ष तत्त्व का ज्ञान होता है।

श्री नमस्कार में दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप

श्रीअरिहंत और सिद्ध ये अणाहारी पदों के भोक्ता होने से **तप** पद की पराकाष्ठा इन्होंने प्राप्त की है।

श्री आचार्य भगवंत आचार का पालन करने से **चारित्र** गुण के मालिक हैं।

श्री उपाध्याय भगवत ज्ञान के पठन-पाठन में लीन रहने से **ज्ञान** प्रधान होते हैं।

श्री साधु भगवंत देव-गुरु की आज्ञा में अटल विश्वास रखने से वे श्रद्धा-**दर्शन** प्रधान होते हैं।

चार भावना के प्रकर्ष से उच्च पद की प्राप्ति

मैत्री भावना के प्रकर्ष से, अर्थात् सर्व जीवों के प्रति मैत्री भाव, अद्वेषभाव, समान भाव रखने से मोक्ष साधक समतामयी **मुनि पदवी** प्राप्त होती है।

प्रमोद भावना के प्रकर्ष से अर्थात् दूसरे जीवों में रहे प्रगट-अप्रगट गुणों के बहुमान से, प्रमोद भाव से, गुणों के भण्डार (लब्धि के निधान) **गणधर पद** के भोक्ता माने जाते हैं।

करुणा भावना के प्रकर्ष से अर्थात् मैं सर्व जीवों को दुःखों से मुक्त करूं, मैं सब जीवों को सुखी करूं, ऐसे भाव

से सर्व श्रेष्ठ सुख के स्थानभूत **तीर्थंकर पद** प्राप्त होता है।

माध्यस्थ्य भावना के प्रकर्ष से **सिद्ध** अवस्था-कृतकृत्य अवस्था प्राप्त होती है।

परमेष्ठी पद प्राप्ति का कारण

मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ्य भावना ये परमेष्ठी पद प्राप्ति के कारण है। इन भावनाओं के बिना किसी को भी परमेष्ठी पद की प्राप्ति नहीं होती!

इसलिये परमेष्ठी के आराधकों को हमेशा याद रखना चाहिये कि मैत्री आदि चार भावना पूर्वक परमेष्ठी भगवान की आराधना, साधना, सेवा व उपासना हो सकती है। इन भावनाओं के ओतप्रोत होने पर परमेष्ठो बना जा सकता है। इन भावनाओं के द्वारा की गई सेवा ही सच्ची सेवा है; जप, ध्यान भी इन्हीं के द्वारा फलीभूत होते है।

महामंत्र का हार्द क्या है?

सारे संसार का मैं मित्र हूँ, मेरी किसी के साथ शत्रुता नही है, सब जीवों को दुःखों से मुक्ति मिले, सब प्राणी सुखी हों, सब जीव पापों से मुक्त, दोष रहित हों, ऐसी भावना प्रत्येक नमस्कार मंत्र के आराधक को रखनी चाहिये। यह महामंत्र का प्रधानार्थ है, प्राण है, रहस्य है, तत्त्व है, सत्य है, परमार्थ है, तात्पर्यार्थ है, ऐदंपर्यार्थ है और हार्द है।

इस तरह तत्त्वानुसंधान से और इसके अन्तर्गत रहे ऐदंपर्यार्थ से महामंत्र सम्बन्धी विचारणा हुई।

(४) स्वरूपानुसंधान

आलंबन के बल से क्रमिक विकास को प्राप्त साधक निरालंबन ध्यान को प्राप्त करता है। इस अवस्था को प्राप्त जोव अपने को पूर्ण हुआ अनुभव करता है, विश्व को पूर्ण रूप में देखता है और पूर्ण स्वरूपवाले परमेष्ठी को अपने से अभिन्न अनुभव करता है। अर्थात् अभेदभाव से (अपने में परमेष्ठी और) परमेष्ठी में परमेष्ठीमय अपने को एक्य रूप में अनुभव करता है।

तत्त्वानुसंधान को अंतिम अवस्था स्वरूपानुसंधान की प्रथम भूमिका है। अथवा आत्म स्वरूप की प्राप्ति स्वरूपानुसंधान है। साधना का प्रयत्न कायम रखने से परमात्मा की अधिक २ कृपा का अनुभव होते इस भूमिका की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार कल्लोल रहित सागर की तरह शान्त और मेरूवत् निष्प्रकंप हुए, विकास के शिखर पर पहुँचे हुए जीवात्मा को परमात्म पद प्राप्त होता है, जो कि सर्व मुमुक्षु आत्माओं का अन्तिम ध्येय हैं।

श्री नवकार महामंत्र के साधक को जगत के सर्व शुभ तत्त्व सहायक होते हैं और अशुभ तत्त्व उसके सामने पराजित हो जाते हैं इससे नवकार का साधक सर्वदा निर्भय बनता है।

श्रीनवकार महात्म्य दर्शक सुवाक्यों

इस पुस्तक में पहले बताया गया है कि श्रीपंच-परमेष्ठी नमस्कार महामन्त्र के प्रति भक्ति और बहुमान जागृत हो ऐसा वांचन दिन में थोड़ी देर भी हमेशा नियमित रूप से करना चाहिये। उसके लिये संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि में बहुत साहित्य प्रकाशित हुआ है। परन्तु हर किसी के लिये यह सब सामग्री सुलभ नहीं है। इसलिये जिन्हें ऐसा साहित्य पढ़ने का अवसर न मिले ऐसे साधक श्री नवकार महामंत्र की महिमा से वंचित न रह जाय, उनके लिये महामंत्र के महात्म्य को बतानेवाले थोड़े से सुवाक्य यहां प्रस्तुत किये जाते हैं। श्रीनवकार प्रेमी आत्माओं को उनका बारंबार पठन मनन, और परिशीलन, महामन्त्र के प्रति आदर और बहुमान जागृत करने में सहायक होगा, ऐसी आशा है। इसके सिवा बड़ी पुस्तकों को पढ़ने में पूरा समय चाहिये और दूसरी भी बहुत सी सामग्री की अपेक्षा रहती है। जब कि इस अति प्रवृत्ति के समय में सारभूत थोड़ी बात सरलता से पढ़ी, विचारी जा सके और अन्त में बड़े ग्रन्थों को भी सुनने पढ़ने की रुचि उत्पन्न हो, ऐसी धारणा से यहां श्रीनवकार का सारभूत तत्त्व प्रस्तुत किया जाता है। इन वाक्यों को सिर्फ पढ़ना ही नहीं, परन्तु मनन पूर्वक पढ़ना, विचारना और

परिशीलन करना चाहिये। इनमें अनेक अनुभवियों के अनुभवों का निचोड़ है। एक २ वाक्य प्रकाश से भरा हुआ है। मात्र उस प्रकाश को प्राप्त करने के लिये अपनी दृष्टि को फैलाने की जरूरत है और यह कार्य शान्ति पूर्वक मनन और परिशीलन से ही सुलभ हो सकता है। चाहे थोड़ा पढ़ा जाय परन्तु चिन्तन मनन पूर्वक पढ़ने से बहुत लाभ होता है। अब वे सुवाक्य प्रस्तुत किये जाते हैं।

श्रीपरमेष्ठी नमस्कार गुणानुराग का प्रतीक है। इससे गुणानुराग न हो तो जागृत होते हैं और हो तो उनमें वृद्धि होती है, जो गुणानुराग मोक्ष का अवंध्य बीज है।

अंतरात्मभाव को लानेवाला, उसे टिकानेवाला, बढ़ाने-वाला और अन्त में परमात्म भाव तक पहुँचानेवाला परमेष्ठी नमस्कार है, इसीलिए मार्गानुसारि की भूमिका से लेकर सम्यग्दृष्टि, देशविरति और सर्वविरतिधर तमाम जीवों की आराधना में परमेष्ठी नमस्कार परम अंग है।

श्रीनमस्कार महामंत्र सर्वोत्तम मंगलरूप और प्राणी मात्र को सच्चे सुख की ओर लेजानेवाला कुशल पथ प्रदर्शक है।

श्रीनवकार महामंत्र का स्मरण अज्ञानादि से उपार्जन किये अशुभ संस्कारों को सरलता से बदल कर आत्मशक्ति के विकास के मौलिक कार्य में उपयोगी बनाता है। इसलिए श्रीनवकार लोकोत्तर महामंत्र है।

श्रीनवकार के प्रभाव से आत्मा में उच्चकोटि का वीतराग भाव धीरे २ अवश्य विकसित होता है। इसके द्वारा आत्मशक्तियां स्वतन्त्र रूप से कार्य करती हुई जगत के उत्तम

महामूल पदार्थों की ओर लोह चुम्बक की तरह स्वतः आकर्षण पैदा करती है। इसलिए सर्व मंगलों में श्रेष्ठ मंगल श्रीनवकार महामंत्र है।

श्रीनवकार महामंत्र की अनादि सिद्ध, सनातन और स्वाभाविक ऐसी विशिष्ट रचना है कि जिससे उसके व्यवस्थित जाप के बल से साधक का चित्त जाप से ध्यान में, ध्यान से लय में, लय से समाधि में और समाधि में से प्रज्ञा (उत्कृष्ट क्षयोपशमजन्य-प्रातिभज्ञान) में शीघ्रता से पहुँच जाता है।

इस महामंत्र के वर्णों की संयोजना ही किसी अद्‌भुत गणित विज्ञान के निगूढ सिद्धान्त पर मालूम होती है कि जिससे अल्प प्रयत्न से साधक की वृत्तिओं में उर्ध्वमुखता आ जाती है। जितनी विशिष्ट परिणाम शुद्धि साधक ने जाप द्वारा प्राप्त की हो, उतनी ही मंत्र सिद्धि शीघ्र होती है। अन्य मन्त्रों के जाप से होनेवाली परिणाम की शुद्धि की अपेक्षा श्रीनवकार के जाप से परिणाम की विशुद्धि अल्प प्रयत्न से अधिक प्राप्त होती है। इस कारण श्रीनवकार मंत्र मंत्राधिराज गिना जाता है।

श्रीपंच परमेष्ठियों को भाव पूर्वक नमस्कार करने से मनुष्य संसार में कभी भी दास, प्रेष्य, दुर्भग, नीच या विकलेन्द्रिय-अपूर्ण इन्द्रियोंवाला नहीं होता। प्रभु प्रतिमा के सन्मुख धूप, दीप और पूजन की अन्य सामग्री सहित पूजा करके शरीर और वस्त्र की पवित्रता, तथा मन की

एकाग्रता पूर्वक बिना रुकावट के एक लाख संख्या का नवकार जाप अचिंत्य लाभ को देनेवाला है।

श्रद्धा रूपी घृत और बहुमान रूपी वत्ती से धन्य पुरुषों के मनोभवन में प्रकाशित श्रीनवकार रूपी दीपक मिथ्यात्व रूपी अंधकार को अवश्य नाश करता है।

तीनों लोक के विवेकी सुर, असुर, विद्याधर तथा मनुष्य सोते, जागते, बैठते, उठते या चलते फिरते श्रीनवकार मंत्र को याद करते हैं।

परलोक के मार्ग की ओर प्रयाण करनेवाले जीव रूपी मुसाफिर को इस जन्म रूपी घर से निकलते समय श्रीनवकार-मंत्र पाथेय के समान है।

अन्त समय में जिसने श्रीनवकार मंत्र को याद किया उसने सब सुखों को आमंत्रित किया है और सब दुःखों की हमेशा के लिये तिलांजली दी है।

श्रीनवकार मंत्र सत्त्व की गठड़ी है, रत्न की पेटी हैं, और सब इष्टों का समागम है

श्रीनमस्कार महामंत्र पाप रूपी पर्वत को भेदने के लिये वज्र के समान है। दुःख रूपी बादलों को बिखेरने के लिये प्रचण्ड पवन के समान है। मोहरूपी दावानल को शांत करने के लिये आषाढ़ो मेघ के समान है, अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करने के लिये सूर्य के समान है, कल्याण रूप कल्प-वेल के अवंध्य बीज के समान है, दारिद्रयरूप कंद को मूल से उखाड़ने के लिये वराह की दाढ़ के समान है। सम्यकत्व रत्न को पैदा करने के लिये रोहणाचल पर्वत के समान है,

और कल्पवृक्ष, चिंतामणि, कामधेनु, कामकुम्भ आदि से भी विशेष रूप से अधिक सब कामनाओं को पूरी करने वाला है।

सम्पूर्ण द्वादशांगी परिणाम को विशुद्धि के लिये हैं, इसी तरह श्रीनमस्कार महामंत्र भी परिणाम की विशुद्धि के कारण रूप है। इसलिये यह द्वादशांगी का सार है।

अग्नि आदि के भय के समय मनुष्य सभी वस्तु छोड़कर एक महारत्न को ग्रहण करता है, उसी तरह अन्तिम समय में विशेष श्रुत का स्मरण करने में अशक्त श्रुतधर भी समस्त श्रुतागम को छोड़कर श्रीनवकार का ध्यान करते हैं।

असमाधि और अशांति को शीघ्र दूर करने के लिये सिद्ध और अमोघ उपाय रुप ज्ञानी पुरुषों ने परम पावन श्रीनवकार, उसके पद और उसके प्रत्येक अक्षर का अवलंबन लेने को कहा है।

शारीरिक तथा मानसिक दुःखों से और राग द्वेषादि के संताप से तप्त चारों गति के भव्य जीवों के लिये श्री नवकार सर्वत्र सहायक और परमार्थ बन्धु के समान है।

श्रीनवकार द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के विष को दूर करनेवाला होने से गरुडादि अन्य मंत्रों में प्रधान मन्त्र है।

श्रीनवकार अप्राप्त गुणों को प्राप्त कराता है, ज्ञानादि प्राप्त गुणों का रक्षण करता है और सर्व अर्थ का साधक होने से सब ध्येयों में परम ध्येय है।

श्रीनवकार कर्ममल के कलंक को दूर करनेवाला होने से सर्व तत्त्वों तथा परमार्थ भूत पदार्थों में अतिशय पवित्र तत्त्व है।

श्रीनवकार मंत्र की प्राप्ति के सिवाय जीवों के अनेक जन्मों के संचित शारीरिक तथा मानसिक रोग, शोक आदि दुःख तथा उसके कारण भूत कर्मों का नाश असंभवित है।

यदि साधक एकाग्र चित्त से हाथ की अंगुलियों के आवर्त्त द्वारा श्री नवकार महामंत्र का जाप करे तो उसे भूत, प्रेत, पिशाच आदि परेशान करने में कभी समर्थ नहीं होते।

जिस महाभाग्यशाली आत्मा की मन रूपी गुफा में नमस्कार महामंत्र रूपी केसरीसिंह बिराजमान है, उसके मन में पापकर्म रूपी हाथियों का समूह नहीं टिक सकता।

यह नवकार जन्म के समय गिना जाय, तो जन्म के बाद बहुत ऋद्धि को देनेवाला है और मृत्यु के समय गिना जाय तो मृत्यु के बाद सुगति को देनेवाला है। आपत्ति के समय गिना जाय तो सैंकड़ों आपतियां दूर हो जाती हैं और ऋद्धि के समय गिना जाय तो ऋद्धि का विस्तार होता है।

श्रीनवकार महामंत्र का जाप करनेवाला संसार में कभी दुःखी नहीं होता और निश्चय से मोक्ष प्रासाद के शाश्वत सुख का अधिकारी होता है।

इस जन्म में विधि से, भाव से और चित्त की एकाग्रता से जो नवकार महामंत्र की आराधना करे तो भवांतर में वह आत्मा उच्च जाति, कुल, रूप, आरोग्य और सम्पत्ति प्राप्त करता है।

यदि साधक श्रद्धा, भक्ति और एकाग्रता से समझ पूर्वक समर्पण भाव से श्रीपंच परमेष्ठी की शरण में जाता है तो उसकी बुद्धि, मन, वाणी तथा देह, सब पवित्र बन जाते हैं।

यदि साधक के हृदय में श्रीपंच परमेष्ठी के प्रति संपूर्ण तादात्म्यभाव उत्पन्न हो तो उसे श्रीनमस्कार महामंत्र का पूरा परिचय हो जाता है। नमस्कार महामंत्र आध्यात्मिक समृद्धि का शब्दमय प्रतीक है।

श्रीनवकार की साधना मोक्ष मार्ग की साधना है, सम्यग् श्रद्धापूर्वक जाप करने से इसके प्रत्येक अक्षर और मात्रा सजीव प्रतीक रूप बन जाती है और श्रीपरमेष्ठी की अद्भुत ऋद्धि का साक्षात्कार करने के लिये यह महामंत्र महान साधन रूप बन जाता है।

श्रीनमस्कार महामंत्र को समझने के लिये केवल तर्क, युक्ति या बुद्धि सम्पूर्ण नहीं है। नवकार का घनिष्ट परिचय प्राप्त करने के लिये तो सर्व समर्पण की ही आवश्यकता है।

श्रीपंच परमेष्ठियों का वास्तविक ज्ञान तथा उनका प्रत्यक्ष अनुभव केवल साधना द्वारा ही प्राप्त होता है। यह साधना निरंतर शुद्ध और जागृत चित्त से जाप करने के द्वारा प्राप्त होती है।

श्रीनमस्कार महामंत्र में पंच परमेष्ठी की अनुमोदना है और इस अनुमोदना में अपना सारा बल भरा हुआ है। श्रीपंच परमेष्ठी और उसके सुकृतों की अनुमोदना मोक्ष का द्वार खोल देती है।

श्रीनमस्कार महामन्त्र के प्रत्येक अक्षर में अचिन्त्य शक्ति छिपी हुई है । परन्तु यह प्रकाश क्रमशः प्रयत्न करने से प्राप्त होता है ।

जिस तरह भोजन का प्रत्येक कण शरीर का पोषण करता है, इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाता है, क्षुधा दूर करता है, उसी तरह श्रीनवकार महामन्त्र के प्रत्येक जाप से अज्ञान, कषाय और प्रमाद कम होते हैं, पुनः पुनः जाप करने से मन और बुद्धि भी शुद्ध होती है ।

इस विश्व में ऐसा कोई पाप नहीं है कि जिसका प्रतिकार श्रीनवकार का आश्रय लेने से अशक्य बने । नवकार के अक्षर केवल अक्षर रूप नहीं है परन्तु अक्षरमय साक्षात् देवता हैं, ज्योति पुंज हैं ।

कर्म सारे जगत पर शासन करते हैं, परन्तु ये कर्म पंच परमेष्ठी से डरते हैं, इसलिये पंचपरमेष्ठी के साथ सम्बन्ध रखने से कर्म बंधन ढीले हो जाते हैं ।

शब्दों का मन पर सब से ज्यादा प्रभाव होने से श्रीपंच परमेष्ठी के शब्दों में मन को लगाने से चंचल मन सुगमतापूर्वक विषय-कषाय के आकर्षण से मुक्त होता है ।

श्रीपंच परमेष्ठी में मन लगाना, पर्वत पर चढ़ने जैसा है । जिस तरह पर्वत पर चढ़ना कठिन है, परन्तु चढ़ने के बाद वायु मण्डल की प्राप्ति आदि से मन आनन्दित होता है, उसी तरह श्रीनवकार में मन लगाना तो कठिन है परन्तु मन लग जाने पर जिस आत्मिक आनन्द का अनुभव होता है वह अवर्णनीय है ।

श्रीनवकार परमपद की आराधना रूपी पताका को ग्रहण करने के लिये हाथ है, स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करने के लिये राजमार्ग है और दुर्गति को दूर करने के लिये अर्गला है।

पंच नमस्कार रूपो सारथी से हांके जानेवाले ज्ञानरूपी घोड़ेवाले संयम रूपी रथ में बैठकर मनुष्य शीघ्र निर्वृत्तिपुरी में पहुँच जाता है।

ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के अनंत पुद्गलों का विगम होने के बाद परमार्थ से नवकार के प्रथम 'न' कारका लाभ होता है और बाद के दूसरे अक्षरों का लाभ भी क्रमशः अनंत अनन्त कर्म पुद्गलों का क्षय होने से होता है।

'श्रीनवकार उभय लोक में सुख का मूल है' ऐसा समझ कर इस महामंत्र का सदा स्मरण करो। क्योंकि पंच परमेष्ठी को किया गया नमस्कार जीव को हजारों भव से छुड़ाता है और दुर्लभ बोधि बीज की प्राप्ति कराता है।

सब मंत्र रत्नों की उत्पत्ति का मूल स्थान, विषधर, शाकिनी, डाकिनी, याकिनी आदि के उपद्रवों का निग्रह करने वाला और सम्पूर्ण जगत को वश में करने के लिये प्रौढ़ प्रभाव संपदावाले श्रीनवकार की महिमा तीनों जगत में सब काल में सबसे श्रेष्ठ और अद्भुत है।

सर्वस्व समर्पण करने की बुद्धि से किये नमस्कार के दान को श्रीठाणांग सूत्र में बताये नौ प्रकार के पुण्यों में नवां सर्वोत्कृष्ट पुण्य बतलाया है।

श्रीपंच परमेष्ठी भगवान यानी विश्वकल्याण की भावना का भण्डार। उन्हें नमस्कार करने से यह भावना नमस्कार

करनेवाले में प्रगट होती है। पीछे जगत में उसका कोई शत्रु नहीं बन सकता।

ध्यान सब तपों में श्रेष्ठ है। जब उसका विषय पंच परमेष्ठी बनता है, तब ध्यानगत हुआ श्रीनवकार मदोन्मत्त हाथी की तरह सर्व कर्मरूपी वृक्षों का समूल उन्मूलन कर देता है।

नमस्कार की क्रिया सन्मान का दान है। सन्मान का दान सब दानों में उच्च है। जो योग्य को योग्य सन्मान देता है उसका पुण्य कभी कम नहीं होता। उसमें पाप का प्रवेश नहीं हो सकता। इसलिये योग्य व्यक्ति को सन्मान का दान देना यह मानव-जन्म का अमूल्य ल्हावा है।

श्रीपंच परमेष्ठी भगवंत जगत में सर्वश्रेष्ठ सन्मान के योग्य हैं, उनको नमस्कार करने से सन्मान का दान होता है, क्योंकि नतमस्तक होना यह उनका महान् सन्मान है। नत-मस्तक होने से अहं का विष उतर जाता है और सब ही योग्य जीवों को झुकने का सत्त्व अपनो आत्मा में प्रगट होता है। अहं को झुकाये बिना एक भी शत्रु नहीं झुकता और पंच परमेष्ठो को झुके बिना अहं कदापि नहीं झुकता। अहं को झुकाने में नवकार की साधना अति आवश्यक है।

नमस्कार कहता है कि तुम सब मुझे तुम्हारे अहं को सुपुर्द कर दो तो मैं तुमको **अर्हं** सुपुर्द कर दूं।

श्रीनवकार महामंत्र है। क्योंकि उसमें अनेक शक्तियां हैं। पाप-कर्मों को नाश करने की विद्युत् शक्ति और पुण्य-कर्मों को बंध करानेवाली आकर्षण शक्ति और रस के अलावा विविध शक्तियों का अचिंत्य पुञ्ज इसमें है।

श्रीनवकार का सब से बड़ा बल यह है कि यह अपने दुश्मनों का नाश करता है। वास्तविक रूप में अपने दुष्ट मन के सिवाय अपना कोई दूसरा दुश्मन नहीं है। श्रीनवकार महामंत्र है क्योंकि इसके द्वारा मन की दुष्टता दूर होती है।

केवल अपनी बाह्य सुख सुविधा का विचार करनेवाले आराधक विश्व हित की भावनावाले श्री तीर्थंकरदेव या उनके मार्ग पर अप्रमत्तापूर्वक चलने वाला अन्य परमेष्ठी भगवंतों के साथ किस तरह भाव सम्बन्ध स्थापित कर सकता है ?

महामंत्र श्रीनवकार की शरणागति स्वीकार किये बिना मनरूपी पवन के तूफान के बीच अंतर की भूमि में सर्व जोवों के हित का भाव बीज का मूल कैसे डाला जा सकता है ?

श्रीनवकार मंत्र के बीज से बासित अन्य मंत्रों की उपासना फलदायी होती है, अन्यथा निष्फल होती है, ऐसा श्रीसर्वज्ञ शास्त्रों का कहना है।

रत्नों से भरे संदूक का बजन बहुत कम होता है। परन्तु कीमत अधिक होती है। इसी प्रकार श्रीनवकार मंत्र शब्दों में छोटा है किन्तु अर्थ से अनन्त है और सिद्धान्त से प्रमाण भूत है।

मोक्ष मार्ग बतानेवाले श्रीअरिहंत, अविनाशी सुख के भोक्ता श्रीसिद्ध भगवान, पंचाचार के पालन में समर्थ आचार्यों, विनय रत्न की खान उपाध्याय और मोक्ष साधना में सहायक साधुओं ये पंच परमेष्ठी जगत में सब गुणों के भण्डार हैं।

संसार में एक तरफ पांच विषय हैं और दूसरी तरफ पंच परमेष्ठी हैं। पंच परमेष्ठियों के प्रति भक्ति से पाँचों विषयों का राग दूर हो जाता है।

श्रीअरिहंत की वाणी का श्रवण करने से **'शब्द'** नाम का विषय, श्रीसिद्ध भगवान के शाश्वतरूप के ध्यान से **'रूप'** नाम का विषय, श्री आचार्य के पंचाचार की सुगन्ध से **'गंध'** रूप विषय, श्री उपाध्याय के ज्ञानामृत के रसास्वाद से **'रस'** रूप विषय और मुक्ति की साधना में लीन साधु महाराज के स्पर्श से **'स्पर्श'** रूप विषय जीतने का बल प्रकट होता है।

श्रीअरिहंत के ध्यान से **ज्ञानाचार** की, श्रीसिद्ध भगवान के ध्यान से **दर्शनाचार** की, श्रीआचार्य की अराधना से **चारित्राचार** को, श्री उपाध्याय की आराधना से **तपाचार** की, और साधु महाराज की आराधना से वीर्याचार की शुद्धि होती है।

श्रीअरिहंत प्रभु की भक्ति से **उपशम** गुण की, श्रीसिद्ध भगवान की भक्ति से **संवेग** गुण की, श्रीआचार्य महाराज की भक्ति से **निर्वेद** गुण की, श्रीउपाध्याय महाराज की आराधना से **अनुकंपा** गुण की और श्रीसाधु महाराज की भक्ति से **आस्तिक्य** गुण की प्राप्ति होती है।

श्रीपंच परमेष्ठी भगवान अनंत गुणों के निधान हैं। उसमें भी पांच गुण तो विशेष माननीय हैं। सर्व जीवों को

शासन रसिक बनाने की उत्कृष्ट भावनावाले श्रीअरिहंत भगवान का **औदार्यगुण**, निज स्वरूप प्राप्त करानेवाले श्रीसिद्ध भगवान का **दाक्षिण्यगुण**, मोह माया से छुड़ानेवाले श्रीआचार्य महाराज का **पापजुगुप्सागुण**, ज्ञानामृत से भव्यात्माओं को नव पल्लवित करनेवाले श्रीउपाध्याय महाराज का **निर्मल बोधगुण** और जीव मात्र के प्रति दयाभाव रखनेवाले साधु महाराज का **जन प्रियतागुण** भव्यात्माओं के मनरूपी भ्रमर को सदैव आकर्षित करते हैं।

जैसे पर्वतों में मेरू, वृक्षों में कल्पवृक्ष, सुगन्धियों में चंदन, बनों में नन्दन, पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरुड़, तारों में चंद्र, नदियों में गंगा, देवताओं में इन्द्र, समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र, सुभटों में वासुदेव, नागों में शेष नाग, शब्दों में आषाढ़ी मेघ की गर्जना, रसों में इक्षुरस, फूलों में अरविंद, औषधियों में अमृत, राजाओं में रघुनन्दन, सत्यवादियों में युधिष्ठिर, धर्मों में दया धर्म, व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत, तपों में सत्य, दानों में अभयदान श्रेष्ठ है उसी तरह सर्व मंत्रों में श्रीनवकार मन्त्र सारभूत और श्रेष्ठ है। इसके उपकार का वर्णन हजारों मुँह से भी कोई करने में समर्थ नहीं है।

वात, पित्त और कफ इन तीनों में से किसी भी प्रकृति वाले मनुष्य के लिये श्रीनवकार का ध्यान लाभप्रद है। ज्ञान वातदोष को जीतता है, दर्शन पित्तदोष को जीतना है, और चारित्र कफ दोष को जीतता है, श्रीनवकार में ये तीनों वस्तु हैं, इसलिये सम्यग् ज्ञान, दर्शन और चारित्र स्वरूप श्रीनवकार अमृत के समान है।

सूर्य की किरणों की सर्व शक्ति श्रीनवकार के अक्षरों में है, सूर्य की किरणें वर्ण द्वारा जो असर करती हैं उससे अधिक और अच्छी असर श्रीनवकार ध्वनि द्वारा करता है।

सम्पूर्ण विश्व में श्रीपंच परमेष्ठी उपकारी हैं। इनमें भी श्रीअरिहंतदेव परम उपकारी हैं। क्योंकि परमोपकारी श्रीअरिहंतदेव जगत के जीवों के लिए धर्म तीर्थ की स्थापना कर धर्म मार्ग का बोध कराते हैं। सारे विश्व में सब काल में सर्व जीवों के हितचिंतक होने से वे सब के लिये परम पूज्य हैं।

आत्महित साधनेवालों के जीवन में श्रीअरिहंत देव केंद्र स्थान में हैं, सब कर्मों से मुक्त होने का जो महान् ध्येय सिद्ध करना हो तो उसके लिये अति पुष्ट आलंबन चाहिये और ऐसा आलंबन केवल श्रीअरिहंतदेव है।

यदि जीवन को सार्थक बनाना हो, मानव जन्म का समय, और मानव शक्तियों का सदुपयोग करना हो तो मोक्ष मार्ग रूपी धर्म के दाता श्रीअरिहंतदेव को जीवन के केन्द्र स्थान में रखना चाहिये।

श्रीअरिहंतदेवों में एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनके बताये मार्ग पर चलने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी तरह इनका नाम स्मरण, दर्शन और ध्यान करने से कर्मों का क्षय होता है, आत्मगुण प्रगट होते हैं और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

श्रीतीर्थंकर पदवी, आचार्य, उपाध्याय और साधु अवस्था का अंत है, परन्तु यदि कोई बिना अन्तवाला

शाश्वत पद है तो वह सिद्ध पद है। यह सिद्ध पद इस नवकार की आराधना का अंतिम ध्येय है।

श्रीनवकार महामन्त्र है। इतना ही नहीं, परम शास्त्र भी है। अरे ! परम शास्त्र है, इतना ही नहीं, सर्व शास्त्रों में शिरोमणि महा शास्त्र है।

श्रीनवकार भावधर्म का बीज है। तथा भावधर्म से प्राप्त होनेवाले सुखों का बीज है, जिसके द्वारा स्वर्ग तथा मोक्ष के दुर्लभ सुख भी सुलभ बन जाते हैं। श्रीनवकार से अन्य सुखों की प्राप्ति अथवा साधारण दुःखों की निवृत्ति न हो, यह कल्पना करना ही ठीक नहीं है।

श्रीनवकार मन्त्र के नव लाख जाप से नरक गति का निवारण होता है। इसलिये हे भव्य ! तू हमेशा शुद्ध मन से इसका जाप कर।

श्रीनमस्कार महामन्त्र के सतत स्मरण, जाप और ध्यान से अंतरात्मा में माध्यस्थ्य भावना की लहरें उठने लगती हैं।

श्रीनवकार की प्रतिज्ञा है कि 'मेरे आश्रित के सर्व पापों का मुझे नाश करना है'। इस प्रतिज्ञा को झूंठी करने वाला आज तक कोई नहीं हुआ। इसको झूंठा साबित करने वाला स्वयं झूंठा सिद्ध हुआ है।

श्रीनवकार के अड़सठ अक्षर मोक्षनगर के अड़सठ प्रतिनिधि हैं। उनके साथ मंत्रणा एकान्त में गुप्त करनी चाहिये।

द्रव्य से भी श्रीनमस्कार महामंत्र की प्राप्ति होना चक्रवर्ती और इन्द्र के पद को प्राप्त करने से भी ज्यादा महत्त्व की बात है।

जिस तरह दिन की थकावट को रात्रि हर लेती है, उसी तरह अशुभ विचार से शरीर की, मन की और इंद्रियों की थकावट श्रीनवकार हर लेता है ।

सब शुभ प्रयत्नों की सिद्धि पंच परमेष्ठी नमस्कार महा-मंत्र की अर्थभावना में है । महामंत्र के अर्थ की भावना सर्व सिद्धियों का बीज और सर्व अनुष्ठानों का भी प्राण है ।

जाप द्वारा परमेष्ठी नमस्कार को हृदय में बिठाने के बाद कोई अशुभ भाव वहां नहीं रह सकता ।

श्रीनवकार के प्रत्येक अक्षरों से निकलते प्रकाश को आत्म-व्यापी बनाओ । इससे अज्ञानरूपी अंधकार आत्मा से अपने आप भाग जायगा ।

श्रीपरमेष्ठी नमस्कार हमेशा सबका कल्याण करने को तैयार है । सिर्फ आत्मा को अपने कल्याण का उत्तरदायित्व उस पर छोड़ देना चाहिये और बिना विघ्नबाधा के उसे काम करने देना चाहिये ।

अनेक दुःखों से पराजित संसारी जीव के लिये 'नवकार' सर्वमन्त्रों में प्रधानमंत्र है, सर्व ध्येयों में श्रेष्ठ ध्येय है, और सर्व तत्त्वों में परम-पवित्र तत्त्व है ।

ज्ञानी बनना हो तो नमस्कार की शरण में जाओ, लयलीन बनो । चौदह पूर्व के सार भूत नवकार में जो प्रयत्न करता है, वही चौदह पूर्व के रहस्यों को समझने योग्य बनता है ।

मुझे सर्वतोमुखी विकास साधने की, सुखी बनने की, आपत्तियों को दूर करने की और सब मनोरथों को सफल

बनाने की जो क्षमता नमस्कार में है वह मेरे लिये और कहीं नहीं है।

जिस नवकाररूप द्वीप पर मैं खड़ा हूं उस पर चाहे जितने भव समुद्र के तूफान आवें, वे मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकते, बल्कि वे बेचारे तूफान उस द्वीप से अथड़ाकर छिन्न-भिन्न हो जायेंगे।

जीवन की प्रत्येक दिन की तीन संध्याओं में तुम १०८ नवकार में इस प्रकार समर्पण करो कि उस समय तुम नमस्कार के ध्यान के अलावा दूसरा कुछ भी न कर सको। छः माह के नियमित एकाग्र ध्यान के बाद देखोगे कि तुम्हारा जीवन पवित्र और शांतिमय बन जायगा और तुम्हारी इच्छायें तुम कल्पना भी न कर सको उस तरह सफल होने लगेंगी।

मन है तब तक सङ्कल्प-विकल्प है। और मन के ये सङ्कल्प-विकल्प ही सर्व दुःखों की जड़ है। इसलिये मन पर विजय प्राप्त करना जरूरी है। अमनस्कभाव यानि उन्मनीभाव की प्राप्ति होने से मन पर विजय प्राप्त होती है, और तमाम सङ्कल्प-विकल्पों का तथा उससे उत्पन्न सर्व दुःखों का भी अन्त आ जाता है।

जीवन में श्रीनमस्कार महामन्त्र की भाव पूर्वक सतत आराधना ही अमनस्क दशा रूप परमानन्द की प्राप्ति का सरल और सहज उपाय है।

साधना मार्ग में पथ्यापथ्य

जीवन में श्रीनमस्कार महामंत्र की साधना करना अहंकारादि आत्मिक रोगों को टालने की एक औषध है। हरेक औषध के पथ्य और अपथ्य दोनों होते हैं। पथ्य पालन से औषध शीघ्र और अनेकशः गुणकारी बनती है। इससे विपरीत अपथ्य के सेवन से गुणकारी तो नहीं होती परन्तु कई बार उलटा असर कर जाती है। इसलिये पथ्यापथ्य का विवेक कर अपथ्य के सेवन से दूर रहकर पथ्य पालन में साधक जितना अधिक तत्पर बनता है, उतना ही वह साधना के मार्ग में अधिक प्रगति कर सकता है। पथ्य में तत्पर बनना यह प्रत्येक विवेकी साधक का परम कर्त्तव्य है।

बाहर के विघ्न

साधक को दो प्रकार के विघ्न हैं। एक बाहर के और दूसरे अन्दर के। बाहर के विघ्नों में मुख्य विघ्न कुसंसर्ग है। कुसंसर्ग अर्थात् बुरे आदमियों की संगति, खराब पुस्तकों का पढ़ना, बुरी बातों को देखना, बुरे वचन बोलना, बुरे संगीत सुनना और बुरे विचारों का लाना।

वैराग्य को, शांत रस को और सात्त्विक रस को पुष्ट करनेवाली वीतराग पुरुषों की मुद्राएं, उनके वचन, उनकी

अद्‌भुत कथाएं और उत्तम संगीतादि जिस तरह उत्तम सात्त्विक भावों को जागृत करती हैं, उसी तरह बुरे आलंबनों से बुरी असर होती है। इस सम्बन्ध में योग शास्त्र के नवें प्रकाश में बताया गया नीचे का मंतव्य खास उपयोगी है—

'नासद्‌ध्यानानि सेव्यानि, कौतुकेनापि किन्त्विह ।
स्वनाशायैव जायन्ते, सेव्यमानानि तानि यत् ॥'

कुतूहलवृत्ति से या परीक्षा करने के बहाने जैसे 'मैं परीक्षा करके देखूं कि इससे मेरे पर क्या असर होता है ?' अथवा "मुझ पर कोई असर नहीं होता" इस तरह कुतूहल-वृत्ति से भी असद् आलंबन का परिचय नहीं करना क्योंकि इससे स्वयं का नाश ही होता है।

मनुष्य का मन पानी के समान है। वह जिसके संसर्ग में आता है उसके माफिक बन जाता है। बुरे संसर्ग से बुरा बनता है और जब अरिहंतादि पंचपरमेष्ठियों के संसर्ग में आता है तब उनके जैसा बनता है। इस प्रकार वस्तु स्थिती होने से, मन को बुरे संसर्ग से बचाना चाहिये और अच्छे संसर्ग में लगाना चाहिये।

दुराचारी मनुष्य अधिकांश में बुरे संसर्ग से ही दुराचारी बनता हैं।

बड़े २ अपराधों की उत्पत्ति अनुक्रम से इस प्रकार होती है:—काम से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृतिभ्रंश, स्मृति-भ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से पापाचरण उत्पन्न होता है। परन्तु इन कामादि का भी मूल कारण तो बुरा संसर्ग ही है।

काम-क्रोधादि दुर्गुण तथाविध कर्मोदय से हरेक के अन्दर होते हैं। परन्तु पवन जैसे अग्नि को प्रज्वलित करता है वैसे कुसंसर्ग काम-क्रोधादि को उत्तेजित करता है।

बुरी बातें सुनना, बुरी वस्तुएं देखना, बुरे गीत गाना, अपशब्द बोलना, बुरी चाल चलना, बुरी तरह बैठना, बुरे संकल्प विकल्प करना आदि भीतर के छिपे दोषों को और विघ्नों की वृद्धि करते हैं। त्रिभुवनपति श्रीतीर्थंकर परमात्मा भगवान श्रीमहावीरदेव आदि महापुरुषों को भी भीतर के शत्रुओं के साथ घोर युद्ध करना पड़ा था, तो फिर दूसरों का क्या जो उनके पैरों की रज की भी बराबरी नहीं कर सकते, वे खराब संसर्ग में रहकर दोषों को जीतने की बढ़ाई करें यह कैसे हो सकता है ?

इसलिये बुरे संसर्ग का त्याग कर अच्छे संसर्ग में रहना, साधना मार्ग की सबसे पहली शर्त है।

सदाचारी पुरुषों के बीच रहने मात्र से अनेक पापात्माओं का भीउद्धार हुआ है। साधना मार्ग में यह उत्तम प्रकार के पथ्य का पालन अति आवश्यक है और कुसंसर्ग में रहना सबसे बड़ा कुपथ्य है जो त्याग करने योग्य है। कारण कि बाहर का सबसे बड़ा विघ्न यही है।

आंतरिक विघ्न

(१) काम

आंतरिक विघ्नों में काम सबसे पहला विघ्न है। काम-वासना अनेक दोषों की उत्पत्ति का स्थान है। शिकार, जुआँ,

सुरापान, पर निन्दा, बुरी स्त्रियों का संग, हलके स्तर के गीत, नृत्य आदि का शौक और घूमना फिरना। ये सब बुरी आदतें कामी पुरुषों की वृत्ति में होती है।

उत्तम सदाचारी पुरुषों के मध्य विनम्र भाव से रहना तथा ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ों का पालन करना, यह कामवासना पर अधिकार करने का सरल उपाय है। तथा निम्न विचारों का परिशीलन भी कामवासना पर विजय प्राप्त करने में परम सहायक हैं।

(१) सर्व विश्व के प्रति मैत्रीभाव रखना। स्त्री जाति के प्रति मातृभाव रखना। माता सम्बन्धी विचार पवित्रता कायम रखने के लिये प्रबल प्रेरणादायक है।

(२) आध्यात्मिक जीवन के विकास के लिये अखण्ड ब्रह्मचर्य की अति आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य यह उत्तम तप है।

(३) शरीर यह आत्मा का मंदिर है, इसलिये उसे पवित्र रखना चाहिये। ब्रह्मचर्य का पालन ही शरीर को पवित्र रखने का उपाय है।

(४) अधिक मादक भोजन कामोत्तेजक है। कठोर शय्या और जल्दी शयन यह ब्रह्मचर्य के लिये सहायक है। उपवास और उणोदरी भी इसमें सहायक है। आसन, मुद्रा और प्राणायाम बुरे विचारों को नहीं आने देते हैं।

(५) रागजनक पदार्थों पर प्रेम वासना मानी जाती है और इसी प्रेम को वीतराग की तरफ लगाना शुभ भावना मानी जाती है। वासना सब दुर्गुणों की जड़ है और शुभ-भावना सब गुणों की जननी है। इसलिये अयोग्य स्थानों से

प्रेम को हटाकर उसे प्रभु की तरफ लगाने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके बिना भयंकर दोषों को जीतना अशक्य है। इस प्रकार प्रेम का रुपान्तर करना यह काम को जीतने का उत्तम से उत्तम उपाय है और इससे आत्मिक आनन्द का भी अनुभव होता है। आत्मिक आनन्द का अनुभव हुए बिना विषय के आनन्द की वृत्ति पूरी तरह नष्ट नहीं होती।

(६) गृहस्थ साधकों को भी जहाँ तक हो सके तब तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये और यदि इतना न बन सके तो सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य की भावना रख कम से कम स्व स्त्री में संतुष्ट रहकर पर स्त्री की अभिलाषा का त्याग तो करना ही चाहिये।

(२) क्रोध

आतरिक विघ्नों में क्रोध भी एक भयंकर कोटि का विघ्न है। क्रोध को जीतने का एक उपाय क्रोध से होती अनर्थों की विचारणा करना वह है। बारंबार अनुप्रेक्षापूर्वक विचारणा करने से धीरे २ क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है। यह विचारणा निम्न रूप से की जा सकती है:—

(१) कोई भी दुर्गुण अकेला नहीं होता, उसके पीछे दूसरे अनेक दुर्गुण होते हैं। इसलिये एक दुर्गुण को जीतने से उसके साथी दूसरे दुर्गुण भी बिना प्रयत्न के जीत लिये जाते हैं।

(२) क्रोध के साथ पैशुन्य, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, कठोर वचन, असत्य आदि अनेक दोप रहते हैं। इसलिये एक क्रोध को जीतने से दूसरे सब दोष भी निर्बल हो जाते हैं।

(३) क्रोध से चेहरा डरावना होता है, आंखें फूलकर लाल हो जाती हैं, होठ फड़कते हैं, श्वासोश्वास जोर से चलती है, अमानवीय दृश्य होता है और आकृति उग्र होती है। क्रोध से आपस की प्रीति का नाश होता है, शरीर की कांति का नाश होता है, खून का संचार तेजी से होने लगता है, ज्ञानतंतु निर्बल हो जाते हैं, और कमजोरी बढ़ जाती है। फलतः वाई, हिस्टिरिया, पागलपन, आदि क्रोध से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है। क्रोध से पाचनशक्ति कमजोर हो जाती है और किसी समय क्रोध से आत्महत्या या अन्य रीति से मृत्यु भी हो जाती है। इस तरह क्रोध से होनेवाले अनर्थों की विचारणा करनी चाहिये।

(४) जब क्रोध आवे तब क्रोध जनक वस्तु या व्यक्ति से दूर हो जाना। क्रोधावेश के समय मौन रहना और क्रोध दूर होने पर ही दूसरा काम करना। क्रोध दूर होने पर गलती को स्वीकार करना और सामनेवाले व्यक्ति से क्षमा मांगना। क्रोध आवे तब सौ बार इष्टदेव का नाम लेना अथवा सौ बार इष्ट मन्त्र का जाप करना। इतने समय में प्रायः क्रोध का आवेश उतर जाता है। अपमान सहन करने की आदत डालना। नुकसान अपमान करनेवाले को होता है, सहन करनेवाले को नहीं होता। जो मनुष्य क्षमा देना सीखता है, उसे भव भ्रमण नहीं करना पड़ता और जो मनुष्य सहन करना सीखता है उसे बदले में मोक्ष का अनन्त सुख मिलता है। इस तरह विचार करने से भी क्रोध पर सरलता से विजय प्राप्त की जा सकती है।

(५) नीचे की विचारणा भी क्रोध पर विजय प्राप्त करने में उपयोगी है:–

(अ) अंत में विजय सत्य की ही होती है असत्य की नहीं।

(ब) क्रोध की अपेक्षा प्रायः स्नेहपूर्ण नम्र बर्ताव से सोचा काम अच्छी तरह हो सकता है।

(क) जिस तरह जलते तिनकों से सागर का पानी गर्म नहीं हो सकता उसी तरह क्रोध से कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं हो सकता।

(ख) नम्रता से कोई बात असाध्य नहीं। यदि किसी समय क्रोध करने का अवसर आ भी जावे तब भी महापुरुषों की तरह अवास्तविक क्रोध द्वारा मात्र बाहर से क्रोध का दिखावा करना, परन्तु क्रोध के आधीन नहीं होना।

(ग) सतत इष्ट मंत्र के स्मरण से भी क्रोध का नाश होता है।

(३) लोभ

आंतरिक विघ्नों में काम, क्रोध के बाद लोभ का नम्बर आता है। बिना आवश्यकता के संग्रह करना और दूसरों को आवश्यक होने पर भी न देना, ये लोभ का लक्षण है। लोभ और तृष्णा ये दोनों एक ही कुमति में से उत्पन्न हुए भाई-बहिन हैं। आकाश की तरह तृष्णा का अंत नहीं, उसी तरह लोभ का खड्डा कभी नहीं भरता। स्वयंभूरमण समुद्र को कदाचित दोनों हाथों से तैर कर पार किया जा सकता

है परन्तु देव गुरु की कृपा के बिना लोभ सागर को तैर कर पार नहीं किया जा सकता। लोभवृत्ति पर विजय प्राप्त करने के लिये एकान्त में बैठ कर स्थिर चित्त से निम्न प्रकार विचारणा करनी चाहिये।

मैं किस तरह का लोभ रखता हूँ ? उसकी प्राप्ति से मिलनेवाला सुख कितने समय तक रहेगा ? अन्त में उससे क्या लाभ होनेवाला है ? लोभ का मूल अज्ञान है। भोग की अस्थिरता तथा वस्तु की अनित्यता का ज्ञान होते ही लोभ भाग जाता है।

पर्वत से गिरती जल धारा, ओस का बिन्दु, शरद ऋतु के बादल, पानी के बुदबुदे, मृग तृष्णा, कुपथ्य अन्न या खारा पानी आदि उपमाओं से युक्त भोग अनित्य, असार, कष्ट-दायक और अतृप्ति कर हैं। आज का भोगा हुआ भोग कल स्मृति और स्वप्न-रूप बन जाता है। कामनाएँ मनुष्य के कट्टर शत्रु हैं। तृष्णाओं की तृप्ति के लिये प्रयत्न करना जलती आग में घी की आहुति देने के समान है। एक मनुष्य की कामना को भी संसार के सब पदार्थ मिल कर पूरा नहीं कर सकते। लोभ मानसिक रोग है। असाध्य व्याधि है। संतोष और संयम ये दोनों इसके लिये रामबाण उपाय है। छोटी से छोटी कामना को भी संयम से दबाने का प्रयत्न करना ही कामनाओं को जीतने का मन्त्र है।

इसके सिवा यह भी विचारना चाहिये कि अपना जिसके बिना काम नहीं चलता, ऐसी कितनी वस्तुओं की दुनिया में अपने को वास्तविक जरूरत है। मध्यस्थता पूर्वक

विचार करने से मालूम होगा कि आवश्यकताएँ बहुत कम हैं, प्राप्त बस्तुएं भी जरूरत से अधिक है। संतोषी के लिये पृथ्वी पलंग है, हाथ सहारा है, आकाश छत्र है, चंद्रमा दीपक है, दिशाओं का पवन पंखा है, विराग पत्नी है और न्याय-पूर्वक प्रवृत्ति से भाग्यानुसार सहज ही जो मिल जावे वही भोजन है। वास्तव में मनुष्य को बहुत ही थोड़े पदार्थों की और वह भी अल्प समय के लिये ही जरूरत है। इस प्रकार विचार करने से लोभ वृति कम होती है।

(४) मोह

मोह का कारण अविद्या है। अपनी न हो उस वस्तु को अपनी मानना उसका नाम मोह है। मनुष्य को शरीर आदि में अपनेपन की बुद्धि होती है उसका कारण मोह है। शरीर अपना हो तो एक भी सफेद बाल को काला क्यों नहीं किया जा सकता ? घर अपना हो तो इच्छा हो तब तक उसमें क्यों नहीं रहा जा सकता ?

मोह का माहात्म्य कैसा अगम्य है, कि जो देखती आँख में धूल डालकर खराब से खराब और गंदे में गंदे पदार्थों को भी सुन्दर और आकर्षक तरीके से दिखाता है।

मोह यानि अज्ञान। जैसे सूर्य से अंधकार दूर होता है, वैसे ज्ञान रूपी सूर्य से ही अज्ञान अंधकार दूर होता है। यह ज्ञान अर्थात् मैं कौन हूँ ? और मेरा क्या है ? यह समझने लायक है। जिसे यह बराबर समझ में आजाता है वह बाहर की किसी भी वस्तु में लिप्त नहीं होता। विवेकी मनुष्य प्रारब्ध—कर्म के अनुसार उचित कार्य करता है, परन्तु

उसमें अपने कर्तृत्व का झूंठा अभिमान नहीं करता, वह अपनी विवेक बुद्धि से पूरी तरह मानता है कि अधर्म और अनीति ये ही मनुष्य जाति के शत्रु हैं, नहीं कि अमुक मनुष्य या वस्तु। इससे वह अधर्म और अनीति वाले आचरण से हमेशा बचता रहता है।

सिर्फ अपने अकेले के ही सुख और स्वार्थवृत्ति से मोह की अत्यंत वृद्धि होती है। इसलिये मोह को कम करने के लिये विवेकी आत्मा निःस्वार्थ प्रेम के क्षेत्र का विस्तार करता है और क्रमशः प्रेम को विश्वव्यापी बनाता है। वह अपने सुख के बजाय प्राणी मात्र के सुख को अधिक चाहता है। यही भावना मोह नाश के लिये अंतिम और अति उग्र शस्त्र है। इससे मोह का ऐसा समूल नाश होता है कि वह फिर कभी वापिस आकर खड़ा नहीं रह सकता। स्वार्थ का त्याग कर सम्पूर्ण विश्व के तमाम जीवों तक मैत्री भावना का विस्तार करने से आत्मा सर्वथा दोष रहित वीतरागता भी प्राप्त कर सकता है।

(५) मद

मद यानि प्राप्त वस्तु का गर्व। आत्म-निरीक्षण करने से मद या मिथ्याभिमान नहीं टिक सकता।

जिसे विद्या का गर्व हो उसे विचारना चाहिये कि तू अपने स्वयं के विषय में कितना जानता है? देह के अवयवों, इंद्रियों के कार्य, खून के बिन्दु, और रजकण शरीर की रचना आदि सम्बन्धी कितना ज्ञान है? यदि कदाचित् है तब भी तूने अपने प्रयत्न से यह ज्ञान प्राप्त किया या दूसरों की

सहायता से ? रेती का कण किसका बनता है ? लोह चुम्बक लोहे को किससे आकर्षित करता है ? आदि पूछने से मद दूर हो जायगा। वक्तृत्व शक्ति का गर्व हो तो विचारना चाहिये कि तेरी यह वक्तृत्व शक्ति कहां से आई है ? क्या यह हमेशा एक समान रहनेवाली हैं ? इसमें तेरा कितना हिस्सा है ? और सुननेवालों का कितना हिस्सा है ? भूतकाल के वक्ताओं के वक्तव्य महान् ग्रन्थकारों के रचित ग्रंथ और गुरुओं के आशीर्वाद आदि अनेकों का इसमें कितना हिस्सा है ? मांगी हुई वस्तुओं का गर्व कैसे किया जा सकता है ? गर्व करते समय यह भी विचार करना है कि महान् कवियों, गणित शास्त्रियों, सत्ताधीशों, योद्धाओं, या कलाकारों का गर्व कितने समय तक ठहरता हैं ? अपनी स्वयं की शक्तियों पर अपना कितना अधिकार है ? शरीर, रोग, जरा और मृत्यु पर कितना काबू है ? शक्तियां, धारणाएं, और आशाएँ कितनी क्षण भंगुर हैं ? छोटी से छोटी शक्ति भी मनुष्य को बिना दूसरों की मदद के नहीं मिल सकती अर्थात् यह शक्ति कुदरत की है ? चैतन्य कि सहायता बिना एक तिनका भी नहीं मुड़ सकता। सर्व शक्तियां चैतन्य पर अवलंबित हैं। नैत्रों का तेज, मुंह के वचन और मन का मन भी एक आत्मा ही है। बाकी सब मांगे हुए दागीने के समान है, फिर भी उसे अपना मानना यह मूर्खता है। ज्ञान, डहापन, धर्म या नीति वगैरह हों तब भी वे अधिकांश में दूसरों की कृपा से मिले हुए हैं और इसलिये वे दूसरों के हैं। उनका गर्व मनुष्य किस तरह कर सकता है ?

मद नाश के लिये निम्न विचारणा और उपाय भी उपयोगी हैं—

(१) अपने दोषों की एक सूची बनाओ और उसे प्रति दिन लक्ष्य पूर्वक देखते रहो।

(२) मद से उत्पन्न होनेवाले भयंकर दोषों का विचार करो। मद से उत्पन्न होनेवाले दोष ये हैं—दूसरे मनुष्यों का तिरस्कार, दूसरों को दु.ख देने की वृत्ति, दोष दृष्टि, असत्य वचन, क्रोध, चिड़चिड़ापन, ईर्ष्या, जुल्म, परेशान करने की वृत्ति, कटु भाषण, बुद्धि नाश, उद्वेग इत्यादि।

(३) जब प्रभु हृदय में आते हैं तब 'अहं. बाहर जाता है और 'अहं' रूपी मद हृदय में आता है तब प्रभु बाहर निकल जाते हैं। अग्नि ओर जल दोनों जिस तरह एक जगह नहीं रह सकते उसी तरह 'अहं' और 'अर्ह' (प्रभु) एक स्थान पर नहीं रह सकते। दोनों के लिये एक स्थान नहीं, दोनों में से एक को तो बाहर निकलना ही पड़ता है।

(४) कोई भी मनुष्य क्या कभी यह कह सकता है कि मैंने मेरा जीवन बिलकुल बिना भूल के बिताया है ?

(५) जिन वस्तुओं का गर्व होता है, वे पदार्थ मृत्यु के बाद दूसरों के हो जाते हैं। कभी-कभी तो मृत्यु के पहले ही ऐसा हो जाता है।

(६) हरेक मनुष्य किसी न किसी विषय में तो अपने से ऊपर होता ही है। ये अथवा इसी प्रकार के अन्य विचारों से मद ज्वर दूर होता है।

(६) ईर्ष्या

काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद की तरह ईर्ष्या भी अंदर का एक महान् शत्रु है। ईर्ष्या दीमक की तरह है। यह जिसे लागू पड़ जाती है उसका धीरे धीरे नाश करके ही चुप होती है।

ईर्ष्या को जीतने का सच्चा उपाय प्रेम है। जिन पर प्रेम होता है, उन पर ईर्ष्या कभी नहीं होती। जिसके हृदय में ईर्ष्या होती है उसकी जिव्हा में निन्दा होती ही है। इसलिये निन्दा छोड़ने का उपाय भी हृदय में से ईर्ष्या को तिलांजली देकर उसके स्थान पर प्रेम प्रकटाना यह है।

हृदय से ईर्ष्या दोष को दूर करने के लिये अपने दोषों को और दूसरों की अच्छी बातों को देखते रहना। खराब से खराब मनुष्य में भी गुण ढूंढने की वृत्ति रखना। सच्चे दिल से जो अपनी पवित्रता और शुद्ध चरित्र चाहता है, उसे जहां से भी बने वहां से सद्गुण ढूंढ २ कर अपने जीवन में उतारना चाहिये इससे गुणों की स्पर्धा होती है, परन्तु ईर्ष्या नहीं होती। गुणों की स्पर्धा से उन्नति होती है और दोष दृष्टि से अवनति होती है।

ईर्ष्यावान दयापात्र होता है। जिन वस्तुओं को देखने से दूसरों को आनन्द होता है, उन वस्तुओं को देखकर उसे अत्यन्त उद्वेग होता है। उसके मन अमृत भी विष जैसा; स्वर्ग नरक जैसा; और पूर्णिमा अमावस्या जैसी लगती है, ईर्ष्यावान जैसा दूसरा कोई अभागा नहीं है। विष की असर जैसी शरीर पर होती है, वैसी या उससे कई गुणी अधिक असर ईर्ष्या की

मन पर होती है। ईर्ष्यालु का मन बेचैन रहता है, शरीर स्वस्थ नहीं रहता, मन खाली होकर निर्बल हो जाता है, किसी काम को करने की इच्छा नहीं होती, उसका आनन्द समाप्त हो जाता है। बहुत से क्लेशों तथा मृत्यु का मूल ईर्ष्या है। ईर्ष्या ने क्लेश कराकर कितनी ही प्रजाओं और व्यक्तियों का नाश कराया है।

जिस मनुष्य में गुण नहीं होते वही प्राय: दूसरे के गुणों की ईर्ष्या करता है। क्योंकि मनुष्य का मन या तो अपने गुणों में अथवा दूसरों के दुर्गुणों में रस लेता है। जिसके अपने में गुण नहीं होते वे अधिकांश में दूसरों के दुर्गुणों को देखा करते हैं। जो निर्बल होता है वही दूसरे के बल की ईर्ष्या किया करता है। दूसरों के गुणों को संपादन करने की शक्ति जिसमें नहीं होती, वही मनुष्य दूसरों के गुणों को उतार कर उसकी बराबरी करने का प्रयत्न करता है। तुच्छ और निर्बल अंत:करण में ही ईर्ष्या का निवास होता है।

हरेक मनुष्य किसी न किसी काम में ख्याति प्राप्त करने लायक होता है। क्योंकि सुख, वैभव, कीर्ति और ख्याति प्राप्त करने के अनेक साधन हैं। वे हरेक को अलग अलग मिले होते हैं और उसके द्वारा उन्हें ख्याति मिलती है। उनसे ईर्ष्या करना किसी तरह ठीक नहीं। सब अपने अपने प्रारब्ध और पुरुषार्थ के अनुसार कीर्ति संपादन करते हैं। उनकी ईर्ष्या करना यह निरी अज्ञानता है। ईर्ष्या करने से किसी को कुछ नहीं मिलता। ईर्ष्या के बजाय गुण दृष्टि रखने से हरेक मनुष्य से और प्रसंग से कुछ न कुछ सद्‌गुण प्राप्त किया जा सकता है।

महामंत्र के साधकों के लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और ईर्ष्या ये छः वस्तुएँ अपथ्य हैं, दोषों की खान है और इसलिये ये त्याग करने लायक हैं। यहां संक्षेप में उनका स्वरूप बताया गया है। उनके पुनः पुनः वांचन, मनन, और परिशीलन द्वारा हम इन दोषों की पकड़ में से क्रमशः मुक्त होने का बल प्राप्त करने में भाग्यशाली बनें।

समय कम है। रास्ता लम्बा है, विघ्न बहुत है। मात्र श्रीपंचपरमेष्ठी के प्रति भक्ति भाव ही इस थोड़े समय को सार्थक करेगा। लम्बे मार्ग को छोटा बनायेगा, सब विघ्नों को दूर करेगा।

* * * *

पारस जिस धातु को छूता है उसे सुवर्ण बनाता है, उसी तरह श्री नवकार का मंगल जिसके अन्तःकरण में है उसे पूर्ण मंगल रूप बनाता है, सिद्धरूप बनाता है, स्व-स्वरूप बनाता है।

साधक जीवन और नियमितता

हम भविष्य में कैसे होनेवाले हैं इसका वास्तविक पता दूसरों के सच्चे झूंठे अभिप्राय से नहीं मालूम होता, परन्तु अच्छा बनने के लिये हम वर्तमान में अंतःकरण पूर्वक किस तरह का और कितनी तीव्रता से व्यवस्थित और नियमित प्रयत्न कर रहे हैं, इससे ही पता चलता है। अपना वर्तमान जीवन ही भावी जीवन की जड़ है। विश्व में कोई भी कार्य अकस्मात् नहीं होता परन्तु उसके वास्तविक कारण में से निकलता है। भाग्य भी बिना कारण नहीं बनता परन्तु भूतकाल के पुरुषार्थ से उसका निर्माण हुआ होता है। सच्ची दिशा में विधिपूर्वक हुआ आज का अपना पुरुषार्थ भविष्य के अपने शुभ भाग्य का निर्माण करता है। भूतकाल अपने हाथ में नहीं है और भविष्यकाल भी आज विद्यमान नहीं है। सिर्फ वर्तमानकाल ही अपने हाथ में है। इसे हम जितना सुधारेंगे उतने ही हम सुरक्षित हैं। एक अनुभवी ने ठीक ही कहा है:—

गते शोको न कर्तव्यो, भविष्यं नैव शोचयेत्।
वर्तमानेन कालेन, वर्तन्ते हि विचक्षणा.॥

बीते का शोक न करना, भविष्य की चिंता नहीं करना। विचक्षण पुरुष तो वर्तमान के अनुसार कार्य करते हैं।

जो अपने वर्तमान को सुधारने का प्रयत्न करता है वही वास्तव में विचक्षण है। वर्तमानकाल को सुधारने के लिये नियमित और व्यवस्थित होने की बहुत आवश्यकता है।

यद्यपि सर्व प्रवृत्ति में नियमितता की जरूरत है तब भी साधक जीवन में तो व्यवस्थितता और नियमितता की अति आवश्यकता है। आदरपूर्वक नियमित रीति से की गई छोटी से छोटी क्रिया भी महान् लाभ देनेवाली हो सकती है ऐसे अनेक उदाहरण आज भी मौजूद हैं। व्यवस्थित, और नियमित रीति से दृढ़तापूर्वक मात्र 'नमुक्कारसहि' जैसे छोटे पच्चक्खाण की शुरुआत करनेवाला भी मासक्षमण जैसो उग्र तपश्चर्या तक पहुँच सकता है। अस्खलित रीति से मात्र तीनों संध्या बारह बारह नवकार की शुरुआत करने वाले के जीवन में करोड़-करोड़ की संख्या में नवकार गिनने को तमन्ना जागृत हो सकती है।

अनियमित और अव्यवस्थित रीति से ज्यादा काम करने पर भी उसमें सिद्धि नहीं होती। कारण कि उसमें पूर्व-पूर्व के संस्कारों की शृंखला नहीं बनती। बारम्बार टूट जाती है और टूटने के बाद पुनः नये सिरे से प्रारम्भ करना पड़ता है। इसीलिए नियमित और अस्खलित लगातार क्रिया का फल दश गुणा बताया गया है। एक दिन आयंबिल करने से एक आयंबिल का फल होता है और लगातार ज्यादा दिन तक किया जावे तो उसका फल प्रतिदिन दश दश गुणा बढ़ता जाता है। अर्थात् अस्खलित प्रवृत्ति से हर रोज दश दश गुणी आत्म विशुद्धि बढ़ती है। यह नियम स्वाध्याय, जप, ध्यान आदि हरेक क्रिया में एक समान लागू होता है।

नियमित जाप के लिये पहले बतला दिया गया है। फिर भी साधक के पूरे जीवन को किस तरह व्यवस्थित बनाया जा सकता है उसके विशेष उपाय यहां बताते हैं।

नियमित अभ्यास के लिये शुरुआत में प्रतिदिन का अमुक कार्य निश्चित कर उसका समय पत्रक बनाकर उस कार्य को चुस्ती से करने की आदत डालना चाहिये।

(१) प्रातः कितने बजे उठा ?
(२) कितना जाप किया ?
(३) कितने श्लोक पढ़े और याद किये ?
(४) कितने समय सत्संग किया ?
(५) कितने समय मौन रहा ?
(६) कितनी बार अब्रह्म की विचारणा की ?
(७) दूसरों का काम कितनी देर किया ?
(८) कितनी बार झूंठ बोला ?
(९) कितनी बार क्रोध किया ?
(१०) कितना समय व्यर्थ में बिताया ?
(११) शास्त्रों का वांचन-श्रवण कितने समय किया ?
(१२) कुटेवों को जीतने के प्रयत्न में कितनी बार असफल रहा ?
(१३) कौन कौन से गुणों की प्रगति की ?
(१४) कौन कौन से दुर्गुणों को छोड़े ?
(१५) कौनसी इंद्रिय अधिक शक्तिशाली है ?
(१६) कितने बजे सोया ?

साधक जीवन के लिये जो उपयोगी नियम ऊपर बताये हैं वे साधक को कितने उपकारक व उपयोगी है उसे समझने के लिये इन नियमों का यहां संक्षेप में विवेचन करेंगे।

(१) प्रातः कितने बजे उठा ?

Early to bed, Early to rise,
Makes a man healthy, wealthy and wise.

प्रातःकाल जल्दी उठने के लिये अन्य भाषा में भी ऊपर के अंग्रेजी वाक्य के निम्न सुभाषित बहुत प्रसिद्ध हैं।

राते वहेला जे सुवे, वहेला उठे वीर,
तन बुद्धि बहु धन वधे, सुखमां रहे शरीर।

साधक को कम से कम ब्राह्म मुहुर्त में तो उठ ही जाना चाहिये ऐसा शास्त्र का विधान है। जाप, ध्यान आदि के लिये ब्राह्म मुहुर्त सर्वोत्तम समय है। मन बिना प्रयत्न के उस समय शुभ ध्यान में लगता है। क्योंकि उस समय विश्व का वातावरण बहुत ही पवित्र होता है पापपरायण आत्मा तो उस समय करीब करीब ऊंघती रहती है और सब संत पुरुष प्रायः परम तत्त्व की साधना में लीन रहते हैं। वातावरण पवित्र होने से अल्प प्रयास से साधक का मन परमात्मा की ओर लग जाता है।

(२) कितना जाप किया ?

आत्म ज्ञान के लिये जाप यह सरल से सरल और सबसे पहला उपाय है। बारम्बार नाम स्मरण यह जाप है। जाप

अंत में समाधि में परिणित होता है। हरेक साधक को १०८ मणियों की माला रखना चाहिये। मन को परमात्मा की ओर ले जाने के लिये माला चाबुक है। वैखरी और उपांशु जाप के बदले मानसिक जाप अनेक गुणा अधिक फल देता है। प्रतिदिन कम से कम १०८ बार श्रीनवकार का जाप जरूर करना चाहिये।

नाम का प्रभाव बहुत बड़ा है। भगवान का नाम लेने से मनुष्य बहुत ऊँचा चढ़ता है। शरीर की ममता से वह छूट जाता है और भगवान के साथ एकता अनुभव होने लगती है। शुद्ध भाव, प्रेम और दिव्य भक्ति से प्रभु का नाम लेना चाहिये। भगवान के साथ एकता का अनुभव होने का यह सरल उपाय है।

आँखें बंद कर इष्ट देवता का ध्यान करना, यह भी इष्ट प्राप्ति का सरल उपाय है।

(३) कितने श्लोक पढ़े और याद किये ?

श्रीप्रशमरति, अध्यात्मकल्पद्रुम, योगशास्त्र, ज्ञानसार, अध्यात्मसार आदि अध्यात्म शास्त्रों का अभ्यास चित्त शुद्धि और आत्म निर्मलता के परम साधन हैं। वैराग्य बोधक प्रकरण सब शास्त्रों के सारांश हैं। प्रतिदिन कम से कम एक घंटे से तीन घंटे स्वाध्याय में व्यतीत करना चाहिये।

(४) कितना समय सत्संग किया ?

सत्संग का प्रभाव अचिंत्य है। ज्ञानी, योगी, त्यागी, ध्यानी ऐसे गुणवान पुरुषों का समागम महान् पुण्य से होता

है। सत्संग का एक क्षण भी पापी से भी पापी का उद्धार करता है।

'क्षणमपि सज्जनसंगतिरेका, भवति भवार्णवतरणे नौका।'

एक बार की क्षण मात्र की सज्जन की संगति संसार सागर को पार करने के लिये नाव बन जाती है।

सत्पुरुषों को किया गया नमन, उनको की गई सेवा और उनके उपदेशों के श्रवण से कषायवान मनुष्य भी शीघ्र शांत हो जाता है। सत्पुरुषों के वियोग में महापुरुषों द्वारा प्रणीत शास्त्र वचनों को पढ़ना, मनन करना आदि भी सत्संग ही है। किसको कौनसा वांचन लाभदायक है इसका निर्णय अनुभवी हितस्वियों से करना चाहिये।

भवचक्र में भ्रमण करते जीवरूपी मुसाफिर को सतत सत्समागम अत्यंत दुर्लभ है। इसलिये जब जब अवसर मिले तब तब उसका लाभ उठाकर उसे सार्थक करना चाहिये।

(५) कितने समय मौन रहा ?

वाचालता गांभीर्य का नाश करती है। बिना कारण बोलने से शक्ति का दुर्व्यय होता है। आंतरिक बातों को हर किसी को बताने से कोई लाभ नहीं होता। वाक-प्रवाह बंद होने पर ही हृदय का प्रवाह खुलता है। मौन से संकल्प-बल बढ़ता है। व्यर्थ बोलने की वृत्ति पर काबू होता है। सत्यव्रत के पालन में और क्रोध के निग्रह में मौन बहुत मदद करता है। प्रतिदिन कम से कम एक से दो घंटे मौन रखना ही चाहिये। मौन के समय उच्च विचार, जाप, ध्यान अथवा

स्वाध्याय आदि करना। बाहर आते आते शब्द की बहुत कुछ शक्ति कम हो जाती है, इसलिये प्रत्येक साधक को अपने इष्टदेव का जाप मौन रहकर ही करना चाहिये। मौन से किये गये जाप की असर बहुत गहरी होती है और इसी कारण आंतरिक मूक आशीष का मूल्य बहुत आंका जाता है। मौन, अल्पउपधि, आत्म निरीक्षण ये तीन उर्ध्वगति के लक्षण हैं।

(६) कितनी देर अब्रह्म की विचारणा की?

विशुद्ध ब्रह्मचर्य के बिना आत्मिक प्रगति असंभव है। वीर्य को ओजस् तक पहुँचाना चाहिये। जिन्हें आत्म निस्तार की सामान्य भी लगन है, उन्हें मन, वचन, काया से अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिये क्योंकि चारित्र अर्थात् सदाचार की यह जड़ है।

(७) दूसरों का कितना काम किया?

चित्त शुद्धि के लिये तथा परमार्थवृत्ति का अभ्यास करने के लिये निःस्वार्थता से दूसरों का कार्य करने की जरूरत है। इससे अंतःकरण निर्मल और प्रसन्न होता है। मैं करता हूँ इससे मेरे को इसका बदला मिले ऐसी इच्छा भी स्वार्थ-वृत्ति है। इसलिये उसे भी दूर कर दूसरों का काम करने की आदत डालनी चाहिये। परोपकार को सज्जनों की विभूति कहा है। जीवन में ऐसी परमार्थवृत्ति को लाना सम्पूर्ण आराधना का सार है।

(८) कितनी बार झूठ बोला?

सत्य ही विजयवंत है, असत्य नहीं। ऐसा शास्त्रों का वचन है। सत्यवादी को किसी भी प्रकार की चिंता नहीं

होती, उसका मन हमेशा शान्त रहता है, उसे सब पूज्य भाव से देखते हैं। सत्य बोलने से वाग्लब्धि और वचन सिद्धि प्राप्त होती है। सत्य बोलो (Speak the truth) ऐसे मुद्रा लेखों को लिख रखना चाहिये। अगर कभी झूंठ बोलने में आजाय तो उसका प्रायश्चित करो। सत्यवादी बनने का यह श्रेष्ठ उपाय है।

(९) कितनी बार क्रोध किया ?

क्रोध शान्ति का शत्रु है। हृदय में छिपी कामनाओं का यह बाह्य चिन्ह है। कामना पूरी नहीं होती तब गुस्सा आता है। क्षमा, प्रेम, अहिंसा, और अहं भाव के नाश से गुस्से का नाश होता है। क्षमा, प्रेम आदि उत्तेजित ज्ञान तन्तुओं को शान्त करते हैं। जब गुस्सा आवे तब श्रीनवकार महा-मंत्र अथवा उसका आदि पद 'नमो अरिहंताणं' थोड़ी देर तक गिनना, गुस्सेवाले स्थान को छोड़ देना, परमात्मा की प्रार्थना करना, उनकी क्षमा का ध्यान करना। ऐसे ध्यान से गुस्से को जीतने का बहुत बल प्रगट होता है।

(१०) कितना समय व्यर्थ खोया ?

कहे जाने वाले मित्र ही वास्तव में दुश्मन होते हैं। दुनिया में निःस्वार्थ मित्र मिलना बहुत कठिन है। जो मित्र व्यर्थ की बातें कर समय बरबाद कराते हैं, ऐसे मित्रों की संगति एक दम छोड़ देना चाहिये। भीतर की अमर आत्मा की मैत्री में ही विश्वास रखो, वह मित्र जो चाहिये वह देगा। अच्छा संग नहीं मिले तो जिनको आत्म साक्षात्कार हुआ हो

ऐसे महापुरुषों के वचन जिन ग्रन्थों में हों ऐसे ग्रन्थों को पढ़ना। उत्तम सामग्रीवाले मानव भव का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। क्योंकि प्रमाद में व्यतीत किया एक क्षण भी वापिस मिलना अत्यंत दुर्लभ है।

(११) कितनी देर शास्त्रों को पढ़ा ?

गुरु मुख से शास्त्रों के रहस्य को समझने का प्रयत्न करना ज्ञान प्राप्ति का प्रथम उपाय है। ऐसा अवसर नहीं मिले तब भी श्रीउपदेशमाला, उपमिति भवप्रपंचकथा, श्रीयोगशास्त्र, श्राद्धविधि, धर्म संग्रह,. शान्त सुधारस भावना, आदि शास्त्रों का स्वाध्याय, वांचन, मनन आदि भटकते चित्त को वश करते हैं, एकाग्रता प्रदान करते हैं, समाधि प्रगटाते हैं, आत्म ज्ञान कराते हैं। धर्म शास्त्रों के विचार यदि मन में बैठ जाय तो वही एक प्रकार का ध्यान और समाधि है।

(१२) कुटेवों को जीतने में कितनी बार असफलता मिली ?

कितनों को यह भी नहीं मालूम कि बुरी आदतें क्या हैं। कितने ही बुरी आदतों को अच्छी आदतें मानते हैं। सिनेमा देखना, बिना कारण दिन को शयन करना, अपशब्द बोलना, मदिरा, तम्बाकू, पान, बीड़ी का उपयोग, हलके उपन्यास पढ़ना, ये सब बुरी आदते हैं। हम में कितनी बुरी आदते हैं इसका निश्चय करना चाहिये और पीछे उनसे मुक्त होने की तीव्र इच्छा करनी चाहिये। किसी भी तरह उनका त्याग करने का प्रयास करना। एक ही झपाटे में कुटेवों को छोड़ना तो श्रेष्ठ है, फिर भी सत्त्व के अभाव से ऐसा न हो

सके तो धीरे-धीरे छोड़ते जाना। कुटेवों को छोड़ने के लिये नई २ अच्छी आदतें डालना चाहिये। किसी भी कार्य को करने का सच्चा निर्णय करने के बाद वह अशक्य नहीं रहता।

(१३) कौनसे गुण प्राप्त किये ?

जो गुण अपने में न हो अथवा अल्प प्रमाण में हों उन्हें बढ़ाने का प्रयास करना। प्राप्त करने योग्य गुण ये हैं—धैर्य, करुणा, मैत्री, प्रेम, उदारता, क्षमा, संतोष, समता, सरलता, प्रमाणिकता, मध्यस्थता, सत्य, न्याय–निष्टता, कृतज्ञता, परोपकारिता, तप, जप, निःस्वार्थता, सेवा-भाव, प्रसन्नता, सहृदयता, नम्रता, गुणप्रमोद, नियमितता, समर्पितता आदि।

उपरोक्त गुणों को एक के बाद एक प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। अधिक न बन सके तो हर मास में एक एक गुण को ग्रहण करने के लिये उसका चिंतन करना। कोई भी एक मुख्य सद्गुण प्राप्त करने से उसकी साथ के दूसरे गुण सहज में आ जाते हैं। प्रतिदिन कम से कम आधा घंटा गुणों को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये।

(१४) कौनसे दुर्गुण छोड़े ?

आंतरिक दुश्मनों को दूर करने के लिये अच्छे गुणों की प्राप्ति के साथ-साथ दुर्गुणों को दूर करने का भी प्रयत्न करना चाहिये।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या अहंभाव, माया, असत्यता, कठोरता, वाचालता, वादशीलता, ईर्ष्यालुता, चित्तातुरता, दीनता, निर्माल्यता, लुब्धता, मूढ़ता आदि दूर करने योग्य

मुख्य दोष हैं। ऊपर के सब दोषों की जड़ अहंता–ममता है। इसलिये उसका नाश करने का सख्त प्रयत्न करना चाहिये। गुरुकृपा के बिना दोषों पर विजय प्राप्त करना कठिन है। इसलिये दोषों का नाश करने के इच्छुक को गुणवान गुरुओं को समर्पित होना चाहिये। उनकी कृपा प्राप्त करने के लिये भी अप्रमत्त रहने की खास आवश्यकता है।

(१५) कौनसी इंद्रिय अधिक बलवान है ?

सब ही इंद्रियां बलवान हैं। पंडितों को भी वे उलटे मार्ग पर ले जाती हैं। हरेक इंद्रिय की खूब तपास करो। उसे जीतने के लिये उपवास, मौन, त्याग, शम, दम आदि उपायों का सेवन करो। इंद्रियां मन की सहायता से ही उत्तेजित होती हैं। इसलिये बुरे संकल्प-विकल्पों का त्याग कर अथवा उन्हें शुभ विचारों में परिवर्तित कर मन को जीतने का प्रयत्न करना चाहिये। मौन द्वारा इंद्रियां और मन दुर्बल होते जाते हैं और अन्त में जीते जा सकते हैं। इसलिये मौन का अभ्यास जीवन में बढ़ाना चाहिये जिससे इंद्रियों को जीतने में सहायता मिले।

(१६) रात को कितनी देर शयन किया ?

छः घंटे की नींद काफी समझी जाती है। निद्रा यह तंदुरुस्त जीवन की कुदरती औषध है। निद्रा यदि पूरी न हो तो कोई कार्य अच्छी तरह पूरा नहीं हो सकता। बाल, वृद्ध और ग्लान को छोड़कर दूसरों के लिये छः घंटे की निद्रा पर्याप्त है। उसे भी कम की जा सकती है। जरूरत से अधिक सोने से जड़ता बढ़ती है और मस्तिष्क शक्ति कमजोर हो

जाती है। साधना में आगे बढ़ने की इच्छावाले को नींद कम करते जाना चाहिये। प्रथम रात्रि को देर से न सोना, ऊंघ की दवा न लेना, नींद नहीं आवे तो भगवान का स्मरण करते रहना। इससे दो लाभ होंगे—भगवान के नामस्मरणपूर्वक ऊंघने से ऊंघ में भी उसकी संस्कारधारा चालू रहेगी जिससे उत्तम स्वप्न आयेंगे तथा चित्त को प्रसन्नता का अनुभव होगा। इसी तरह प्रातःकाल भी जल्दी उठने की आदत डालना चाहिये। आहार व निद्रा का आपस में सम्बन्ध है इसलिये नींद कम करने के लिये जल्दी उठना व आहार पर नियंत्रण रखना। मादक आहार सब तरह से हानिकर है। आवश्यकतानुसार सात्त्विक भोजन सब तरह से हितकारी है। उणोदरी भी निद्रा को जीतने के लिये श्रेष्ठ उपाय है।

इस तरह प्रत्येक विषय में नियमितता लाने से साधक साधना में बहुत प्रगति कर सकता है।

स्मृतेन येन पापोऽपि जन्तुः स्यान्नियतं सुरः।
परमेष्ठिनमस्कार-मंत्रं तं स्मर मानसे॥

—उत्तराध्ययन टीका

जिसके स्मरण मात्र से पापी प्राणी भी निश्चित रूप से देवगति को प्राप्त करता है, उस परमेष्ठी नमस्कार मंत्र का आप मन में स्मरण-रटण करो।

दोषों को जीतने के उपाय

साधना ऊपर उठने का मार्ग है और वह अनेक विषमताओं से भरी हुई है। इसलिये उस रास्ते पर जाने के लिये बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है। अनादि असद् अभ्यास के योग से चित्त की वृत्तियां पानी के प्रवाह की तरह स्वाभाव से अधोमार्ग में प्रवृत्त हो जाती हैं। स्वाभाविक रूप से नीचे बहता सरिता का पानी ससुद्र में मिल कर पीने योग्य नहीं रहता और अपनी मीठाश खो देता है। यदि उसे उपाय द्वारा योग्य भूमि में ले लिया जाय तो उससे जीवनप्रद अन्न, औषधियां आदि उत्पन्न होती हैं। इसी तरह अशुभ मार्ग में प्रवृत्त हुई चित्तवृत्तियां भी संसार सागर में मिल कर अपना स्वत्व खो देती हैं। इसके बजाय यदि साधना द्वारा उन चित्तवृत्तियों का यदि ऊर्ध्वीकरण किया जाय तो, उससे आत्मा को पुष्ट करनेवाली जोव की सहज शक्तियां प्रगट होती हैं। विशुद्ध हुई चित्तवृत्तियां आत्मशक्ति को प्रगट करने में सहायक होती हैं।

विषम मार्ग पर चढ़ने के लिये जिस तरह सोढ़ियां चाहिये, हाथ में आलंबन चाहिये, प्रकाश चाहिये, 'मैं चढ़ सकूंगा' ऐसी दृढ़ श्रद्धा चाहिये। **'देहं पातयामि वा कार्यं साधयामि'** अर्थात् शारीरिक श्रम की परवाह न करके

भी कार्य साधने के लिये वीर्योल्लास होना चाहिये। इसी तरह साधना मार्ग में आगे बढ़ने के लिये या साधना के अंतिम छोर पर पहुँचने के लिये आचरण रूपी सीढ़ी चाहिये, शास्त्र रूपी दीपक चाहिये, उसमें से निकलता ज्ञान रूपी प्रकाश चाहिये, गुरु रूपी हस्तावलंबन चाहिये, साधना सिद्धि के लिये श्रद्धा का अपार बल चाहिये, विषम परिस्थिती आने पर भी उसमें टिके रहने के लिये धैर्य चाहिये, तब ही साधना में सफलता मिलती है।

बिमारी होती है तब तक अच्छे वैद्य के कहने के अनुसार बिमारी के अनुरूप दवा लेनी पड़ती है और वह बार बार लेने पर भी दोष रूप नहीं गिनी जाती है, उसी तरह यहां साधना मार्ग में भी उपयोगी उपायों को अलग अलग रीति से समझने का प्रयत्न करना पड़ता है। जो वस्तु नई हो, कठिन हो, दुष्कर हो, उसे कई बार अलग अलग रीति से समझी जाय तब ही उसमें प्रवेश हो सकता है। एक ही रीति से या एक ही सपाटे में उसमें प्रवेश या प्रगति नहीं हो सकती। बार २ आदर पूर्वक सतत अभ्यास से ही उसमें आगे बढ़ा जा सकता है।

चित्त की अशुद्धियों को दोषों को दूर करना यही साधना का मुख्य कार्य है। विधिपूर्वक की गई साधना से वे अवश्य दूर होते हैं। मल, विक्षेप, और आवरण आदि सब दोषों को दूर करने की क्षमता महामंत्र श्रीनवकार में है, यह बात निश्चित है। परन्तु अपने मन में महामंत्र का प्रवेश कराने के लिये, अपने मन तक महामंत्र को पहुँचाने के लिये और

मन में महामंत्र को स्थिर करने के लिये अपने को प्रयत्न करने की जरूरत है। महामंत्र का प्रवेश होने के बाद फिर अपन निर्भय हैं।

चित्त की अशुद्धियां और चित्त के दोषों की वृद्धि किन कारणों से होती है ? और कौन-कौन से उपायों से वे निर्मूल होती हैं ? उसके लिये कार्यरूप में परिणित करने की कितनी ही बातें समझने योग्य हैं। साधना में आगे बढ़ने के लिये साधकों को उन्हें समझना उपयोगी ही नहीं बल्कि अति आवश्यक भी है। उनके पुनः पुनः परिशीलन और आचरण से चित्त के दोष दुर्बल होते हैं। इस प्रकरण में ऐसी कुछ विचारणा निम्न प्रकार से की जाती हैं।

(१) कुछ पाप किसी वस्तु को देखने और जानने से होते हैं। इसलिये बुरी और अनावश्यक वस्तुओं को देखना, सुनना या अनुभव ही नहीं करना। चित्त में दोषों के उत्पन्न होने को रोकने का यह सरल उपाय है।

(२) अति उग्र पाप का फल इसी जीवन में ही मिलता है ! चाहे वह तीन दिन, पक्ष, मास या वर्षों बाद मिले। चिंता, व्याधि, अपकीर्ति और दुर्गति ये सब पापों का फल है अर्थात् पापाचरण दोनों लोक में दुःखदायक है। ऐसे विचार भी पाप के बल को कम करने में सहायक होते हैं।

(३) सद्गुणों से होनेवाले लाभ और फायदे का विचार करना। व्यक्ति, प्रजा और राष्ट्र प्रत्येक सदाचरण के सेवन से ही समृद्धिशाली बनते हैं, ये विचार सदाचरण को स्थिर करते हैं।

(४) मृत्यु का निरंतर विचार करना। अपने को जिनके वचन पर विश्वास हो, ऐसा कोई आप्तपुरुष अपने को कहे कि 'तुम्हारी अमुक समय के बाद मृत्यु होने वाली है' तो पाप करने की हिम्मत नहीं होगी।

एक राजा बिमार हुआ। उसके एक हितैषी ने उसे दवा के रूप में वनस्पति का रस देना शुरु किया और राजा के साथ स्वयं भी रस पीना शुरु किया। राजा को लाभ होने लगा, परन्तु जैसे जैसे फायदा होने लगा वैसे वैसे राजा में बुरे विचारों की वृद्धि होने लगी। इस पर राजा ने दवा देनेवाले हितैषी से पूछा 'रस तुम भी पीते हो और मैं भी पीता हूँ फिर भी तुमको तो नहीं परन्तु मुझे बुरे विचार क्यों आते हैं ? हितैषी ने इसका उत्तर बाद में देने को कहा और साथ में यह भी कहा कि राजन् आज से तीसवें दिन तेरी मृत्य होनेवाली है। तू जो रस लेता है उससे भी सात गुणा अधिक रस लिया करे तो कदाचित् तू बच सकता है। राजा ने मृत्यु से बचने से लालच में सात गुणा रस पीना शुरु कर दिया। राजा की तबियत भी सुधरने लगी और बुरे विचार आना भी बिलकुल रुक गये। राजा ने कारण पूछा, तब हितेषी ने कहा तीसवें दिन आनेवाली मृत्यु के भय से तेरे खराब विचार रुक गये हैं। तुमने जो मेरे को पहले प्रश्न पूछा था उसका भी यही वास्तविक उत्तर है। मैं तो मृत्यु को अपने पैरों पर ही खड़ी देखता हूँ। फिर रस लेते हुए मुझे पाप विचार कैसे आवे ? मृत्यु सम्बन्धी निम्न श्लोक बहुत मननीय है।

मस्तकस्थायिनमृत्युं, यदि पश्येदयं जनः ।
आहारोऽपि न रोचेत, किमुताऽकृत्यकारिता ॥१॥

इस प्रकार मृत्यु का विचार पाप और पाप विचारों को अटकाता है।

(५) पाप विचारों और पाप कार्यों को जिन्होंने जीत लिया है उनके जीवन का सूक्ष्म बुद्धि से अभ्यास करना और जो वर्तमान में पापों को जीतने का प्रयत्न कर रहे हैं उनका सत्संग करना। अथवा दूर रहनेवाले ऐसे सत्पुरुषों और उनकी सत्वृत्तियों की मन से अनुमोदना करनी। इस तरह पाप और उसके विचारों से दूर रहा जा सकता है। इसके सिवा उत्तम पवित्र पुरुषों के साथ की मित्रता भी पापों को अटकाती है। क्योंकि सच्ची और अभिन्न मित्रता भी समान स्वभाववालों के साथ ही संभव है, जिससे जिन पर दृढ़ प्रीति होती है, उनके गुणों को ग्रहण करने और उनके समान बनने की स्वाभाविक भावनाएँ रहती हैं। उत्तम प्रकृति वाले गुणवान महापुरुषों के पास ही हृदय की गुप्त बातें प्रगट हो सकती है और जिससे एक विशिष्ट प्रकार का आराम मिलता है। उनके साथ का वार्तालाप गुण प्राप्त करने और अवगुण दूर करने में सहायक होता है।

(६) एक २ दुर्गुण अथवा पाप को लेकर उसके प्रति-पक्षी गुण का विचार करने से अथवा उस दोष से मुक्त हुए पवित्र पुरुषों के प्रति प्रमोद भाव धारण करने से और वैसी दशा प्राप्त करने के लिये हृदय से प्रार्थना करने से दुर्गुणों का जल्दी नाश होता है, व सद्गुणों की प्राप्ति सुलभ होती है।

(७) सर्वज्ञ परमात्मा के ज्ञान की उपस्थिति का विचार करना। सर्वज्ञों के ज्ञान के सामने अपने को छिपा नहीं सकते। अपने मन में होनेवाले सूक्ष्म से सूक्ष्म विचारों को भी विशिष्ट ज्ञानी जान सकते हैं। मनुष्य का अपना हृदय भी हमेशा वहां उपस्थित रहता है।

(८) आत्म शक्ति का विचार करना। आत्म शक्ति के सामने अन्त में पाप बल निर्बल हो जाते हैं। पाप मृग है और आत्म शक्ति सिंह है। हृदय में दिव्य शक्ति मौजूद है ऐसा जो समझता है उसके लिये कुछ कठिन नहीं, उसे किसी बात का भय नहीं।

(९) जो बात सिद्ध नहीं हो सकती उसके बारे में विवाद करना व्यर्थ है। अपने हृदय से नहीं मानते हों ऐसी दलील देकर विवाद करना वितंडावाद है। इससे हृदय की कोमल और नाजुक सद्भावनाओं का नाश होता है। विवाद कौए की तरह निंबोली खाने जैसा है और प्रेम कोयल की तरह आम्र की मंजरी का भक्षण करने जैसा है। केवल चर्चा के लिये ही वादी होने में दोष दृष्टि मुख्य होती है और तत्त्व की खोज के लिये होनेवाले धर्मवाद में गुण दृष्टि प्रधान होती है। वितंड़ावादी दूसरों का शुभ नहीं देख सकता और तत्त्व खोजी हरेक से गुण ग्रहण कर सकता है। व्यर्थ के वाद विवाद से किसी सद्गुण या परम तत्त्व की प्राप्ति नहीं होती। परम तत्त्व-परमात्मा मन से भी अग्राह्य है। वहां वाद, तर्क, युक्ति या दलीलें काम नहीं आती। परन्तु हृदय की निखालसता, श्रद्धा और रुचि काम आती

है। मनुष्य की समझ शक्ति से परे ऐसे विषयों पर निरर्थक वाद विवाद करने से मनुष्य का मन निर्बल, शंकाशील और चंचल बनता है। इसके सिवा निरर्थक वाद से अमूल्य समय व्यर्थ जाता है। इसलिये इससे दूर रहना। परन्तु धर्म तत्त्व को जानने के लिये निर्दोष निखालस भाव से चर्चा करना, यह तो एक महान् सद्गुण है।

(१०) प्रायः हरेक मनुष्य यह इच्छा करता है कि उसकी गिनती धर्मात्मा या पवित्र मनुष्य की श्रेणी में हो। परन्तु हृदय शुद्धि के बिना धार्मिकता का मात्र बाहरी दिखावा रखने से तो धर्म की लगन हमेशा कम होती जाती है। उज्ज्वल दिखावा नीचे काला अंतःकरण छिपाने का प्रयास करने के बनिस्पत काला दिखावा नीचे उज्ज्वल अंतःकरण श्रेष्ठ है। लोगों की निन्दा या स्तुति की कोई कीमत नहीं। अंदर से अच्छा होनेवाले को भी अज्ञ लोग बुरा कहते हैं और खराब को भी अच्छा कहते हैं। इसके सिवा मात्र बाहरी बड़े २ दिखावे से अपने को तथा दूसरों को भी बहुत हानि होती है। सच्चा व पवित्र आदमी दिखावा न भी करे फिर भी वह प्रकट हुए बिना नहीं रहता। शफरी की तरह नहीं परन्तु रोहित मत्स्य की तरह गंभीर और अगाध जल में रहने वाला ही अर्थात् आत्म सद्गुण रूप महासागर में रमणता करनेवाला ही शम सुख का अवगाहन कर सकता है, आत्मानन्द में मग्न रह सकता है।

(११) साधक जीवन में सहिष्णुता गुण अत्यन्त आवश्यक है। अनेक दोषों को दबाने की ताकत सहिष्णुता में है।

मानव जीवन की श्रेष्ठता के अनेक उपाय हैं, उसमें सहिष्णुता मुख्य है। सहिष्णुता में एक महान लाभ यह है कि उसमें राजी खुशी से इच्छा पूर्वक सहन करने की कला को प्राप्त करने का अवसर मिलता है। यह अवसर मानव जीवन के सिवाय दूसरे भवों में सुलभ नहीं है। इसमें भी जिसे देवाधिदेव परम सहिष्णु भगवान महावीर परमात्मा मिले हों, उसके भाग्य की तो कोई सीमा ही नहीं है। यह नियम है कि रात दिन बारंबार जिस इष्टदेव का स्मरण होता हो, उस इष्टदेव के जीवन की असर उसके भक्त पर सब से ज्यादा होती है। जैन कुल में जन्म लेनेवाले महा भाग्यशाली जीव को प्रायः माता की कुक्षि में ही इष्टदेव की भक्ति के संस्कार जन्म सिद्ध अधिकार के रूप में माता से मिलता है। माता जैसा ध्यान करती है वैसी उसकी असर गर्भ के बालक पर होने लगती है और उससे उसकी प्रकृति के साथ इष्टदेव का सम्बन्ध हो जाता है। उत्तम कुल में जन्म लेने मात्र से ही, कुल के लम्बे समय से चले आते कितने ही उत्तमोत्तम शुद्ध संस्कारों की पूंजी अनायास मिल जाती है, जो संस्कार-धन दूसरे लाखों उपायों से भी नहीं मिल सकते। इसीलिये उत्तम जाति और उत्तम कुल का महत्त्व है। सुनते हैं कि भगवान महावीर के अनेक भक्त भूतकाल में सब से अधिक सहिष्णु हुए हैं। वर्तमान में भी प्रभु शासन में अनेक सहिष्णु महापुरुषों और महा सतियां देखने को मिल सकती हैं। यह प्रभु महावीर के पवित्र संस्कार की अपने को देन है।

सहिष्णुता जीवन में पल पल पर उपयोगी एक महान् सद्गुण है। सहिष्णुता न हो तो जगत का एक भी व्यवहार सुख पूर्वक नहीं चल सकता। संसार के बड़े बड़े विग्रहों का बीज असहिष्णुता है। असहिष्णुता कायरता है, निर्बलता है, अकुलीनता है, और आत्म विश्वास के अभाव को सूचित करता है। परस्पर में सहन करने में बड़ी शौर्यता और प्रेम की जरूरत होती है। जीवन में सहिष्णुता जैसा उपकारक और शांति स्थापक परिबल दूसरा कोई नहीं हैं। सुख-दुःख, मान-अपमान, शोक-मोह, आदि आवेगों को दूर करने की ताकत सहिष्णुता में है। सहिष्णुता किसी भी संयोग में अडिग और कर्त्तव्यपरायण रहने की एक महाकला है और अक्षुब्ध रहने की एक महान आत्म शक्ति है। प्रेम से ही जगत में दिग्विजय हो सकती हैं, इस सूत्र की यह व्यवहारिक प्रक्रिया है। सहिष्णुता आत्मा का खमीर है और आत्मा की शक्ति रूप होने से उसकी ताकत भी अपार है। सहिष्णुता सन्मानपूर्वक क्षमा का दान है। क्षमा मांगने में जिस तरह नम्रता और सरलता की जरूरत होती है, उसी तरह क्षमा देने में–दूसरों की बात को बरदाश्त करने में, दूसरों की भूल को सह लेने में सहिष्णुता गुण की जरूरत होती है। इसलिये सहिष्णुता एक विशिष्ट प्रकार का दान भी है। महापुरुषों को 'सर्वसहा' की उपमा दी जाती है, उसका मतलब भी सहिष्णुता ही है। सब को सहन करने और अपने स्वत्व से चलायमान न होने, अर्थात् अपने कर्तव्य को न भूलने की अडिग आत्म-शक्ति सहिष्णुता है।

सहिष्णुता अभ्यास से प्राप्त की जा सकती है। उसे प्रतिदिन जीवन में उतारने का प्रयत्न करना जरूरी है। जीवन में प्रेम और करुणा का बल बढ़ने से सहिष्णुता सहज ही बनती है। प्रेम तथा करुणा का बल भगवान की अनंत करुणा और भगवान के अनन्त वात्सल्य का विचार सुदृढ़ करने से सुलभ होती है। इसलिये प्रतिक्षण इष्टदेव के मंगल नाम का स्मरण चालू रखना चाहिये जिससे मंगल नाम के स्मरण-से प्रतिक्षण अपने चित्त में भगवान की करुणा और भगवान के वात्सल्य की सतत जागृति रह सके। दिन रात की धर्म करणी में भी यह धर्म कार्य को बताने वाले निष्कारण बन्धु अरिहंत भगवान ही हैं, ऐसा उपयोग होने पर ही तो यह क्रिया लक्ष्य पूर्वक होती है। धर्म क्रिया भी परमात्मा के ध्यान का ही मंगलमय एक प्रकार है। इस प्रकार के बारंबार अभ्यास के बल से जब परमात्मा हृदय में निवास करते हैं तब साधक को चारों तरफ से सब तरह की सिद्धियां अपने आप प्राप्त होती है।

मनुष्य शरीर में अनेक चक्र हैं; वे चक्र यदि खुल जाय तो अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त होती है।

समग्र शरीर में सबसे अधिक अगत्य का प्रदेश हृदय है। हृदय से चौदह राजलोक के साथ संबंध जुड़ सकता है। हृदय में एक कमल है, वह जब तक उल्टा रहता है, तब तक बुद्धि अधोगामी होती है। लेकिन नवकार के पदों को हृदय में स्थापन करके उपासना करने से वह कमल उर्ध्वमुखी हो जाता है और सभी चक्र भी खुल जाते हैं।

संक्षिप्त दिनचर्या गर्भित हित शिक्षा

(१) चेतन ! अनादि मोह निद्रा का त्याग कर और जल्दी उठ। स्वस्थ होकर साध्य और साधक दशा का स्मरण करानेवाला महामंगलमय श्रीपंचपरमेष्ठी नमस्कार महा-मन्त्र का स्मरण कर। पूर्व कालीन पवित्रतम महापुरुषों तथा सत्य और शीलगुण के प्रकर्ष से समस्त संसार को उज्ज्वल बनानेवाली महासतियों के नाम स्मरण से अपनी आत्मा को पावन कर।

(२) भावमल को दूर करने के लिये और आत्मा को भाव आरोग्य का व्यायाम देने के लिये, ओ ! योगीकुल के उत्तराधिकारी ! जिसमें सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, गुरुवंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, और पच्चक्खाण, यही छः आवश्यक रहे हुए हैं, उस आवश्यक क्रिया—प्रतिक्रमण को तू विधिपूर्वक कर। साधकों के जीवन विकास के लिये समस्त योग इस क्रिया में एक ही स्थान पर अनंत उपकारी श्रीगणधर भगवान ने कुशलता पूर्वक समावेश कर दिये हैं। इसलिये यह आवश्यक क्रिया सामान्य वस्तु नहीं है परन्तु योग और अध्यात्म मार्ग का सब रहस्य इसमें भरा हुआ है। ऐसी सर्वांग सुन्दर और सरल प्रक्रिया की बारंबार प्राप्ति होना भी जीव को भव चक्र में अति दुर्लभ है। इसलिये उसे तू सफल कर।

(३) अज्ञान के गहरे अंधकार को दूर करने के लिये, हे आत्मन् ! आत्म चक्षु को खोलनेवाले स्वाध्याय का तू श्रद्धापूर्वक अभ्यास कर। दिन दिन वृद्धि पानेवाले अनुप्रेक्षा स्वाध्याय से तेरे में नवनवोल्लेखशालिनी अपूर्व प्रतिभा प्रगट होगी। जिसके योग से तुझे बुद्धि से भी अगम्य और अलौकिक तत्त्वों का साक्षात्कार होगा। परम तत्त्व को प्राप्त करने के लिये तेरी श्रद्धा अति दृढ़ होगी। जगत के तमाम जीवों के साथ तुझे आत्मसमदर्शित्व प्राप्त होगा। दुखियों के दुःख दूर करने की इच्छा रूप करुणा तेरे में स्थिर होगी। तेरा ज्ञान प्रकाश निर्मल होगा और भवसागर को स्वयं पार करने और दूसरों को पार कराने की तेरी तमन्ना अति उत्कट होगी।

(४) हे आत्मन् ! तू पुद्गलों की सेवा अनादि काल से करता आया है, इससे तू पुद्गलों में मोहान्ध हो गया है, और संसार में भ्रमण किया है, इसलिये भव अटवी की थकान को यदि तुझे दूर करना हो तो तू परम चैतन्य स्वरूप देवाधिदेव श्रीवीतराग भगवान की प्रतिमा की अष्ट प्रकारी पूजा कर। आत्मा में लगे हुए तमाम प्रकार के सांसारिक मोह और ममता के विष को दूर करने के लिये यह अष्ट प्रकारी पूजा एक अजोड़ जड़ी बूटो है। इस पूजा के एक एक प्रकार के पीछे एक २ महान् सिद्धि छिपो हुई है। हे आत्मन् ! जिन पूजा करते समय तू भगवान की आत्मा जिस भावना से भगवान बनी है, उस तमाम जीव राशि को उत्कृष्ट कल्याण करने की अप्रतिम कल्याण भावना को मत भूल। भगवान की पूजा, प्राप्त सामग्री के

सदुपयोग के लिये, वस्तुओं पर को मूर्छा उतारने के लिये और सद्गुणों की प्राप्ति के लिये करने की है। गुणों की लक्ष्य पूर्वक पूजा तुझे अवश्य गुणवान बनायगी और तेरी आत्मा में भी करुणा आदि भावों को जागृत करेगी।

(५) इधर उधर से दूसरों से लेने की बुद्धि के कारण आत्म धन हीन और दरिद्र बने हुए, तथा जो कुछ मिला वही खा लेने रूप आहार संज्ञा से बिलकुल पराजित हुए हे आत्मन्! तू अब सत्पात्र को अपनी लक्ष्मी का दान देना सीख। दीन, हीन और करुणा पात्र जीवों पर अनुकंपा करने में शूरवीर बन। अब अभक्ष और अपेय वस्तुओं को बिलकुल काम में न ले। तेरे दाता गुण और अणाहारी स्वभाव को तू याद कर। पांगला और पामर मत बन। अपनी अनंत शक्तियों को काम में ले। दान, शील, और तप में तेरे आत्म तेज का प्रकाश फैला।

(६) भरण पोषण तो पशुपक्षी आदि भी करते हैं। परन्तु तू श्रीजिनेश्वर देव के मार्ग का अनुसरण करनेवाला है इसलिये अपने पेट के खातिर अन्याय, अनीति या विश्वास-घात का आश्रय कभी न ले।

(७) संसार की पापमय विकथाओं के सुनने से रोग-ग्रसित तेरी आत्मा को सद्धर्म की प्रेरणा का अमृतपान करानेवाली श्रीजिनवाणी को सद्गुरुओं के पवित्र मुखकमल से अच्छी तरह उपयोग पूर्वक श्रवण कर, इनके श्रवण से तेरी सांसारिक थकान दूर हो जायगी, तुझे एक प्रकार की नई ताजगी मिलेगी और सत्कार्य में तेरा उत्साह बढ़ेगा।

जिनवाणी तीनों काल के तीनों लोक रूपी जगत का दर्पण है। उसमें सारे जगत का यथार्थ प्रतिबिम्ब है। जिससे वह तुझे तेरी और जगत की सच्ची वास्तविकता बतलायगी।

(८) आधि, व्याधि और उपाधि से भरपूर और जन्म, जरा, मरण वगैरह दुःखों से भरे समुद्र रूपी संसार में मधुर श्रोत जैसी सामायिक करके सच्चे समता भाव का अनुभव कर। अरे भाई ! संसार की प्रत्येक प्रवृत्तिओं में सामायिक को मुख्य स्थान दे। जिससे तुझे शान्ति का सरस अनुभव होगा। छः खण्ड के स्वामी चक्रवर्ती भरत महाराजा को आरिसा भवन में केवलज्ञान हुआ वह इस सामायिक के समतायोग का प्रभाव है। दृढ़ प्रहारी जैसे महापापिओं का भी उद्धार हुआ है वह भी इस समतायोग के प्रभाव से ही। भाई चेतन ! यह समतायोग ही मोक्ष का अनन्य और प्रधान कारण है। अन्य लिंग में भी मोक्ष प्राप्त होता है, उसका भी मूल कारण समता ही है। इसलिये तू इस समतायोग की साधना अनन्य चित्त से कर।

(९) हे भाई ! तुझे अनायास ही बिना परिश्रम के वर्ष में छः माह के उपवास का फल प्राप्त करना हो तो आहार-पानी की खटपट को जल्दी समाप्त करके सूर्यास्त होने से पहले चौविहार पच्चक्खाण कर ले।

(१०) हे भाई। तुझे सच्ची आध्यात्मिक जागृति लाना है तो उसके अनन्य साधन भूत संध्याकाल का षडावश्यक प्रतिक्रमण गुरु के पास जाकर कर। याद रखना यदि तू शुभ क्रिया नहीं करेगा तो पापबन्ध की प्रवृत्तियां तुझे पल २

पर दुख देती रहेगी। तेरा आत्म धन लूटती ही रहेंगी ऐसा समझना।

(११) तू कैसा भाग्यशाली ! कि स्वाध्याय का पुण्य अवसर तुझे फिर मिला। भाई चेतन ! तत्त्वाभ्यास की अलख को तू जगा, शुभ भाव की धुन लगा और तेरी चित्त अटवी पर अधिकार जमा कर बैठे हुए महामोहादि चोरों को स्वाध्याय रूपी तीक्ष्ण शस्त्र से दूर हटा।

(१२) भाई ! तेरा जीवन सर्वस्व कौन है ? इसका तू एकान्त में विचार कर। तू कहां से आया ? तुझे कहां जाना है ? तू क्या कर रहा है ? तुझे क्या करना चाहिये ? इनका बारंबार निरीक्षण कर। अनादि भूतकाल में किये अनंत देह सम्बन्धों को तू भूल जा। एक ही पवित्र ध्येय में लग जा। अशरण शरण्य परम कृपालु देवाधिदेव के पुनीत नाम का तू स्मरण करता रह।

(१३) चेतन ! महा चपल इन्द्रियों रूपी घोड़ों पर विश्वास रख उन पर तू सवार है, परन्तु लगाम हाथ में रखना। कुटिल और चपल इन्द्रियां तुझे छल न ले, इसके लिये अप्रमत्त बन उनका दमन करना। भाई ! इन्द्रियां पुण्य बल से मिली हैं, इसलिये उनसे तू पुण्य का पोषण और पाप का शोषण कर। वे तुझे भोगास्वाद के लिये नहीं मिली है, परन्तु पुद्गल के शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श के ज्ञान के लिये मिली हैं। उनसे तू ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानी बनना और ज्ञान का उपयोग वैराग्य प्राप्ति के लिये करना।

नमस्कार स्वाध्याय (काव्य)

(१) श्रीनवकार मंत्र का छंद

दोहा

वांछित पूरे विविध परे, श्री जिन शासन सार;
निश्चे श्रीनवकार नित्य, जपतां जयजयकार० (१)

अड़सठ अक्षर अधिक फल, नवपद नवे निधान;
वीतराग स्वयं मुख वदे, पंच परमेष्ठी प्रधान० (२)

एक ज अक्षर एक चित्त, समर्यां संपत्ति थाय;
संचित सागर सातनां, पातिक दूर पलाय० (३)

सकल मंत्र शिर मुकुटमणि, सद्गुरुभाषित सार;
सो भवियां मन शुद्धशुं, नित्य जपीयें नवकार० (४)

छन्द

नवकार थकी श्रीपाल नरेसर, पाम्यो राज्य प्रसिद्ध,
श्मशान विषे शिवनाम कुमर ने, सोवन पुरिसो सिद्ध;
नव लाख जपंतां नरक निवारे, पामे भवनो पार,
सो भवियां भत्तें चोक्खे चित्ते, नित्य जपीयें नवकार० (५)

बांधी वडशाखा शिके बेसी, हेठल कुंड हुताश,
तस्कर ने मंत्र समर्प्यो श्रावके, उडयो ते आकाश;
विधि रीते जपतां अहि विष टाले, ढाले अमृत धार,
सो भवियां भत्तें चोक्खे चित्ते, नित्य जपीयें नवकार० (६)

बीजोरा कारण राय महाबल, व्यंतर दूष्ट विरोध,
जेणे नवकारे हत्या टाली, पाम्यो यक्ष प्रतिबोध;
नव लाख जपन्तां थाये जिनवर, इस्यो छे अधिकार,
सो भवियां भत्तें चोक्खे चित्ते, नित्य जपीयें नवकार०(७)

पल्लिपति शिख्यो मुनिवर पासे, महामंत्र मन शुद्ध,
पर भव ते राजसिंह पृथ्वीपति, पाम्यो परिगल रिद्ध;
ए मंत्र थकी अमरापुर पोहोतो, चारुदत्त सुविचार,
सो भवियां भत्तें चोक्खे चित्ते, नित्य जपीयें नवकार०(८)

सन्यासी काशी तप साधंतो, पंचाग्नि पर जाले,
दीठो श्रीपार्श्वकुमारे पन्नग, अध वलतो ते टाले;
संभलाव्यो नवकार सेवक मुख, इन्द्रभवन अवतार,
सो भवियां भत्तें चोक्खे चित्ते, नित्य जपीयें नवकार०(९)

मन शुद्धे जपतां मयणासुन्दरी, पामी प्रिय संयोग,
इण ध्यान थी कुष्ट टल्यो ऊंबर नो, रक्त पित्तनो रोग;
निश्चेशुं जपतां नवनिधि थाये धर्म तणो आधार,
सो भवियां भत्तें चोक्खे चित्ते, नित्य जपीयें नवकार०(१०)

घट मांहि कृष्ण भुजंगम घाल्यो, घरणी करवा घात,
परमेष्ठी प्रभावे हार फूल नो, वसुधा मांहि विख्यात;
कमलावतीये पिंगल कीधो, पाप तणो परिहार,
सो भवियां भत्तें चोक्खे चित्ते, नित्य जपीयें नवकार०(११)

गयणांगण जाती राखी ग्रहीने, पाडी बाण प्रहार,
पद पंच सुणंता पांडुपति घर, ते थई कुन्ता नार;
ए मंत्र अमूलक महिमा मन्दिर, भवदुःख भंजण हार,
सो भवियां भत्तें चोक्खे चित्ते, नित्य जपीयें नवकार०(१२)

कंबल संबले कादव काढ्यां, शकट पांचसे मान,
दीधो नवकार गया देव लोके, विलसे अमर विमान;
ए मंत्र थकी संप्रति वसुधा लही, विलसे जैन विहार,
सो भविया भत्तें चोक्खे चित्तो, नित्य जपीयें नवकार० (१३)

आगे चौवीसी हुई अनन्ती, होशे वली अनन्त,
नवकार तणी कोई आदि न जाणे, एम भाखे अरिहंत;
पूरव दिशि चारे आदि प्रपंचे, समर्यां सम्पत्ति थाय,
सो भवियां भत्तें चोक्खे चित्तो, नित्य जपीयें नवकार० (१४)

परमेष्ठी सुरपद ते पण पामे, जे कृत कर्म कठोर,
पुंडरीक गिरि ऊपर प्रत्यक्ष पेखो, मणिधर ने एक मोर;
सद्गुरु सन्मुख विधिये समरता, सफल जनम संसार,
सो भविया भत्तें चोक्खे चित्तो, नित्य जपीये नवकार० (१५)

शूलिकारोपण तस्कर कीधो, लोहखुरो परसिद्ध,
तिहां सेठे नवकार सुणाव्यो, पाम्यो अमरनी रिद्ध;
सेट्ठ तणे घर विघ्न निवार्यां, सुरे करी मनोहार,
सो भवियां भत्तें चोक्खे चित्तो, नित्य जपीयें नवकार० (१६)

पंच परमेष्ठी ज्ञान ज पंचह, पंच दान चारित्त,
पंच सज्झाय महाव्रत पंचह, पंच समिति समकित;
पंच प्रमाद विषय तजो पंचह, पालो पंचाचार,
सो भवियां भत्तें चोक्खे चित्तो, नित्य जपीयें नवकार० (१७)

कलश (छप्पय)

नित्य जपीये नवकार, सार संपत्ति सुखदायक,
सिद्ध मंत्र ए शाश्वतो, एम जंपे श्री जगनायक;

श्री अरिहंत सुसिद्ध, शुद्ध आचार्य भणीजे,
श्री उवज्झाय सुसाधु, पंच परमेष्ठी थुणीजे;
नवकार सार संसार छे, कुशल लाभ वाचक कहे,
एक चित्ते आराधतां, विविध ऋद्धि वांछित लहे०(१८)

श्री नवकार मंत्र को महिमा

(२)

श्री नवकार समो जगि, मंत्र न यंत्र न अन्य,
विद्या नवि औषध नवि, एह जपे ते धन्य;
कष्ट टल्यां बहु एहने, जापे तुरन्त कीध,
एहना बीजनी विद्या, नमि विनमिने सिद्ध०(१)

सिद्ध धर्मास्तिकायादि द्रव्य,
तिमज नवकार ए भणे भव्य;
सर्व श्रुतमां वड़ो ए प्रमाण्यो;
महानिशीथे भली परि वखाण्यो०(२)

गिरि मांहि जिम सुरगिरि, तरुमांहि जिम सुरसाल,
सार सुगन्धमां चन्दन, नन्दन वनमां विशाल;
मृगमां मृगपति खगपति, खगमां तारामां चन्द्र,
गंग नदीमां, अनंग, सुरूपमां देवमां इन्द्र०(३)

जिम स्वयंभूरमण उदधि मांहि,
श्रीरमण जिम सकल सुभट मांहि;
जिम अधिक नाग मांहि नाग राज,
शब्दमां जलद गम्भीर गाज०(४)

रस मांहि जिम इक्षुरस, फूल मां जिम अरविन्द,
औषध मांहि सुधा, वसुधा–धवमां रघुनन्द;
सत्यवादिमां युधिष्ठिर, धीरमां ध्रुव अविकंप;
मंगलमांहि जिम धर्म, परिच्छद सुखमां संप०(५)

धर्म मांहि दया धर्म मोटो,
ब्रह्मव्रत मांहि वज्जर कछोटो;
दान मांहि अभयदान रूडुं,
तप मांहि जे कहेवु न कूडुं०(६)

रतन मांहि सारो हीरो, नीरोगी नर मांहि,
शीतल मांहि उसीरो, धीरो व्रतधर मांहि;
तिम सवि मंत्रमां सार, भाख्यो श्री नवकार,
कह्या न जाय रे एहना, जेह छे वहु उपकार०(७)

तजे ए सार नवकार मंत्र, जे अवर मन्त्र सेवे स्वतंत्र;
कर्म प्रतिकूल बाउल सेवे, तेह सुरतरु त्यजी आक लेवे०(८)

एहने बीजे रे वासित, होये उपासित मंत,
बीजा पण फलदायक, नायक छे ए तंत;
अमृत उदधि फुसारा, सारा हरत विकार,
विषना ते गुण अमृतनो, पवननो नहिं रे लगार०(९)

तेह निर्बीज ते मन्त्र झूठा,
फले नहीं साहमुं हुई अपुट्ठा;
जेह महामन्त्र नवकार साधे,
तेह दोय लोक अलवे आराधे० (१०)

रतनतणी जिम पेटी, भार अल्प वहु मूल्य,
चौद पूरवनु सार छे, मन्त्र ए तेहने तूल्य;

सकल समय अभ्यंतर, ए पद पंच प्रमाण,
मह सुह खंध ते जाणो, चूला सहित सुजाण०(११)
पंच परमेष्ठी गुण गण प्रतीता,
जिन चिदानन्द मोजे उदिता;
श्री यशोविजय वाचक प्रणीता,
तेह सार परमेष्ठी गीता०(१२)

त्रिकाल आराधना का स्वरूप दर्शाने वाला सुप्रसिद्ध "अमृत वेल नामक स्वाध्याय"

(३)

(स्वामी सीमंधरा विनति, ए देशी)

चेतन ज्ञान अजुवालीये,
टालीये मोह संताप रे;
चित्त डमडोलतुं वालीये,
पालीये सहजगुण आप रे ॥ चे ॥ १ ॥
उपशम अमृत रस पीजीये रे,
कीजीये साधु गुणगान रे;
अधम वयणे नवि खीजीये,
दीजीये सज्जन ने मान रे ॥ चे ॥ २ ॥
कोध अनुबंध नवि राखीये,
भाखीये वयण सुख साच रे;
समकित-रत्न-रुचि जोड़ीये,
छोड़ीये कुमति मति काच रे ॥चे॥ ३ ॥
शुद्ध परिणाम ने कारणे,
चारना शरण धरे चित्त रे;

प्रथम तिहां शरण अरिहंतनुं,
जेह जगदीश जगमित्त रे ॥चे॥४॥
जे समोसरणमां राजता,
भांजता भविक संदेह रे;
धर्मनां वचन वरसे सदा,
पुष्करावर्त जिम मेह रे ॥ चे ॥ ५॥
शरण बीजुं भजे सिद्धनुं,
जे करे कर्म चकचूर रे;
भोगवे राज्य शिवनरनुं,
ज्ञान-आनन्द भरपूर रे ॥ चे ॥ ६॥
साधुनुं शरण त्रीजुं धरे,
जेह साधे शिवपंथ रे;
मूल उत्तर गुणे जे वर्या,
भव तर्या भाव निर्ग्रंथ रे ॥ चे ॥ ७ ॥
शरण चौथुं धरे धर्मनुं,
जेहमां वर दयाभाव रे;
जेह सुख हेतु जिनवर कह्यो,
पापजल तारवा नाव रे ॥ चे ॥ ८ ॥
चारनां शरण ए पडिवजे,
वली भजे भावना शुद्ध रे;
दुरित सवि आपणां निंदिये,
जेम होये संवर वृद्धि रे ॥ चे ॥ ९ ॥
इह भव पर भवे आचार्या,
पाप अधिकरण मिथ्यात रे;

जे जिनाशातनादिक धणां,
निंदिये तेह गुणघात रे ॥चे ॥ १०॥
गुरुतणां वचन ते अवगणी,
गूंथीया आप मतजाल रे;
बहुपरे लोकने भोलव्या,
निंदिये तेह जंजाल रे ॥ चे ॥ ११ ॥
जेह हिंसा करी आकरी,
जेह बोल्या मृषावाद रे;
जेह परधन हरी हरखिया,
कीधलो काम उन्माद रे ॥चे ॥ १२ ॥
जेह धन धान्य मूर्छा धरी,
सेविया चार कषाय रे;
रागने द्वेषने वश हुवा,
जे कियो कलह उपाय रे ॥ चे ॥ १३ ॥
झूठ जे आल परने दियां,
जे कर्यां पिशुनता पाप रे;
रति-अरति निंद माया-मृषा,
वलीय मिथ्यात्व संताप रे ॥ चे ॥ १४ ॥
पाप जे एहवां सेवियां,
तेह निंदिये त्रिहुं काल रे;
सुकृत अनुमोदना कीजिये,
जिम होये कर्म विसराल रे ॥ चे ॥ १५॥
विश्व उपकार जे जिन करे,
सार जिन नाम संयोग रे;

तेह गुण तास अनुमोदीये,
पुण्य-अनुबन्ध शुभ योग रे ।। चे ।। १६ ।।
सिद्धनो सिद्धता कर्मना,
क्षय थकी उपनी जेह रे;
जेह आचार आचार्यनो,
चरण वन सिंचवा मेह रे ।। चे ।।१७ ।।
जेह उवज्झायनो गुण भलो,
सूत्र सज्झाय परिणाम रे;
साधुनी जे वली साधुता,
मूल-उत्तर गुणधाम रे ।। चे ।। १८ ।।
जेह विरति देश श्रावक तणी,
जेह समकिती सदाचार रे;
समकित दृष्टि सुरनर तणो,
तेह अनुमोदीये सार रे ।।चे ।। १९ ।।
अन्यमां पण दयादिक गुणो,
जेह जिन वचन अनुसार रे;
सर्व ते चित्त अनुमोदीये,
समकित बीज निरधार रे ।। चे ।।२०।।
पाप नवि तीव्रभावे करे,
जेहने नवि भवराग रे;
उचित स्थिति जेह सेवे सदा,
तेह अनुमोदवा लाग रे ।। चे ।। २१ ।।
थोडलो पण गुण परतणो,
सांभली हर्ष मन आण रे;

दोष लव पण निज देखतां,
निर्गुण निज आतमा जाण रे ।।चे।।२२।।
उचित व्यवहार अवलंबने,
इम करी स्थिर परिणाम रे;
भाविये शुद्ध नय भावना,
पाप नाशय तणुं ठाम रे ।। चे ।।२३।
देह मन वचन पुद्गल थकी,
कर्म थी भिन्न तुज रूप रे;
अक्षय अकलंक छे जीवनुं,
ज्ञान आनन्द स्वरूप रे ।। चे ।। २४ ।।
कर्म थी कल्पना उपजे,
पवन थी जिम जलधिवेल रे;
रूप प्रगटे सहज आपणुं,
देखतां दृष्टि स्थिर मेल रे ।। चे ।। २५ ।।
धारतां धर्मनी धारणा,
मारतां मोह वड़ चोर रे;
ज्ञान रुचि वेल विस्तारतां,
वारतां कर्मनुं जोर रे ।। चे ।। २६ ।।
राग विष दोष उतारतां,
जारतां द्वेष रस शेष रे;
पूर्व मुनि वचन संभारतां,
वारतां कर्म निःशेष रे ।। चे ।। २७ ।।
देखीये मार्ग शिवनगर नो,
जे उदासीन परिणाम रे;
तेह अणछोड़तां चालीये,
पामीये जिम परमधाम रे ।। चे ।।२८ ।।

श्री नयविजय गुरु शिष्यनी,
शिखडी अमृत वेलरे;
ऐह जे चतुर नर आदरे,
ते लहे सुजस रंगरेल रे ॥ चे ॥२९॥

सब समझ सके ऐसो सरल और संगीतमय भाषा में त्रिकालोचित आराधना का स्वरूप महा उपकारी महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी म० श्री ने इस स्वाध्याय में वर्णन किया है, जिसे आराधना करने वाली प्रत्येक आत्मा को कंठस्थ कर त्रिकाल पढ़ना चाहिये। प्रथम की चार गाथा में पीठिका कही, पीछे की चार गाथा में श्रीअरिहंतादिक चार का शरण स्वीकारने को फरमाया। उसके बाद सात गाथा में दुष्कृत की निंदा, पीछे की सात गाथा में सुकृत की अनुमोदना और आखीर की सात गाथा में शेष आराधना के स्वरूप का वर्णन किया है। इसमें वर्णित प्रत्येक शब्द प्रमादी आत्मा को जागृत करता है, तथा आराधक को जीवन किस प्रकार बिताना चाहिये उसका स्पष्ट वर्णन किया है। इसका अर्थ इतना सरल और स्पष्ट है कि सामान्य बुद्धिवाला भी उसे पढ़ने के साथ ही उसके भाव को समझ जाता है, फिर भी उसके भीतर के गम्भीर रहस्य को गुरुगम से विशेष प्रयत्न द्वारा समझने की आवश्यकता है,तोभी जब तक यह अवसर न मिले तब तक उसके पढ़ने मात्र से भी जैन शासन में बताई त्रिकाल आराधना, क्या चीज है ? उसका स्पष्ट खयाल आ जाता है, इसलिये इस पूरी सज्झाय को यहां स्थान दिया गया है। इस सज्झाय का

पठन और मनन परम लाभप्रद है, इसलिये बारंबार मनन पूर्वक पढ़ने और विचारने का आग्रह है।

नमस्कार महामंत्र का गीत

(४)

मंगलमय समरो नवकार, एछे चौद पूरवनो सार,
जेना महिमानो नहिं पार, भव जलधि थी तारणहार ॥१॥
अरिहंत शासनना शणगार, सिद्ध अनंता सुख देनार,
सूरि पाठक मुनि गुरु मनोहर, ए पांचे परमेष्ठी उदार ॥२॥
नवपद ए नवसेरो हार, हृदये धरतां उतरे पार,
अडसठ अक्षर तीरथ सार, संपद आठ सिद्धि दातार ॥ ३ ॥
सती शिरोमणि श्रीमती नार, मन शुद्धे गणती नवकार,
तेनुं दुःख हरवा तत्काल, फणीधर फीटी थई फूलमाल ॥४॥
मुनिए दीधो वन मोझार, भील भीलड़ी ने नवकार,
भावे जपतां पूरण आय, बे जण राजा-राणो थाय ॥ ५ ॥
समलीने मरतां नवकार, दइ मुनिए कीधो उपकार,
राजपुत्री थई कर्यो उदार, सुदर्शनाएं समली बिहार ॥ ६ ॥
कमठ काष्ठमां बलतो नाग, देखे पार्श्वकुंवर महाभाग
सेवक मुख दीधो नवकार, इंद्र थयो ते नागकुमार ॥ ७ ॥
अमर कुंवर जपतां नवकार, महाकष्ट थी थयो उद्धार,
राजा तेना प्रणमे पाय, नमस्कार महिमा फेलाय ॥ ८ ॥
पाप प्रणाशक श्रीनवकार, महामंगल छे श्रीनवकार
विघ्न विदारक श्रीनवकार, शिवसुखदायक श्रीनवकार ॥९॥
क्षण क्षण समरो श्रीनवकार, पल पल समरो श्रीनवकार,
घड़ी घड़ी समरो श्रीनवकार, अहोनिश समरो श्रीनवकार ॥१०।

ए नवकारनुं गीत रसाल, गातां सुणतां मंगल माल,
लब्धिसूरीश्वर केरो बाल, पद्म नमे कर जोड़ी भाल ॥११॥

धुन
(५)

१ जय अरिहंत जय भगवंत,
जय जय जय जय जय भगवंत,
२ जय वीतराग, जय वीतराग,
जय जय जय जय जय वीतराग,
३ जय महावीर जय महावीर,
जय बोलो जय जय महावीर,
पतित पावन जय महावीर,
जय बोलो जय जय महावीर,
४ अरिहंत भजो अरिहंत भजो,
अरिहंत थवा अरिहंत भजो,
भगवंत भजो भगवन्त भजो,
भगवंत थवा भगवंत भजो,
महावीर भजो महावीर भजो,
महावीर थवा महावीर भजो,
५ जय वीर जय वीर जय जय वीर,
भव भय भंजन, जय महावीर ।।जय वीर १
त्रिशलानंदन महाबल धीर,
पार उतारो भवजल तीर ॥जय वीर॥ २
शरणे आव्यो छुं महाराज;
बांह्य ग्रह्यानी राखो लाज ॥ जय वीर ॥ ३

तुं ठाकोर हुं तारो दास,
राखो तुम चरणो नी पास ।।जय वीर ।। ४

६ सिद्धगिरि स्वामी आदि जिणंद,
कापो हमारा भवना फंद,
देव हमारा श्री अरिहंत,
त्यागी हमारा गुरु गुणवंत,
श्री जिन भाषित हमारो धर्म,
जेह थी लहीये सुर शिव शर्म,
पहेलुं शरण हो श्री अरिहंत,
बीजुं शरण हो सिद्ध भगवंत,
त्रीजुं शरण हो गुरु गुणवंत,
चोथुं शरण हो धर्म जयवंत,

७ श्री वीर जय वीर जय जय वीर,
श्री वीर जय वीर जय जय वीर,
श्री वीर जय वीर जय जय वीर,
त्रिशला नंदन जय महावीर,

श्री अरिहंत भक्ति गर्भित नित्य मनन करने लायक भावना—दोहा

(६)

नित्य प्रभाते उठवुं, राखी मन उमंग;
धरवुं ध्यान परमेष्ठीनुं, करवुं निर्मल अंग । १।।
अग्नि केरा बल थकी, माखणनुं घी थाय;
अंतरवृत्ति ध्यान थी, परमातम प्रगटाय ।।२।।

अहंकार ने छोड़ीने, भजो अरिहंत सार;
राग-द्वेषनां त्याग थी, पामो मोक्षनुं द्वार ॥३॥
तुज विण इण संसारमां, शरणुं नहि कोईस्वाम;
तुज चरणो थी पामीये, अनंत सुखोनुं धाम ॥४॥
जगतारण जगवालहो, तुं जग जय जयकार;
जे तुज शरणे नित्य रहे, ते तरीया संसार ॥५॥
त्रण भुवनमां तुं वड़ो, तुम सम अवर न कोय;
इन्द्र चंद्र चक्री हरि, तुज पद सेवे सोय ॥६॥
हुं गरजी अरजी करूं, तूं छे दीनदयाल;
मुझ अधमने तारवा, कर कृपा किरपाल ॥७॥
धन धन श्री अरिहंत ने,जेणे ओलखाव्यो लोक;
ते प्रभुनी पूजा विना, जन्म गुमाव्यो फोक ॥८॥
द्रव्य माव थी अति घणो, हैडे हरख न माय;
इण बिध जिनवर पूजतां, शिव संपत सुख थाय ॥९।
श्रीजिनेश्वर पूजना, उत्कृष्टे परिणाम;
करतां कोई जीव पामीया, स्वर्ग मोक्षनां धाम ॥१०॥
समकितने अजुवालवा, उत्तम एह उपाय;
पूजाथी तमे प्रीछजो, मन वांछित सुख थाय ॥११॥
पूजा कुगतिनी अर्गला, पुण्य सरोवर पाल;
शिवगतिनी साहेलड़ी, आपे मंगल माल ॥१२॥
पूजा करतां प्राणीया, पोते पूजनीय थाय;
आभव परभव सुख घणां, तस तोले कोई न आय॥१३॥
भवदव दहनने वारवा, जलद घटा सम जेह;
जिन पूजा जुगते करो, पामीजे भव छेह ॥१४॥

आतम रूप निहालवा, जिन बिम्ब अनूप निदान;
आतम दरिशन आरिसो, प्रतिमा श्रीभगवान ॥१५॥
जिन प्रतिमा जिन सारीखी, भेद नहिं लवलेश;
दर्शन पूजा भक्ति थी, टाले भव भय क्लेश ॥१६॥
जिन प्रतिमा अवलंवने, तरिया जीव अनेक;
मोटे पुण्ये पामीयो, दर्शन शुद्ध विवेक ॥१७॥
जस घर जिन पूजा नहिं, नहिं सुपात्रे दान;
ते किम पामे वापड़ा, विद्या रूप निधान ॥१८॥
करो भक्ति अरिहंतनी, करो परमारथ काम;
करो सुकृत जग में सदा, रहो अविचल धाम ॥१९॥

साचो जैन

(७)

साचो जैन तो तेने कहिये, जे जीवदया ने जाणे रे;
निर्लोभी ने कपट रहित जे, राग रीश नवि राखे रे;
मन वचन काया ए निरमल, तृष्णा ने जे जीते रे ॥साचो॥१॥
हिंसा झूंठ ने चोरी छोड़े, परनारी नवि पेखे रे;
पर द्रव्य ने तृण सम माने, विषयासक्ति वारे रे ॥साचो॥२॥
समभावी ने आतमरामी, परनिन्दानो त्यागी रे;
मोह माया ने जीती जाणे, श्रद्धा हृदये धारे रे ॥साचो॥३॥
धैर्य अनुपम वाणी गंभीर, मान निवायुं जेणे रे;
अरिहंत प्रतिमा प्रेमे पूजे, धन धन आतम तेने रे ॥साचो॥४॥

(२)

मानव जैन तो तेने कहिये,जे आत्मसम जग जाणे रे;
परहित कारण प्राणने अर्पे, परसुखमां सुख माणे रे ॥१॥

सत्य दया शान्ति उर धारे, हिंसा दोषने टाले रे;
ब्रह्मचर्य संयम वैराग्ये, अंतरने अजुवाले रे ॥ २ ॥
विषय कषायने दूर निवारे, प्रभु भक्तिमाँ चित्त स्थापेरे;
तन मन धन जीवनना भोगे, परनां दुःखडां कापे रे ॥३॥
आशा तृष्णा ममता त्यागी, परधन हाथ न लेवे रे;
आतमज्ञान अंतरमां पामे, सकल तीरथने सेवेरे ॥४॥
महावीर मूर्तिने पगले चालो, धर्मदाझ दिल धारे रे;
आत्म स्वराज्य हृदये प्रगटावे, जय अरिहंत उच्चारे रे ॥५॥

●

स्मृतेन येन पापोऽपि, जन्तुः स्यान्नियतं सुरः ।
परमेष्ठिनमस्कार–मंत्रं तं स्मर मानसे ॥
—उतराध्ययन टीका

जिसके स्मरण मात्र से पापी प्राणी भी निश्चित रुप से देवगति को प्राप्त करता है, उस परमेष्ठी नमस्कार मन्त्र का आप मन में स्मरण-रटण करो ।

× ×

पारस जिस धातु को छूता है उसे सुवर्ण बनाता है, उसी तरह श्रीनवकार का मङ्गल जिसके अंतःकरण में है उसे पूर्ण मङ्गल रुप बनाता है, सिद्ध रुप बनाता है, स्व-स्वरुप बनाता है ।

चिरंतनाचार्यकृत महामांगलिक
श्री पंचसूत्र का
पहला
पाप प्रतिघात-गुणबीजाधान सूत्रम्*

महामन्त्र का जाप शुरु करने से पहले अपने अंतःकरण में भाव की जागृति के लिए इस पुस्तक में पहले जो सूचनाएँ दी गई है, उसमें **पंच सूत्र का पहला सूत्र प्रणिधान पूर्वक** पढ़ लेना ऐसा भी सूचित किया है। वह सूत्र अब यहां अर्थ सहित दिया जाता है। यह सूत्र कंठस्थ कर प्रणिधान पूर्वक दिन में तीन बार (तीन संध्या) इसका पाठ करने से आत्मा का सहज मल (कर्म के संबंध में आने की जीवकी मूलभूत योग्यता) दूर होता है और मोक्ष प्राप्ति की योग्यता दिन प्रति दिन अधिकाधिक बढ़ती है।

---

* इस सूत्र का जैसा नाम है वैसा ही गुण है। इसके नित्य स्मरण पठन-मनन से अनेक भवों के संचित पाप नाश होते हैं और ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों के बीजों का आत्मा में वपन होता है, जिसके कारण आत्मा अनादिकर्म मेल का नाश कर सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चरित्र का पात्र बन अजरामरपद को प्राप्त करता है। इसके विस्तृत वर्णन से एक बहुत बड़ी पुस्तक बन सकती है परन्तु यहां तो मात्र शब्दार्थ ही लिखा गया है।

णमो वीअरागाणं सव्वण्णूणं देविंदपूइआणं जहट्ठिअवत्थुवाईणं तेलुक्कगुरुणं अरुहंताणं भगवंताणं ।।

अर्थ—(प्रथम मंगलाचरण) श्रीवीतराग भगवान को नमस्कार हो (ऐसा कह उनकी विशिष्टता बताते हैं कि) वे सर्वदर्शी हैं, देवों और इंद्रों से भी पूजित हैं, (राग द्वेषादि रहित होने से) वस्तु तत्त्व के यथार्थ प्ररूपक हैं। तीनों लोक (स्वर्ग, मृत्यु और पाताल) के देव, दानव और मनुष्य आदि के वे गुरु हैं, संसार में पुनः जन्म नहीं लेनेवाले और (ऐश्वर्यादि भाग्यवंत होने से) भगवान हैं।

जे एवं आइक्खंति इह खलु अणाई जीवे, अणाई जीवस्स भवे, अणाइकम्मसंजोगनिव्वत्तिए, दुक्खरुवे दुक्खफले दुक्खाणुबंधे ।

अर्थ---वे ऐसा कहते हैं कि जीव अनादि है, उनका संसार (काम क्रोधादि और उसके फलस्वरूप जन्म मरणादि) अनादि है और इस संसार का कारण भूत कर्म-संयोग की परंपरा भी अनादि है। (अब यह संसार कैसा है? वे कहते हैं कि) यह संसार दुःख रूप है, (नये २ जन्म मरणादि होने से) उसका परिणाम भी दुःख है (एक जन्म दूसरा जन्म का कारण होने से) और वह दुःख की परंपरा रूप भी है।

एअस्स णं वुच्छित्ती सुद्धधम्माओ, सुद्धधम्मसंपत्ती पावकम्मविगमाओ पावकम्मविगमो तहाभव्वत्ताइ-भावाओ। तस्स पुण विवागसाहणाणि-चउसरणगमणं, दुक्कडगरिहा, सुकडाण(णा)सेवणं ।

अर्थ—इस संसार का विच्छेद शुद्ध धर्म से अर्थात् औचित्य, सत्कार, और विधि पूर्वक सम्यग्ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र गुणों के सतत् सेवन से होता है। ऐसे शुद्ध धर्म की प्राप्ति (सेवा) पाप कर्मों का विशिष्ट नाश (पुनः बंधन न हो इस प्रकार क्षयोपशम) होने से होती है। और पाप कर्मों का ऐसा विशिष्ठ नाश तथाभव्यत्व (आत्मा का उस उस प्रकार का भव्यत्व-स्वभाव) और आदि शब्द से काल नियति (भवितव्यता), कर्म (अशुभ कर्मों का ह्रास साथ ही पुण्य कर्मों का उपचय) तथा पुरुषार्थ, इन पांच कारणों के अनुकूल योग से होता है। ये तथा भव्यत्व आदि को पकाने (प्रगटाने–प्राप्त करने) के तीन साधन हैं। इनमें प्रथम साधन चार शरणों को स्वीकार, दूसरा साधन (इस भव परभव में किये हुए) दुष्कृत्यों की (भाव पूर्वक गुरु साक्षी से गर्हा) निन्दा और तीसरा साधन सुकृत्यों का सेवन (तथा अनुमोदना) करना।

अओ कायव्वमिणं होउकामेणं सया सुप्पणिहाणं,
भुज्जो भुज्जो संकिलेसे, तिकालमसंकिलेसे।

अर्थ— इसलिए दुःख से मुक्त होने के इच्छुक को इन उपायों का हमेशा सुप्रणिधान (निश्चयपूर्वक सेवन) करना चाहिये और राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि संक्लेश के अभाव में भी वह दिन में तीन बार तो अवश्य करना चाहिये।

अब चार शरणों के स्वीकार की विधि कहते हैं—

जावज्जीवं मे भगवंतो परमतिलोगनाहा, अणुत्तर-पुण्णसंभारा खीणरागदोसमोहा, अचिंत्तचिंतामणी, भवजलहिपोआ, एगंतसरणा, अरहंता सरणं।

अर्थ—ऐश्वर्यादि ऋद्धिवाले (भगवन्त), तीनों लोक के परम याने समर्थ नाथ (योग-क्षेम करनेवाले रक्षक), अनुत्तर (ऊँचे में ऊँचा तीर्थंकर नाम कर्म आदि) पुण्य के समूह वाले (निधान) राग, द्वेष और मोह जिसके निर्मूल क्षय हो गये हैं ऐसे, अचिंत्य (विना मांगे) सुख को देने के लिये चिंतामणि से भी अधिक, संसार समुद्र को पार करने में नाव समान और एकान्त शरण करने योग्य, अरिहंतों की मुझे जावज्जीव अर्थात् जीऊं (मुक्त न होऊं) तब तक शरण हो ! अरिहंत मुझे शरण दो ॥१॥

तहा पहीणजरामरणा, अवेअकम्मकलंका, पणट्ठ-वावाहा, केवलनाणदंसणा, सिद्धिपुरनिवासी, निरुवम-सुहसंगया, सव्वहा कयकिच्चा, सिद्धा सरणं।

अर्थ—तथा जिन्होंके जरा, मरण सर्वथा क्षीण हो गये हैं, कर्म रूपी कलंक से जो रहित है, सब प्रकार की व्याबाधा (पीडाओं-दुःखों) जिन्होंकी नाश हो चुकी है, सम्पूर्ण ज्ञान और दर्शन जिन्होंको प्राप्त हो गये हैं, सिद्धिपुर नाम के नगर में (मोक्ष में) रहते हैं, जगत के किसी सुख से उन्होंकी तुलना नहीं होती ऐसे अनुपम (निरुपाधिक) सुख को जिन्होंने प्राप्त कर लिया है और जो सर्वथा कृतकृत्य है। (जिन्हों का अब कोई कर्तव्य बाकी नही रहा है) उन सिद्धों की मुझे शरण हो ॥२॥

तहा पसंतगंभीरासया, सावज्जजोगविरया, पंच-

विहायारजाणगा, परोवयारनिरया, पउमाइनिदंसणा, झाणज्झयणसंगया, विसुज्झमाणभावा साहू सरणं ।

अर्थ—तथा प्रशांत और गम्भीर आशय (स्वभाव) वाले, सावद्य (पाप) व्यापार से निवृत हुए, पंच विध आचार को (ज्ञानाचारादि को) यथार्थ जाननेवाले, परोपकार करने में निरत, पद्म कमल वगैरह की उपमावाले, शुभ ध्यान और शास्त्राध्ययन में सतत उद्यमवाले और उत्तरोत्तर जिनके भाव विशुद्ध होते रहते हैं, उन साधुओं की मुझे शरण हो ! (३)

तहा सुरासुरमणुअपूइओ, मोहतिमिरंसुमाली, रागदोसविसपरममंतो. हेउ सयलकल्लाणाणं, कम्मवणविहावसु,साहगो सिद्धभावस्स, केवलिपण्णत्तो धम्मो जावज्जीवं मे भगवं सरणं।

अर्थ—तथा सुर, असुर और मनुष्य से पूजित, मोह रूपी अन्धकार को नाश करने में सूर्य समान, रागद्वेष रूप विष को नाश करने के लिये परम मन्त्र, सब प्रकार की कल्याण की साधना में हेतुभूत, कर्मरूपी वन को भस्म करने के लिये अग्नि तुल्य, आत्मा के सिद्ध भाव का साधक और भगवंत (पूज्य) ऐसे श्रीकेवलीभाषित धर्म की मुझे जावज्जीव शरण हो ! (४)

सरणमुवगओ अ एएसिं गरहामि दुक्कडं, जण्णं अरिहंतेसु वा, सिद्धेसु वा, आयरिएसु वा, उवज्झाएसु वा,

साहूसु वा, साहूणीसु वा, अन्नेसु वा धम्मट्ठाणेसु माणणिज्जेसु पूअणिज्जेसु, तहा माईसु वा, पिईसु वा, बंधूसु वा, मित्तेसु वा, उवयारीसु वा, ओहेण वा, जोवेसु मग्गट्ठिएसु अमग्गट्ठिएसु, मग्गसाहणेसु अमग्गसाहणेसु जं किंचि वितहमायरिअं अणायरिअव्वं अणिच्छिअव्वं पावं पावाणुबंधि, सुहुमं वा बायरं वा, मणेण वा वायाए वा काएण वा कयं वा कारावि अं वा अणुमोइअं वा, रागेण वा दोषेण वा मोहेण वा इत्थ वा जम्मे जम्मंतरेसु वा गरहिअव्वमेअं, दुक्कडमेअं, उज्झिअव्वमेअं, विआणिअं मए कल्लाणमित्तगुरुभगवंतवयणाओ, एवमेअं ति रोइअं सद्धाए, अरहंत-सिद्धसमक्खं गरिहामि अहमिणं, दुक्कडमेअं, उज्झिअव्वमेअं, इत्थ मिच्छामि दुक्कडं, मिच्छामि दुक्कडं, मिच्छामि दुक्कडं ।

अर्थ—इन चारों शरणों को प्राप्त कर मैं अब गुरु साक्षी से दुष्कृत की गर्हा करता हूँ, वह इस प्रकार—जो अरिहंतों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों, साधुओं तथा साध्वियों के प्रति, दूसरे भी अन्य माननीय, पूजनीय (साधर्मिकादि), धर्म स्थानों, तथा माता, पिता, बंधु वर्ग, मित्रों, या उपकारियों के प्रति, अथवा सामान्यतया सम्यग्दर्शनादि मोक्ष मार्ग को प्राप्त हुए या मिथ्यात्वादि उन्मार्ग के वश हुए सब जीवों के प्रति, तथा मोक्षमार्ग रूप ज्ञान, दर्शन चारित्र में उपकारक (साधन भूत) पुस्तकादि, जिनमूर्ति, मंदिरादि और रजोहरणादि के प्रति तथा मोक्षमार्ग के असाधनभूत वस्तुओं के प्रति मैंने नहीं आचरणे योग्य,

नहीं इच्छने योग्य, पापस्वरूप और परंपराओं से पाप का बंध करानेवाले, ऐसे जो कई मिथ्या आचरण, सूक्ष्म या बादर (अल्प या ज्यादा) मन से, वचन से या काया से स्वयं किये हों, दूसरों के पास से कराये हो, या दूसरों से किया गया अच्छा माना (अनुमोदना की) हो, वे भी राग से, द्वेष से, या मोह से, वे भी इस जन्म में या अन्य जन्मों में, वे सब मेरे पाप गुरु समक्ष गर्हनीय है। वे दुष्कृत्य (दुष्कार्य) हैं और अधर्म-रूप होने से त्याग करने योग्य हैं। इस बात को कल्याण मित्र ऐसा गुरु भगवंतों के वचनों से मैंने जाना है और वह सत्य है, उसको मैंने श्रद्धा पूर्वक रुचा है। इसलिये उन अरिहंतों व सिद्धों के समक्ष मैं उनकी गर्हा करता हूँ, ये दुष्कृत्य हैं, छोड़ने योग्य हैं, ऐसा मैंने समझा है इसलिये ये सब मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हो। मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हो !! मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हो !!!

होउ मे एसा सम्मं गरिहा होउ मे अकरणनियमो।

यह मेरी दुष्कृत की गर्हा सम्यग् भावपूर्वक हो ! भविष्य में ऐसा दुष्कृत नहीं करूं, ऐसा मेरा नियम हो, अर्थात् मैं यह नियम लेता हूँ।

बहुमयं ममेअं ति इच्छामि अणुसट्ठिं अरहंताणं भगवंताणं, गुरुणं कल्लाणमित्ताणं ति।

मुझे यह वचन बहुमान करने योग्य है, मान्य है, इसलिये श्रीअरिहंत भगवान की और उनके वचनों का प्रचार करने वाले कल्याण मित्र श्री गुरुओं की ऐसी हित शिक्षा की मैं (बारंबार) इच्छा करता हूँ।

होउ मे एहिंह संजोगो, होउ मे एसा सुपत्थणा होउ मे इत्थ बहुमाणो, होउ मे इओ मुक्खवीअं ति।

ऐसे देव गुरु के साथ मेरा संयोग हो ! मेरी यह प्रार्थना सफल हो ! इस प्रार्थना में मुझे बहुमान हो ! मैं चाहता हूँ कि इनके प्रभाव से मेरी आत्मा में मोक्ष के बीज का बीजारोपण हो और उसके फल स्वरूप मुझे मोक्ष की प्राप्ति हो।

पत्तोसु एएसु अहं सेवारिहे सिआ, आणारिहे सिआ, पडिवत्तिजुते सिआ, निरइआरपारगे सिआ।

इन श्रीअरिहंत भगवान और कल्याण मित्र (हितैषी) गुरुओं का सम्पर्क मिलते ही मैं उन्हों की सेवा करने योग्य बनूँ। उनकी आज्ञा पालन के लायक होऊँ, उन्हों की आज्ञापालन में मेरा उद्धार है ऐसी दृढ़प्रतिपत्तिवाला मैं उन्हों की आज्ञा का भक्ति बहुमान पूर्वक स्वीकार करने वाला (गुरुओं को समर्पित भाव वाला)होऊँ और निरतिचार से उन्हों की आज्ञा का सम्पूर्ण पालन करनेवाला बनूं।

ऐसी दुष्कृत गर्हा तथा उसके साथ साथ प्रासंगिक मनोरथ कर अब सुकृत सेवन करने को कहते हैं—

संविग्गो जहासत्तीए सेवेमि सुकडं अणुमोएमि सव्वेसिं अरहंताणं, अणुट्ठाणं, सव्वेसिं सिद्धाणं सिद्धभावं, सव्वेसिं आयरियाणं आयारं, सव्वेसिं उवज्झायाणं सुत्तप्पयाणं, सव्वेसिं साहूणं साहुकिरिअं, सव्वेसिं

सावगाणं मुक्खसाहणजोगे । सव्वेसिं देवाणं सव्वेसिं जीवाणं होउकामाणं कल्लाणासयाणं मग्गसाहणजोगे ।

संविग्न यानि मोक्ष और मोक्ष मार्ग का पक्षकार अब इस प्रकार यथाशक्ति सुकृत की सेवा रूप अनुमोदना करता हूँ। सब अरिहंतों का घोर तप, जप और परिषह-उपसर्ग सहने आदि सब अनुष्ठानों की अनुमोदना करता हूँ, इसी तरह सर्व सिद्धों के सिद्ध हुए केवलज्ञानादि भावों की सब आचार्यों के पंचाचार के पालन रूप सदाचारों की, सब उपाध्यायों के सूत्र (ज्ञान) दान की, सर्व साधुओं की (और साध्वियों की) वह वह साधु क्रिया की, सब श्रावकों के (और श्राविकाओं की) वह वह मन, वचन, काया से हुई मोक्ष करणी की, तथा सब देवों तथा सर्व जीव जो मोक्ष के लिये योग्य (चरमावर्ती) है और जिस कारण विशुद्ध आशयवाले हैं, उनके मोक्ष मार्ग के साधक ज्ञान, दर्शन, चारित्र के अनुकूल ऐसे सब योगों की मैं अनुमोदना करता हूँ।

होउ मे एसा अणुमोअणा सम्मं विहिपुव्विआ, सम्मं सुद्धासया, सम्मं पडिवत्तिरूवा, सम्मं निरइआरा, परमगुणजुत्तअरहंताइसामत्थओ ।

परमगुणनिधान श्रीअरिहंतों, श्री सिद्धों, साधुओं और श्री तीर्थंकर कथित धर्म, इन चारों के शरण के सामर्थ्य से यह मेरी अनुमोदना सम्यग् विधि पूर्वक उत्तम-निर्मल आशयवाली, सम्यग् स्वीकारवाली (जीवन में वे गुण ओत-प्रोत हों) और निरतिचार (दोष रहित) हो !

अचिंतसत्तिजुत्ता हि ते भगवंतो वीअरागा सव्वण्णू परमकल्लाणा परमकल्लाणहेऊ सत्ताणं ।

यह दुष्कृत्य की निन्दा और सुकृत्य की अनुमोदना वास्तव में मैं उन अरिहंतों आदि के प्रभाव से ही कर सका हूँ क्योंकि वे अरिहंत वगैरह पंचपरमेष्ठी भगवान अचिंत्य शक्तिवाले हैं, वीतराग हैं* सर्वज्ञ है, परम कल्याण स्वरूप हैं और जीवों को परम कल्याण की साधना में हेतु (पुष्ट आलंबन) रूप हैं ।

मूढे अम्हि, पावे, अणाइमोहवासिए, अणभिन्ने भावाओ, हिआहिआणं अभिन्ने सिआ, अहिअनिवित्तो सिआ, हिअपवित्तो सिआ, आराहगे सिआ, उचिअपडिवत्तीए सव्वसत्ताणं सहिअं त्ति । इच्छामि सुकडं, इच्छामि सुकडं, इच्छामि सुकडं ॥

उन अरिहंत आदि परम उपकारियों को मेरे हृदय में स्थापित करने के लिये (भाव से उनकी शरण लेने के लिये) मैं मूढ़ अयोग्य हूँ क्योंकि मैं पापी हूँ, अनादि मोह से घिरा हुआ हूँ, हे भगवान ! मेरी आत्मा के सब प्रदेश राग, द्वेष, अज्ञान और मूढ़ता से वासित हैं, जिससे अनभिज्ञ (अज्ञानी) ऐसा मैं हिताहित को नहीं जानता, आपकी अचिंत्य महिमा से मैं हिताहित को समझनेवाला होऊं, अहित से निवृत्त होऊँ, हित मार्ग में प्रवृत्त होऊँ और (मोक्ष, उसके देनेवाले तीर्थंकरों, उन्हें समझानेवाले श्री सद्गुरु और मोक्ष साधक ज्ञान दर्शन

* भाव नय से आचार्य, उपाध्याय और साधु भी वीतराग और सर्वज्ञ आदि है। सर्वज्ञ हैं।

चारित्र रूप धर्म, इन सब का) आराधक होऊँ। और सब जीवों के साथ औचित्यपूर्ण आचरण करने में मेरा हित है, इस प्रकार सुकृत्य की इच्छा करता हूँ! सुकृत्य की इच्छा करता हूँ!! सुकृत्य की में इच्छा करता हूँ!!!

एवमेअं सम्मं पढ़माणस्स सुणमाणस्स अणुप्पेह-माणस्स सिढिलीभवंति परिहायंति खिज्जंति असुह-कम्माणुबंधा, निरणुबंधे च असुहकम्मे भग्गसामत्थे सुहपरिणामेणं कडगबद्धे विअ विसे अप्पफले सिआ, सुहावणिज्जे सिआ, अपुणभावे सिआ।

इस प्रकार चार शरण, दुष्कृत्य की निंदा और सुकृत्य की अनुमोदना को जो बारम्बार सम्यग् पढ़ता है, सुनता है और सूत्र के साथ अर्थ का पुनः पुनः चिंतन करने रूप अनुप्रेक्षा करता है, उसके अशुभ कर्मों के बंध किये रस अथवा अनुबंध अर्थात् अशुभ कर्म बंध की परम्परा मंद होती है, उन २ कर्मों की स्थिती, रस और दलिको कम होते हैं। और उनका निर्मूल नाश भी हो जोता हैं। इतना ही,नहीं, अपितु इस सूत्र के पाठ से, सुनने से और अनुप्रेक्षा से आत्मा में प्रगट हुए शुभ परिणाम के बल से जैसे कटकबद्ध (सर्प वगैरह के डंक पर कपड़ा अथवा डोरी आदि से कस कर बांधने से) विष निर्बल-निष्फल हो जाता है,वैसे अशुभ कर्म भी निरनुबन्ध (उसके उदय से नये अशुभ कर्म बंधन कराने में असमर्थ) हो जाते हैं। उदय में आये होने पर भी आत्मा को मोह आदि से वश करने में असमर्थ हो जाते हैं, अल्प मात्र विपाकवाला होकर सुख पूर्वक निर्जरी सके अर्थात् नष्ट हो सके वैसे और पुनः ऐसे कर्म का बंध न हो वैसा बन जाता है।

तहा आसगलिज्जंति परिपोसिज्जंति निम्मविज्जंति सुहकम्माणुबंधा । साणुबंधं च सुहकम्मं पगिट्ठं पगिट्ठभावज्जिअं नियमफलयं सुपउते विअ महागए सुहफले सिआ, सुहपवत्तगे सिआ, परमसुहसाहगे सिआ ।

उपरान्त इस सूत्र के पाठ से, सुनने से और अनुप्रेक्षा से जैसे उत्तम औषधि का विधि और परहेज पूर्वक प्रयोग करने से आरोग्य लाभ होता है वैसे आत्मा को शुभ कर्मो का बंध हो वैसे भाव प्रगट होते हैं, इससे शुभ (पुण्यानुबंधी पुण्य) कर्मो का बंध होता, है, शुभ कर्मों की परम्परा पुष्ट होती है और इससे उत्कृष्ट भाववाले शुभ कर्मों का बंध होता है । और इस तरह प्रगट हुए शुभ कर्मो का अनुबंध (परम्परा) पुष्ट होने से शुभ भाव भो पुष्ट होते है, यह शुभ कर्मानुबंध निश्चित रूप से शुभ फल का (आत्मा के ज्ञानादि गुणों को) प्रगट करता है, इससे आत्मा संसार में भी विशिष्ट सुखों का भोगी बनकर परम्परा से मोक्ष सुख को प्राप्त करता है ।

अओ अपडिबंधमेअं असुहभावनिरोहेणं सुहभावबीअं ति सुप्पणिहाणं सम्मं पढिअव्वं, सम्मं सोअव्वं, सम्मं अणुपेहिअव्वं ति ।

इस कारण किसी तरह के प्रतिबंध (रुकावट) सिवाय हमेशा अशुभ भावों को (मन, वचन, काया की अकुशल प्रवृतियों को) रोक कर (अर्थात् शुभ भाव पूर्वक), यह

सूत्र शुभ भावनाओं का (मोक्ष का) बीज होने से उसे उत्तम प्रणिधान (एकाग्रता और कर्तव्य का निश्चय) पूर्वक सम्यग् शांत चित्त से पढ़ना चाहिये, सम्यग् अनुप्रेक्षा (पदार्थ विचारणा) करनी चाहिये।

णमो णमिअणमिआणं, परमगुरुवीअरागाणं, णमो सेसणमुक्कारारिहाणं, जयउ सव्वण्णुसासणं, परमसंबोहिए सुहिणो भवंतु जीवा, सुहिणो भवंतु जीवा, सुहिणो भवंतु जीवा ॥

अब उपसंहार के साथ अंतिम मंगल करते हुए कहते हैं—

देव और दानव जिन्हें नमस्कार करते हैं, इन्द्रों और गणधरों आदि ने भी जिन्हें नमस्कार किया है, उन परमगुरु श्रीवीतराग भगवंतों को मेरा नमस्कार हो, अन्य भी नमस्कार के योग्य सिद्धों, आचार्यों आदि तथा ज्ञानादिगुण विशिष्ट गुणवानों को भी मेरा नमस्कार हो, श्री सर्वज्ञ का परमोपकारी शासन जयवंता हो और वर बोधि लाभ से सर्व जीवों सुखी हो ! सर्व जोवों सुखी हो ! ! सर्व जीवों सुखी हो ! ! !

बड़ी शान्ति

महामंत्र नवकार की साधना करनेवाले सारे विश्व की शांति की उदात्त भावना किस तरह क्रमशः भावनी चाहिये, उसका सुन्दर उल्लेख बृहत् शान्ति स्तोत्र में है। यदि हो सके तो त्रिकाल और ऐसा न हो सके तो दो वक्त अथवा कम से कम दिन में एक बार तो नियमित पाठ करना यह महामंत्र के साधक के लिये जरूरी है। इससे पंच परमेष्ठियों के साथ जाप में मन की एकाग्रता बहुत सरलता पूर्वक हो सकती है।

सारे विश्व की शान्ति की तीव्र कामना परमेष्ठिओं में पराकाष्ठा को पहुँची हुई होती है। परमेष्ठिओं के इस सदाशय की अनुमोदना पूर्वक स्थिर बुद्धि से इस शांति पाठ को बोलने से परमेष्ठिओं के प्रति हार्दिक भाव-भक्ति जागृत होती है। अन्त में दिन प्रतिदिन परमेष्ठियों के साथ अंतरंग एकता बढ़ती जाती है।

यहां प्रथम बृहत् शान्ति मूल पाठ में और पीछे उसका सरल अर्थ दिया गया है।

बृहच्छांन्तिः ।

(१) मंगलाचरणम्

(मन्दाक्रान्ता)

(१) मूलपाठ

भो भो भव्याः ! शृणुत वचनं प्रस्तुतं सर्वमेतद्,
ये यात्रायां त्रिभुवनगुरोरार्हता भक्तिभाजः ।
तेषां शान्तिर्भवतु भवतामर्हदादि-प्रभावा-
दारोग्यश्री-धृति-मति-करी क्लेश–विध्वंसहेतुः ॥१॥

(२. पीठिका)

भो भो भव्यलोका ! इह हि भरतैरावत–विदेह-सम्भवानां-समस्त-तीर्थकृतां जन्मन्यासन–प्रकम्पानन्तर-मवधिना विज्ञाय, सौधर्माधिपतिः, सुघोषा–घण्टा–चालनानन्तरं, सकलसुरासुरेन्द्रैः सह समागत्य, सविनय-मर्हद्भट्टारकं गृहीत्वा, गत्वाकनकाद्रि–शृङ्गे, विहित–जन्माभिषेकः शान्तिमुद्घोषयति यथा, ततोऽहं कृता-नुकारमिति कृत्वा "महाजनो येन गतः स पन्थाः" इति भव्यजनैः सह समेत्य, स्नात्र पीठे स्नात्रं विधाय शान्ति मुद्घोषयामि, तत्पूजा–यात्रा–स्नात्रादि–महोत्सवा-

नन्तरमिति कृत्वा कर्णं दत्वा निशम्यतां निशम्यतां स्वाहा ॥ २ ॥

(३. शांतिपाठः)

(१) ॐ पुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्तां प्रीयन्तां, भगवन्तोऽर्हन्तः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनस्त्रिलोकनाथास्त्रिलोकमहितास्त्रिलोकपूज्यास्त्रिलोकेश्वरास्त्रिलोकोद्योतकराः॥ (३)॥

ॐ ऋषभ–अजित–सम्भव–अभिनन्दन–सुमति–पद्मप्रभ-सुपार्श्व-चन्द्रप्रभ-सुविधि-शीतल–श्रेयांस-वासु–पूज्य-विमल-अनन्त–धर्म-शान्ति–कुन्थु–अर–मल्लि-मुनिसुव्रत-नमि-नेमि-पार्श्व-वर्द्धमानान्ता जिनाः शान्ताः शान्तिकरा भवन्तु स्वाहा ॥ ४ ॥

(२) ॐ मुनयो मुनिप्रवरा रिपुविजय-दुर्भिक्ष-कान्तारेषु दुर्गमार्गेषु रक्षन्तु वो नित्यं स्वाहा ॥ ५ ॥

(३) ॐ श्री-ह्री-धृति-मति-कीर्ति-कान्ति-बुद्धि-लक्ष्मी–मेधा-विद्या-साधन-प्रवेश-निवेशनेषु सुगृहीतनामानो जयन्तु ते जिनेन्द्राः ॥६॥

(४) ॐ रोहिणी-प्रज्ञप्ति-वज्रशृङ्खला-वज्राङ्कुशी-अप्रतिचक्रा-पुरुषदत्ता-काली महाकाली-गौरी गान्धारी-सर्वास्त्रामहाज्वाला – मानवी – वैरोट्या–अच्छुप्ता-मानसी-महा-मानसी षोडश विद्यादेव्यो रक्षन्तु वो नित्यं स्वाहा ॥ ७ ॥

(५) ॐ आचार्योपाध्याय-प्रभृति-चातुर्वर्णस्य श्रीश्रमण-सङ्घस्य शान्तिर्भवतु तुष्टिर्भवतु पुष्टिर्भवतु ॥ ८ ॥

(६) ॐ ग्रहाश्चन्द्र-सूर्याङ्गारक-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनैश्चर-राहु-केतु-सहिताः सलोकपालाः सोम-यम-वरुण-कुबेर-वासवादित्य-स्कन्द – विनायकोपेता ये चान्येऽपि ग्राम-नगर क्षेत्र-देवता-ऽऽदयस्ते सर्वे प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् अक्षीण-कोश-कोष्ठागारा नरपतयश्च भवन्तु स्वाहा ॥ ९ ॥

(७) ॐ पुत्र-मित्र-भ्रातृ-कलत्र-सुहृत्-स्वजन-सम्बन्धि बन्धुवर्गसहिता नित्यं चामोद-प्रमोद-कारिणः ॥१०॥

(८) अस्मिंश्च भमण्डले, आयतन-निवासी-साधु-साध्वी-श्रावक श्राविकाणां रोगोपसर्ग-व्याधि-दुःख दुर्भिक्षदौर्मनस्योपशमनाय शान्तिर्भवतु ॥११॥

(९) ॐ तुष्टि-पुष्टि-ऋद्धि-वृद्धि-माङ्गल्योत्सवाः सदा, प्रादुर्भूतानि पापानि शाम्यन्तु दुरितानि । शत्रवः पराङ्मुखा भवन्तु स्वाहा ॥१२॥

(४. श्री शान्तिनाथ–स्तुतिः) (अनुष्टुप्)

श्रीमते शान्तिनाथाय, नमः शान्ति-विधायिने ।
त्रैलोक्यस्यामराधीश–मुकुटाभ्यर्चिताङ्घ्रये (१) ॥१३॥
शान्तिः शान्तिकरः श्रीमान्, शान्ति दिशतु मे गुरुः ।
शान्तिरेव सदा तेषां, येषां शान्तिर्गृहे गृहे (२) ॥१४॥

(गाथा)

उन्मृष्ट-रिष्ट-दुष्ट-ग्रह-गति-दुःस्वप्न-दुर्निमित्तादि ।
सम्पादित-हित-सम्पन्नाम-ग्रहणं जयति शान्तेः (३)।१५।

(५. शान्ति-व्याहरणम्) (गाथा)

श्रीसङ्घजगज्जनपद-राजाधिप-राज-सन्निवेशानाम् ।
गोष्ठिक-पुरमुख्याणां, व्याहरणैर्व्याहरेच्छान्तिम् (१)
॥१६॥

श्री—श्रमणसङ्घस्य शान्तिर्भवतु ।
श्री—जनपदानां शान्तिर्भवतु ।
श्री—राजाधिपानां शान्तिर्भवतु ।
श्री—राजसन्निवेशानां शान्तिर्भवतु ।
श्री—गोष्ठिकानां शान्तिर्भवतु ।
श्री—पौरमुख्यानां शान्तिर्भवतु ।
श्री—पौरजनस्य शान्तिर्भवतु ।
श्री—ब्रह्मलोकस्य शान्तिर्भवतु ।

(६. आहुति त्रयम्)

ॐ स्वाहा ॐ स्वाहा ॐ श्री—पार्श्वनाथाय स्वाहा॥१८॥

(८. विधिपाठः)

एषा शान्तिः प्रतिष्ठा-यात्रा-स्नात्राद्यवसानेषु शान्तिकलशं गृहीत्वा कुङ्कुम-चन्दन-कर्पूरागर-धूप-वास-कुसुमाञ्जलिसमेतः स्नात्र-चतुष्किकायां श्रीसङ्घ-समेतः शुचि-शुचि-वपुः पुष्प-वस्त्र-चन्दनाभरणालङ्-

कृतः पुष्पमालां कण्ठे कृत्वा, शान्ति-मुद्घोषयित्वा, शान्तिपानीयं मस्तके दातव्यमिति ॥१९॥

[प्रस्ताविक-पद्यानि] (उपजाति)

नृत्यन्ति नित्यं मणि-पुष्प-वर्षं,
सृजन्ति गायन्ति च मङ्गलानि ।
स्तोत्राणि गोत्राणि पठन्ति मन्त्रान्
कल्याणभाजो हि जिनाभिषेके (१) ॥२०॥

[गाथा]

शिवमस्तु सर्वजगतः, पर-हित-निरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः (२)॥२१॥

अहं तित्थयर-माया, सिवादेवी तुम्ह नयर-निवासिनी ।
अम्ह सिवं तुम्ह सिवं, असिवोवसमं सिवं भवतु स्वाहा (३) ॥२२॥

[अनुष्टुप्]

उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्न-वल्लयः ।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे (४) ॥२३॥

सर्व-मङ्गल-माङ्गल्यं, सर्व-कल्याण-कारणम् ।
प्रधानं सर्व-धर्माणां, जैनं जयति शासनम् (५) ॥२४॥

बड़ी शान्ति का शब्दार्थ

अर्हंतों में शान्ति हो

हे भव्य जनो ! प्रसंग को अनुसरती यह सब मेरी बात सुनो ! अरिहंत प्रभु के भक्त तीन भुवन के स्वामी श्री तीर्थंकर परमात्माओं की यात्रा में जो भक्तिवंत हैं, उन सब को अरिहंत परमात्मा आदि के प्रभाव से आरोग्य, सपत्ति चित्त की स्वस्थता और बुद्धि को देनेवाली तथा सब क्लेश पोड़ा का नाश करने में कारण भूत ऐसी शान्ति प्राप्त हो ।१।।

शान्ति की उद्घोषणा सुनो

हे भव्य लोको ! यहीं भरतक्षेत्र, ऐरवतक्षेत्र और महाविदेहक्षेत्र में जन्म लेनेवाले सब तीर्थंकर परमात्मओं के जन्म समय, अपना आसन कम्पायमान होने के बाद अवधि ज्ञान से तीर्थंकर का जन्म हुआ है ऐसा जानकर सुघोषा नाम की दिव्य घंटा बजाने के बाद, सौधर्म देवलोक के इन्द्र सब देवेंद्र और भुवनपति आदि इन्द्रों के साथ आकर विनय पूर्वक पूज्य अरिहंत परमात्मा को हाथ में लेकर मेरू पर्वत के शिखर पर जाकर वहाँ प्रभु का जन्माभिषोक स्नात्र महोत्सव समाप्त करने के बाद जिस प्रकार शान्ति की उद्घोषणा करते हैं, उस प्रकार मैं भी "किए हुए का अनुकरण करना चाहिये" और "महापुरुष जिस रास्ते जावें, उसी रास्ते

जाना चाहिये" ऐसा विचार कर भव्य लोकों के साथ आकर स्नात्र पीठ पर स्नात्र कर शान्ति की उद्घोषणा करता हूँ इसलिये आप सब पूजा महोत्सव, रथयात्रा महोत्सव और स्नात्र महोत्सव पूर्ण होने के बाद ध्यान पूर्वक एकाग्रता से कान देकर सुनो ! सुनो !! स्वाहा ।

शान्ति की उद्घोषणा का प्रारम्भ

(१) ॐ पुण्याहं पुण्याहं आज का दिवस पवित्र है ! आज का दिवस पवित्र है !! सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अरिहंत भगवान तीनों लोक के नाथ हैं, तीनों लोक में पूजित हैं, तीनों लोक के पूज्य हैं, तीनों लोकके स्वामी हैं और तीनों लोक को प्रकाशमान करनेवाले हैं । ऐसे श्रीअरिहंत भगवान प्रसन्न हो ! प्रसन्न हो !!

शान्ति के भण्डार चौवीस तीर्थंकर परमात्मा

ॐ ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभस्वामि, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभस्वामि, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्यस्वामि, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतस्वामि, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और श्री वर्धमान स्वामि तक के शांत ऐसे तीर्थंकर भगवंतों शान्ति करनेवाले हो ! स्वाहा ।

सदा के रक्षकमुनि महात्माओं

ॐ रिपु से हुई पराजय में, दुष्काल से, भयंकर अरण्यों में और विकट रास्तों में मुनियों में अग्रेसर मुनि महात्माओं हमेशा तुम्हारी रक्षा करे ! स्वाहा ।

परमात्माओं के नाम से कार्य सिद्धि

(३) ॐ श्री, ह्री, धृति, मति, कीर्ति, कांति, बुद्धि, लक्ष्मी, मेधा और विद्या के साधनों में—शास्त्रज्ञान प्राप्त करने के साधनों में, प्रवेश करने में तथा उसमें पूरे होने पर उसमें से उत्तीर्ण होकर निकलने में अच्छी तरह नाम स्मरण किये गये उन जिनेश्वर भगवन्तों की विजय हो (परमात्मा का नाम लेकर काम करने से वे काम सफल होते हैं)

सोलह विद्या देवियों की तरफ से रक्षण

(४) ॐ रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रश्रृंखला, वज्रांकुशी, अप्रतिचक्रा, पुरुषदत्ता, काली, महाकाली, गौरी, गांधारी, सर्वास्त्रा, महाज्वाला, मानवी, वैरोट्या, अछुप्ता, मानसी, महामानसी, सोलह विद्या देवियां हमेशा तुम्हारा रक्षण करे ! 'स्वाहा' !

श्री संघ में शांति तुष्टि पुष्टि हो

(५) ॐ आचार्य भगवतों, उपाध्याय भगवतों आदि श्रमण महात्माओं की प्रधानतावाले श्रीचतुर्विध संघ में शांति हो, तुष्टि हो, पुष्टि हो ।

विविध प्रकार के देवों की प्रसन्नता

(६) ॐ चन्द्र, सूर्य, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु सहित ग्रहों, लोकपालों जैसे सोम, यम, वरुण, कुबेर वासव, आदित्य, स्कन्द, और विनायक वगैरह देवों तथा दूसरे भी ग्रामदेवता, नगर देवता, क्षेत्र देवता-ये सब प्रसन्न हो ! प्रसन्न हो !! और राजा भरपूर भण्डार और कोठारवाले हो । स्वाहा ।

कुटुम्बों में आनन्द प्रमोद

(७) ॐ पुत्र, मित्र, भाई, पत्नी, सुहृद, अपने कुटुम्बी-गण, सगे सम्बन्धो और बन्धु वर्ग सहित आनन्द प्रमोद करने वाले हो।

(८) और इस पृथ्वी मण्डल के धर्म स्थानों में रहे हुए साधु साध्वियों, श्रावक और श्राविकाओं के रोग, कठिनाइयां, व्याधियां दुःख, दुष्काल और दौर्मनस्य की उपशमन द्वारा शान्ति हो।

(९) ॐ तुमको सदा तुष्टि हो, पुष्टि हो ऋद्धि मिले वृद्धि हो, और मांगलिक उत्सव निरंतर हो। उत्पन्न हुए पाप और कष्ट शान्त हो। शत्रु विमुख हो। स्वाहा।

शान्ति करनेवाले श्री शान्तिनाथ प्रभु का स्मरण

तीन लोक के प्राणियों को शान्त करनेवाले और देवेन्द्रों के मुकुटों द्वारा पूजित चरणोंवाले श्रीशान्तिनाथ प्रभु को नमस्कार हो। (१)

जगत में शान्ति करनेवाले, जगत को धर्म का उपदेश देनेवाले, श्रीशान्तिनाथ भगवान मुझे शान्ति दो। जिस २ घर में शांतिनाथ प्रभु पूजे जाते हैं वहां २ सदा शान्ति ही रहती है। (२)

उपद्रवों, ग्रहों की दुष्टगति, दुःस्वप्न, दुष्ट निमित्तादि का नाश करनेवाले तथा आत्महित और संपत्ति को प्राप्त करानेवाले श्रीशान्तिनाथ भगवान के नामोच्चारण की जय होती हैं। (३)

अलग २ नामोच्चार पूर्वक शान्ति का उच्चार

श्री संघ, जगत के जनपद, महाराजा, राजाओं के निवास स्थान, विद्वद् मण्डली के सभ्यों तथा अग्रगण्य नागरिकों के नाम लेकर शान्ति बोलनी चाहिये जैसे कि—

श्री श्रमण संघ में शान्ति हो ।
श्री जनपदों (देशों) में शान्ति हो ।
श्री राजाधिपों (महाराजाओं) को शान्ति हो ।
श्री राजाओं के निवास स्थान में शान्ति हो ।
श्री गोष्ठिको–विद्वद् मंडली के सभ्यों को शान्ति हो ।
श्री अग्रगण्य नागरिकों को शान्ति हो ।
श्री नगर जनों को शान्ति हों ।
श्री ब्रह्म (समस्त जीव लोक) लोक में शांति हो ।

तीन आहुतियां

ॐ स्वाहा, ॐ स्वाहा, ॐ श्री पार्श्वनाथाय स्वाहा !

शांति की उद्घोषणा कब ? और कौन करे ?

यह शांतिपाठ जिनबिंब की प्रतिष्ठा, रथयात्रा और स्नात्र वगैरह महोत्सवों के अन्त में बोलना (उसकी विधि यह है कि कोई गुणवान श्रावक) केसर-चन्दन, कपूर और अगर का धूप, वास–चूर्ण और अञ्जलि में विविध रंगों के पुष्प रख शांतिकलश लेकर श्रीसंघ के साथ स्नात्रमंडप में खड़ा रहे । वह अत्यन्त पवित्र शरीरवाला होना चाहिये तथा श्वेत वस्त्र, चंदन और आभूषणों से अलंकृत होना चाहिये । वह गले में पुष्पमाला पहिन कर शांति की उद्घोषणा करे

और उद्घोषणा करने के बाद शांतिकलश का पानी उसे सिर पर लगाना चाहिये और दूसरों को भी अपने मस्तक पर लगाना चाहिये ।

अभिषेक के समय जिनेश्वर के भक्तों की भक्ति के प्रकार

भाग्यशाली जीव श्रीजिनेश्वर प्रभु के स्नात्र अभिषेक के वक्त रत्नों और पुष्पों की वृष्टि करते हुए नाचते हैं। अष्ट मंगलादि का आलेखन करते हैं, मांगलिक स्तोत्र गाते हैं और गोत्र (नाम) तथा मंत्र बोलते हैं ।१।

मंगल भावना

अखिल विश्व का कल्याण हो, सर्व प्राणी गण दूसरों का हित करने की भावना वाले हो, सब के सब दोष नाश हो, और सर्वत्र सब लोक सुखी हो ॥२॥

मैं तीर्थंकर की माता शिवादेवी तुम्हारे नगर में रहती हूँ, हमारा और तुम्हारा अर्थात् सबका भला हो, तथा उपद्रवों का नाश होकर कल्याण हो ।३।

श्रीजिनेश्वर प्रभु की पूजा करने से सब प्रकार के कष्ट नाश होते हैं, विघ्न रूपी बेलें छिद जाती हैं और मन प्रसन्न होता है ।४।

सब मंगलों में मंगल रूप, सर्वकल्याणों में कारण रूप और सब धर्मों में श्रेष्ठ ऐसा जैन शासन सदा जयवंता है।

लक्ष नवकार जाप के अनुष्ठान की विधि

(१) तीनों संध्या में **'शिवमस्तु सर्व जगतः'** की भावना से बारह बारह नवकार स्थिर चित्त से गिनना।

(२) परमात्मा की स्नात्रपूजा तथा अष्ट प्रकारी पूजा करना।

(३) प्रतिमाजी के समक्ष प्रातः सायं २४ लोगस्स का कायोत्सर्ग (पंच परमेष्ठी आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं, वंदण वत्तियाए०)

(४) हरएक नवकार के साथ एक सफेद पुष्प से प्रभु पूजन (पुष्प के अभाव में हर एक नवकार के साथ एक अखण्ड अक्षत से पूजा करना)

(५) प्रातः सायं प्रतिक्रमण, देववंदन, व्याख्यान श्रवण आदि।

(६) आयंबिल या क्षीर का एकासना करना।

(७) रोज की ५० नवकार की माला गिननी अर्थात् रोज के ५००० नवकार का जाप करना।

आराधकों को विशेष सूचना

(१) २० दिन तक मन, वचन, काया से ब्रह्मचर्य पालन।

(२) जहां तक हो सके मौन रखना।

(३) संथारे पर भूमिशयन करना।

(४) विजातीय परिचय वर्जनीय।

(५) जाप स्पष्ट अक्षरों से करना।

(६) पद्मासन या सुखासन से बैठना।
(७) जाप करते समय योग मुद्रा रखना।
(८) दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर, नमस्कार मंत्र के कमल चित्र पर या जिन प्रतिमा पर रखना।
(९) नवकारवाली सफेद वर्ण की रखना।
(१०) जाप की जगह वाछूट आदि वर्जनीय।

जाप का मंगल स्थल

(१) स्थलएकांत पवित्र, सौ-सौ हाथ तक बिना अशुचि वाला।
(२) गाय के शुद्ध घी का अखण्ड दीपक।
(३) मघमघायमान अखण्ड धूप।
(४) श्री पार्श्वनाथ प्रभु की पंच तीर्थी प्रतिमा की स्थापना।
(५) नवकार महामंत्र की महिमा को दर्शनिवाले सुन्दर कलामय उत्तम चित्र जाप गृह में चारों तरफ रखना।

वे तीर्थंकर बने

यो लक्षं जिनवद्धलक्ष्य सुमनाः सुव्यक्तवर्णक्रमम्,
श्रद्धावान् विजितेन्द्रियो भवहरं मन्त्रं जपेच्छ्रावकः ।
पुष्पैः श्वेतसुगंधिभिश्च विधिना लक्षप्रमाणैर्जिनं,
यः संपूजयते स विश्वमहितः श्रीतीर्थराजो भवेत् ।।
(श्री रत्न मंदिरगणी)

अर्थ—श्रीजिनेश्वर के प्रति लक्ष्य कर लिया है जिसने ऐसा जितेन्द्रिय श्रद्धालु शरीर और वस्त्र की पवित्रता तथा मन की एकाग्रतापूर्वक पूजा की अन्य सामग्री सहित श्री जिनेश्वर देव की पूजाकर, सर्व प्रकार के भय का नाश करने वाले महामंत्र नवकार का सुस्पष्ट वर्ण उच्चारपूर्वक एक लाख की संख्या का जाप करनेवाला भव्यात्मा, सारे संसार को पूज्य ऐसे तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है ।

नोंध—जाप को शुरु करते समय नित्य इस श्लोक को मधुर कण्ठ से और एकाग्रतापूर्वक बोलना चाहिये ।

परमातम-पद की प्राप्ति

समरो मंत्र भलो नवकार, ए छे चौद पूरव नो सार,
एना महिमानो नहि पार, एनो अर्थ अनंत अपार।

सुख मां समरो, दुख मां समरो, समरो दिवस ने रात,
जीवतां समरो मरतां समरो, समरो सौ संगाथ।

योगी समरे भोगी समरे, समरे राजा रंक,
देवो समरे दानव समरे, समरे सुख निःशंक।

अड़सठ अक्षर एना जाणो, अड़सठ तीरथ सार;
आठ संपदाथो परमाणो, अडसिद्धि दातार।

नवपद एना नवनिधि आपे, भवोभवना दुःख कापे;
चन्द्र वदन थी हृदये व्यापे, परमातम-पद आपे।

नौ दिन एकासने से नवकार तप की आराधना विधि

पवित्र स्थान पर चंद्रवा पुठिया लगाकर चाँदी के पत्तर पर या किसी अन्य वस्तु पर लिखे श्रीनवकार मंत्र की स्थापना कर उसके आगे ज्ञान की स्थापना कर वहां हर रोज ज्ञान का चैत्यवंदन करना। हर रोज ज्ञान का पूजन करना। जिनसे रोज न बन सके उन्हें कम से कम पारणे के दिन तो एक बार अवश्य ज्ञान पूजन करना ही चाहिये।

प्रथम दिन नमो अरिहंताणं पद की २० नवकार की माला अर्थात् २००० जाप करना।

पद में जितने अक्षर हों उतने खमासमणे, उतने लोगस्स का कायोत्सर्ग और स्वस्तिक आदि भी उतने ही करना। स्वस्तिक पर फल नैवेद्य रखना।

सात दिन हर रोज-क्रमशः एक एक और अन्तिम दो दिन आठवां व नवाँ पद मिलाकर १७ अक्षर होते हैं। इसलिये अन्तिम दो दिन सतरह खमासमणा, सतरह लोगस्स का कायोत्सर्ग और स्वस्तिक भी सतरह २ करना।

प्रथम के पांच दिन में परमेष्ठियों के पद के जाप में ॐ ह्रीं लगाना चाहिये। अन्तिम चार दिन में बाकी चार पदों में नहीं लगाना चाहिये इसको नीचे के कोष्टक से समझना चाहिये।

दिन	नवकारवाली का पद	स्वस्तिक	खमासमणा	कायोत्सर्ग	नवकारवाली
१ला	ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं	७	७	७	२०
२रा	ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं	५	५	५	२०
३रा	ॐ ह्रीं नमो आयरियाणं	७	७	७	२०
४था	ॐ ह्रीं नमो उवज्झायाणं	७	७	७	२०
५मां	ॐ ह्रीं नमो लोए सव्वसाहूणं	९	९	९	२०
६ठा	ऐसो पंच नमुक्कारो	८	८	८	२०
७मां	सव्वपावप्पणासणो	८	८	८	२०
८मां	मंगलाणंच सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं	१७	१७	१७	२०
९वां	मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं	१७	१७	१७	२०

कायोत्सर्ग को विधि

प्रथम दिन "नमो अरिहंताणं पद आराधनार्थं कायोत्सर्ग करूँ ?" इच्छं कहो सात लोगस्स का कायोत्सर्ग करना। इस प्रकार हर रोज क्रमशः पाचों परमेष्ठियों के आराधनार्थ परमेष्ठियों के अक्षर प्रमाणे कायोत्सर्ग करना।

छटे दिन ऐसो पंचनमुक्कारो पद आराधनार्थं इस प्रकार कह कर आठ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना।

सातवें दिन सव्वपावप्पणासणो पद आराधनार्थं ऐसा कह कर आठ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना।

आठवें व नवें दिन मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं पद आराधनार्थं कायोत्सर्ग करूं ? इच्छं कह दोनों दिन सतरह लोगस्स का कायोत्सर्ग करना।

श्री नवकार महामंत्र तप के खमासमणे के दोहे

प्रथम दिन

अरिहंत पद ध्यातो थको, दव्वह गुण पज्जाय रे;
भेद छेद करी आतमा, अरिहंतरूपी थाय रे ॥१॥

यह दोहा बोलकर सात खमासमणा देना। हरेक खमासमणे के साथ श्री **अर्हद्भ्यो नमो नमः** बोलना।

दूसरे दिन

रूपातीत स्वभाव जे, केवल दंसण नाणी रे;
ते ध्याता निज आत्मा, होय सिद्ध गुणी खाणी रे ॥२॥

यह दोहा बोलकर पांच खमासमणा देना। हरेक खमासमणे के साथ श्री **सिद्धेभ्यो नमो नमः** बोलना।

तीसरे दिन

ध्याता आचारज भला, महामंत्र शुभ ध्यानी रे;
पंच प्रस्थाने आतमा, आचारज होय प्राणी रे ॥३॥

यह दोहा बोलकर सात खमासमणा देना। हरेक खमासमणे के साथ श्री **आचार्येभ्यो नमो नमः** बोलना।

चौथे दिन—

तप सज्झाये रत सदा, द्वादश अंगनो ध्याता रे,
उपाध्याय ते आतमा, जगबंधव जगभ्राता रे ॥४॥

यह दोहा बोलकर सात खमासमणा देना। हरेक खमासमणे के साथ **श्री उपाध्यायेभ्यो नमो नमः** बोलना।

पांचवें दिन—

अप्रमत्त जे नित्य रहे, नवि हरखे नवि शोचे रे,
साधु सूधा ते आतमा, शुं मुंडे शुं लोचे रे ॥५॥

यह दोहा बोलकर नौ खमासमणा देना। हरेक खमासमणे के साथ **सर्व साधुभ्यो नमो नमः** बोलना।

छटे, सातवें, आठवें व नवें दिन—

पंच नवकार ए सुप्रकाश, एहथी होये सवि पाप नाश,
सर्व मंगल तणुं एह मूल, सुजस विद्या विवेकानुकूल ॥६॥

अंतिम चार दिनों में यह दोहा बोलना। छटे व सातवें दिन आठ खमासमणा, आठवें व नवें दिन सत्तर खमासमणा देना। हरेक खमासमणे के साथ **सकलद्वादशाङ्गोपनिषद्भूत-श्रीनमस्कारमहामंत्रचूलिकायै नमो नमः बोलना।**

नवकार तप में विशेष सूचना

नौ दिन एकासना, दोनों वक्त प्रतिक्रमण, तीन वक्त देववंदन, सवेरे सायं पांचों कपड़ों का पडिलेहण, स्नात्रादि से प्रभु पूजा, गुरुवन्दन, पच्चक्खाण, व्याख्यान श्रवण, दोपहर को देववंदन कर विधि सहित पच्चक्खाण पारना, एकासना करते समय नहीं बोलना। एकासना करने के बाद जगचिंतामणि का चैत्यवन्दन जय वीयराय तक करना। रात को संथारा पोरसी गुरु महाराज से सुनना अथवा उसकी गाथा को गिन लेना। भूमि संथारा करना तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना। तप के दिनों समता रखने का विशेष प्रयत्न करना। जाप तथा दूसरी भी सब क्रियायें उपयोग पूर्वक करने का लक्ष रखना। पारणे

पर यथाशक्ति स्वामिवात्सल्य करना। तप पूर्ण होने पर उद्यापन महोत्सव, शासन प्रभावना आदि शक्ति और समय के अनुसार करने की भावना रखना।

यह सामान्य विधि बताई गई है। विशेष विधि ग्रंथान्तर से अथवा गुरुगम से जानना।

नवकार के तप के दिनों में जब जब समय मिले तब तब नवकार की महिमा हृदय में अंकित हो ऐसा पठन, चिंतन, मनन चालू रखना। तप पूरा होने पर भी प्रतिदिन अमुक समय तो नवकार मंत्र की आराधना तथा पठन, चिंतन, मनन या इस विषय के जानने वालों से साक्षात् समागम, उनसे श्रवण आदि चालू रखना। इस प्रकार नवकार की महिमा को अपने हृदय में अंकित करने का नम्रतापूर्वक प्रयास करना।

इसके सिवा समय और संयोग की अनुकूलता मिले तब १८ दिन तक गुरु के सानिध्य में पौषध में रहकर उपधान तप वहन करके विशिष्ट विधिपूर्वक इस महामन्त्र की आराधना करना चाहिये। इससे शास्त्रीय मर्यादाओं का पालन होता है। श्रीमहानिशीथ आदि आगमों में उपधान तप वहन के साथ इस महामंत्र की आराधना करने को फरमाया है।

श्रीनवकार महामन्त्र तप में प्रतिदिन करने के चैत्य वन्दन आदि —

श्रीनवकार महामंत्र तप में प्रतिदिन महामन्त्र के पद के क्रमानुसार आराधना करनी होती है। उसमें शुरु के पांच दिन अरिहंतादि पांच पदों को लक्ष्य में रखकर अलग अलग चैत्यवंदन, स्तवन व स्तुति हैं और अन्तिम चार दिन एक ही चैत्यवंदन, स्तवन और स्तुति है। उनका क्रम इस प्रकार है।

प्रथम दिन—

श्रीअरिहंत पद का चैत्यवंदन

जय जय श्री अरिहंत भानु, भवि कमल विकाशी;
लोकालोक अरूपी रूपी, समस्त वस्तु प्रकाशी ॥१॥
समुद्घात शुभ केवले, क्षयकृत मल राशि;
शुक्ल चरम शुचि पाद से, भयो वर अविनाशी ॥१'॥
अंतरंत रिपुगण हणीए, हुए अप्पा अरिहंत;
तसु पदपंकज में रही, हीर धरम नित संत ॥३॥

श्री अरिहंत पद का स्तवन

(कड़खानी देशी)

श्री अरिहंत भगवंत परमातमा,
देवनो देव गुण रयण खाणी;
सात शुद्धि करी मलिनता परिहरी
पूजीये भविजना प्रेम आणी ॥ श्री॥१॥
अरति रति मोह निद्रा न हाँसी भय,
राग नहिं द्वेष नहिं जास अंगे;
काम मिथ्यात्व अज्ञान जस खय थयाँ,
ध्याइये ते प्रभु अधिक रंगे ॥श्री २॥
ध्यान पिंडस्थ पदस्थ रूपस्थथी,
ध्येय ध्याता लहे एक ताने
द्रव्य पर्याय गुण तेहना ध्याइये
पाइये सिद्धि बहु तत्त्वज्ञाने ॥ श्री॥३॥
जनमना च्यार अगियार घाती खये,
देवकृत जास ओगणीस राजे;

चउतीस अतिशय अंग चौथे कह्या,
पणतीस वयण गुण जास छाजे ।।श्री।।४।।
अड़ अधिक सहस लक्षण धरे अंगमां,
गुण अनंते भर्यो नाथ सोहे;
जास कल्याण के जगतनुं तम टले,
इंद्र उपेन्द्रनां चित्त मोहे ।।श्री ।।५।।
नाम ने थापना द्रव्य भावे करी,
जे नरा चित्त में नित ध्यावे;
देवपालादि भूपाल परे से नरा,
तीर्थपति संपदा हस्त पावे ।।श्री ।।६।।
जे महागोप खटकाय गोकुल तणो,
तिम महामाहण जास कहीये;
भवोदधि बूडता भव्य निस्तारणो,
सार्थपति मुगतिनो जेह लहीये ।।श्री।।७।।
द्रव्य भावे करी पूजना जे करे,
स्वर्ग अपवर्ग ते नियत पावे;
त्रण्य पण अष्ट नव सत्तर एगवीशविह,
पूजना करी वसे सिद्धि धामे ।।श्री।।८।।
प्रथम पद पूजतो राय श्रेणिक प्रथम,
भावि चौवीशी जिनराज थाशे;
तास पद पद्मनी सेवना सूर करी,
रूपविजयादि नित सुजस गाशे ।।श्री।।९।।

श्री अरिहंत पद स्तुति

(वीर जिनेश्वर अति अलवेसर—ए देशी)

सकल द्रव्य पर्याय प्ररूपक, लोकालोक स्वरूपोजी,
केवलज्ञान की ज्योति प्रकाशक, अनंतगुणे करी पूरोजी,

त्रीजे भव थानक आराधी, गोत्र तीर्थंकर नूरोजी;
बार गुणाकर एहवा अरिहंत, आराधो गुण भूरोजी ।।१।।

दूसरे दिन

श्री सिद्धपद का चैत्यवंदन

श्रीशैलेशी पूर्वप्रांत, तनु हीन त्रिभागी;
पूर्वप्रयोग प्रसंग थी, उरध गति जागी ।।१।।
समय एकमां लोकप्रांत, गया निगुण निरागी;
चेतन भूपे आत्मरूप, सुदिशा लही सागी ।।२।।
केवल दंसण नाण थी ए, रूपातीत स्वभाव;
सिद्ध भये तसु हीर धर्म, वंदे धरी शुभ भाव ।।३।।

श्री सिद्धपद का स्तवन

(गुण रसिया–ए देशी)

श्री सिद्ध पद आराधीये रे,
क्षय कोधां अड कर्म रे ।। शिव वसिया ।।
अरिहंते पण मानीया रे,
सादि अनंत स्थिर शर्म रे ।। शिव ।।१।।
गुण एकत्रीस परमातमा रे,
तुरिय दशा आस्वाद रे ।। शिव।।
एवंभूत नये सिद्ध थया रे,
गुणगणनो आल्हाद रे ।।शिव।।२।।
सुरगण सुखत्रिहुं कालनां रे,
अनंतगुणां ते कीध रे ।। शिव ।।
अनंत वर्गे वर्गित कर्यां रे,
तो पण सुख समीघ रे ।। शिव ।।३।।

बन्ध उदय उदीरणा रे,
सत्ता कर्म अभाव रे ।।शिव।।
ऊर्ध्व गति करे सिद्धजी रे,
पूर्वप्रयोग सद्भाव रे ।।शिव।।४।।
गति पारिणामिक भावथी रे,
बंधन छेदन योग रे ।।शिव।।
असंग क्रिया बले निर्मलो रे,
सिद्धगतिनो उद्योग रे ।।शिव।।५।।
पएसंतर अणफरसता रे,
एक समयमां सिद्ध रे ।।शिव।।
चरम त्रिभाग विशेषथी रे,
अवगाहन घन कीध रे ।।शिव।।६।।
सिद्धशिलानी उपरे रे,
ज्योतिमां ज्योति निवास रे ।।शिव।।
हस्तिपाल परे सेवतां रे,
सौभाग्य लक्ष्मी प्रकाश रे ।।शिव।।७।।

श्री सिद्धपद स्तुति

अष्ट करमकुं दमन करीने, गमन कियो शिववासीजी,
अव्याबाध सादि अनादि, चिदानन्द चिद्राशिजी;
परमातम पद पूरण विलासी, अघघन दाघ विनाशीजी,
अनंत चतुष्टय शिवपद ध्यावो, केवलज्ञानी भाखीजी, ।।१।।

श्री आचार्यपदका चैत्यवंदन

जिन पद कुल मुखरस अनिल, मित रस गुणधारी;
प्रबल सबल घन मोहकी, जिणें चमू हारी ॥१॥
ऋज्वादिक जिनराज गीत, नय तन विस्तारी;
भवकूपे पापे पड़त, जगजन निस्तारी ॥२॥
पंचाचारी जीव के, आचारज पद सार;
तिनकुं बन्दे हीर धर्म, अट्ठोत्तरसय वार ॥३॥

श्री आचार्यपद का स्तवन

(नीलूडी रायण तरु तले-ए देशी)

पंचाचार सुधा धरे सुणो संताजी,
जीती इंद्रिय पंच गुणवंताजी:
पंच समिति समिता रहे, सु० गुप्ति त्रण करे संच ॥गु०॥१॥
पंच महाव्रत पालता, सु० जीते चार कषाय ॥गु०॥
नव विध ब्रह्म गुपति धरे, सु० आचारज निरमाय ॥गु०॥२॥
अष्टांग जोग साधन करे, सु० लहे अडकर्म स्वरूप ॥गु०॥
जाणे अडलब्धि भली, सु० तिम अडदिट्ठी सरूप ॥गु०॥३॥
चउ अनुयोग वखाणता, सु० शासनना शणगार ॥गु०॥
बारसे छन्नु गुणे भर्या, सु० भावाचारज सार ॥गु०॥४॥
पंच प्रस्थान साधन करे, सु० मुनि गणी पंडित भाव ॥गु०॥
वाचक आचारजपणुं, सु० पामे गुणने दाव ॥गु०॥५॥
चउदसें बावन गणधारा, सु० लब्धितणा भण्डार ॥गु०॥
तस पद पंकज पूजीये, सु० द्रव्य-भावे निरधार ॥गु०॥६॥

जुगप्रधान वीर शासने, सु० दोय हजार ने चार ॥गु०॥
वर्तमान श्रुतना धणी, सु० ते पूजो धरी प्यार ॥गु०॥७॥
अशनासन वस्त्रादिके, सु० पानक औषध पात्र ॥गु०॥
नमनाभिगमन वन्दना, सु० करे नित नामी गात्र ॥गु०॥८॥
आचारज पद सेवतो, सु० श्री पुरुषोत्तम भूप ॥गु०॥
तीर्थंकर पद बांधियुं, सु० लहेशे चिद्घनरूप ॥गु०॥९॥

श्री आचार्यपद स्तुति

पंचाचार पाले अजुवाले, दोष रहित गुणधारीजी:
गुण छत्रीसे आगमधारी, द्वादश अंग विचारीजी;
प्रबल सबल घन मोह हरणकुं, अनिल समो गुणवाणीजी:
क्षमा सहित जे संयम पाले, आचारज गुणध्यानीजी:

चौथे दिन

श्री उपाध्याय पद का चैत्यवंदन

घन धन श्री उवज्झाय राय, शठता घन भंजन;
जिनवर देशित दुवालसंग, कर कृत जनरंजन ॥१॥
गुणवण भंजण मणगयंद, सुय [1]सूणि किय गंजण;
कुणालंघ लोय लोयणे, जत्थ य सुयमंजण ॥२॥
महाप्राण में जिण लह्यो ए, आगम से पद तुर्य;
तिनपे अहनिश हीर धर्म, वंदे पाठकवर्य ॥३॥

श्री उपाध्याय पद स्तवन

(रसियानी देशी)

श्री उवज्झाय बहुश्रुत नमो भावशुं,
अंग उपांगना जाण मुणींदा;

---

१ अंकुश

भणे भणावे शिष्यने हित करी,
करे नव पल्लव पहाण विनीता ॥श्री॥१॥
अर्थ-सूत्र कहेवाना विभागथी,
सूरीश्वर-पाठक सार सोहंता;
भव त्रीजे अविनाशी सुख लहे,
युवराज परे अणगार महंता ॥श्री॥२॥
चौद दोष भर्या अविनीत शिष्यने,
करे पन्नर गुणवंत विदिता;
ग्रहण-आसेवन शिक्षा-दान थी,
समय जाणे अनेकांत सुज्ञानी ॥श्री॥३॥
आवश्यक पचवीश शीखवे वांदणे,
पचवीश क्रियानो त्याग विचारी;
पचवीश भावना भावे महाव्रती,
शुभ पचवीशो गुणराग सुधारी ॥श्री॥४॥
पय भर्यो दक्षिणावर्त[1] शंख शोभिये,
तेम नय—भाव—प्रमाण—प्रवीणा;
हय[2]-गय[3]-वृषभ[4]-पंचानन[5] सारिखा,
टाले परवादी अभिमान अदीना ॥श्री॥५॥
वासुदेव[6] –नरदेव[7]–सुरपति[8] उपमा,
रवि[9] -शशी[10]-भंडारी[11]-रूप दीपंता;
जंबू[12]–सीतानदी[13]–मेरूमहीधरो,[14]
स्वयंभूउदधि[15]–रयण[16]–भूप भणंता ॥श्री॥६॥
ए सोल उपमा बहुश्रुतने कही,
उत्तराध्ययने रसाल जिणंदा;

महींद्रपाल वाचकपद सेवतो,
सौभाग्य लक्ष्मी सुविशाल सूरींदा ॥श्री॥७॥

श्री उपाध्याय पद स्तुति

अंग इग्यारे चौदे पूरव, गुण पचवीशना धारोजी,
सूत्र अरथधर पाठक कहीये, योग समाधि विचारीजी;
तप गुणसूरा आगम पूरा, नय निक्षेपे तारीजी,
मुनि गुणधारी बुध विस्तारी, पाठक पूजो अविकारीजी।

पांचवें दिन

श्री साधु पद का चैत्यवंदन

दंसण नाण चरित्त करी, वर शिवपद गामी;
धर्म शुक्ल शुचि चक्र से, आदिम खय कामी ॥१॥
गुण प्रमत्त अप्रमत्त तें, भये अंतरजामी;
मानस इन्द्रिय दमन भूत, शम दम अभिरामी ॥२॥
चार तिघन * गुणगण भर्योए, पंचमपद मुनिराज;
तत्पद पंकज नमत है, हीर धर्म के काज ॥३॥

श्री साधु पद स्तवन

(भणिका ! श्री सिद्ध चक्रपद गंदो-ए देशी)

षट् व्रतधारी छ कायना रक्षक, पंच इन्द्रिय वश करता,
भाव विशुद्धि पड़िलेहणा करें, करण विशुद्धि धरता रे,
भविका ! एहवा मुनिवर वंदो ! जीम लहो परमाणंदो रे ! १॥

---

* वर्ग को मूल संख्या से गुणा करने से घन संख्या होती है, उसके अनुसार ३×३=९×३=२७ गुण की संख्या यहां 'तीघन' शब्द से जानना।

लोभ निग्रह करी खंति सूरा, संजमना अधिकारी,
अकुशल मन वच काय निरोहे, सहे परिसह अतिभारी रे।।भ।।२।।
देव तिरि नर आत्म-समुद्भव, उपसर्ग सोले सहता,
सत्तावीश मुनिवर गुणधारी, समिति गुप्ति निरवहतारे ।।भ।।३।।
बाह्य अभ्यंतर तप नित तपता, कठिन कदम खयकारी,
दोष बियालीश रहित अशन करे,अतिक्रम चार निवारी रे।।भ।।४।।
द्रव्यादिक अभिग्रह चउ करता, खड्विध विगयना त्यागी,
चार प्रकारे संलीनता करी, ज्ञान ध्यान मति जागी रे ।।भ।।५।।
नरना दोष अढार निवारी, दीक्षा योग्यने आपे,
नवविध भाव लोचना कारण, केश लोच त्रिक थापे रे ।।भ।।६।।
चउद अभ्यंतर ग्रन्थी तजीने, जेह थया निर्ग्रंथ,
अशरण शरण तरण तारक मुनि, चलवे शिवपुर पंथरे ।।भ।।७ ।
बहुश्रुत तपसो लब्धिना धारी, व्रत दूषण परिहारी,
अप्रमत गुणठाणग धारी, मुनि नमो जोग समारी रे ।।भ।।८।।
वीरभद्र ए मुनिपद सेवी, होशे विदेह जिणंद,
तस मुख पद्म वयण रस पामी, रूप विजय आणंद रे ।।भ।।९।।

श्री साधु पद स्तुति

समिति गुप्ति करी संयम पाले, दोष बेंतालीश टालेजी;
षट काया गोकुल रखवाले, नवविध ब्रह्मव्रत पालेजी;
पंच महाव्रत सूधा पाले, धर्म शुक्ल उजवालेजो;
क्षपक श्रेणी करी कर्म खपावे, शमदम गुण उपजावेजी ।।१।।

श्री नवकार महामंत्र लघु तप के अंतिम चार दिनों में उपयोगी चैत्यवंदन और स्तुति।

पंच परमेष्ठी महिमा का चैत्यवंदन

(१)

अरिहंताणं णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥
सिद्धाणं णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, बीयं हवइ मंगलं ॥ २ ॥
आयरियाणं णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, तइयं हवइ मंगलं ॥ ३ ॥
उवज्झायाणं णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, चउत्थं हवइ मंगलं ॥ ४ ॥
साहूणं णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पंचमं हवइ मंगलं ॥ ५ ॥
एसो पंचणमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥ ६ ॥

(२)

पंच परमेष्ठी गुण गर्भित चैत्यवंदन

बार गुण अरिहंत देव, प्रणमीजे भावे;
सिद्ध आठ गुण समरता, दुःख दोहग जावे ॥ १ ॥
आचारच गुण छत्रीश, पचवीश उवज्झाय;

सत्तावीश गुण साधुना, जपतां शिवसुख थाय ॥ २ ॥
अष्टोत्तर शत गुण मलीए, ऐम समरो नवकार;
धीर विमल पंडित तणो, नय प्रणमे नित्य सार ॥३॥

श्री नवकार महामंत्र महिमा का स्तवन

ए पंच परमेष्ठीपद, मंत्रइ नवकार,
शिवपदनुं साधन, प्रवचन केरूं सार,
एक अक्षर जपतां, सात सागरनुं दुःख,
नाशे सघले पद, पणसय सागर दुःख ॥ १ ॥
नवपद वली संपदा, आठ अक्षर अडसठी,
गुरु अक्षर सात ज, लघु अक्षर इगसठी,
जे विधिस्युं जपई, गुरु मुख वही उपधान,
वली निर्मल चित्ते, समकित विनय प्रधान ॥ २ ॥
होई बहु फलदायक, इह परलोके सार,
सिद्धि सघली एहमां, चौद विद्या आधार,
बहु भेदई ध्याओ कमल कर्णिकाकार,
वली रहस्य उपांशु, भाष्य जाप त्रण सार ॥३॥
वली द्रव्ये भावे, एहना अनेक विधान,
गुरु विनयथी लहीईं, थापन पंच प्रस्थान,
सवि मंगलमांहि, परम मंगल छई एह,
सवि पाप नसाड़ईं, ताड़ईं दुरित अछेह ॥४॥
एहनु माहात्म्य, ज्ञान विमल थी जाणी,
आराधो अहनिश, जिम सुखिया थाओ प्राणी,
अंतर आतमथी, लहीये एह सरूप,
परमातम भावे एह छे सिद्धिसरूप ॥५॥

श्री नवकार महामंत्र की स्तुति

"आकृष्टि सुरसम्पदां विदधति मुक्तिश्रियो वश्यता-
मुच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम् ।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततां मोहस्य संमोहनं,
पायात् पञ्चनमस्क्रियाऽक्षरमयी साऽऽराधना देवता।।१।।"

अर्थ—पंचमेष्ठी नमस्क्रियारूप अक्षरमयी आराधना देवता आपकी रक्षा करो जो कि सुरसंपदाओं के आकर्षण हैं, मुक्तिरूपी लक्ष्मी को वश करते हैं, चारों गति में होनेवाली विपदाओं का नाश करते हैं । आत्मा के पापों के प्रति द्वेष करते हैं, दुर्गति के प्रति गमन करनेवाले जीवों को रोकते हैं और जो मोह का भी संमोहन करते हैं अर्थात् मोह का भी नाश करते हैं ।

संथारा पोरिसी (मूल)

संथारा पोरिसी में धार्मिक जीवन के अन्तिम आदर्श की हकीकत को थोड़े में संग्रह कर ली गई है। इसका श्रवण, वाचन, मनन, परिशीलन बहुत लाभदायक है।

महामंत्र नवकार की साधना में तीव्रता लाने के लिये इसका स्वाध्याय बहुत ही उपयोगी है, इससे यहाँ प्रथम मूल सूत्र को और पीछे उसका सरल शब्दार्थ बताया गया है।

१. नमस्कार

निसीहि, निसीहि, निसीहि.

नमो खमासमणाणं गोयमाईणं महामुणीणं ॥

२. संथारा की आज्ञा

अणुजाणह जिट्ठज्जा।

अणुजाणह परम–गुरु! गुरु-गुण-रयणेहिं मंडिय-सरीरा!।

'बहु-पडिपुन्ना पोरिसी, राइय संथारए ठामि' ॥१॥

३. संथारा की विधि

अणुजाणह संथारं. बाहुवहाणेण वाम–पासेणं।

कुक्कुडि-पाय-पसारण, अतरंत पमज्जए भूमिं ॥२॥

संकोइअ संडासा, उव्वट्टन्ते अ काय-पडिलेहा।

४. जागृत रहना पड़े तो

दव्वाई–उवओगं, उस्सास–निरुंभणालोए ॥३॥

५. सागारी अणसण

जइ मे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्सिमाइ रयणीए ।
आहारमुवहि-देहं, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं ॥४॥

६. मंगल भावना

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं;
साहू मंगलं, केवलि-पन्नत्तो धम्मो मंगलं ॥५॥
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा;
साहू लोगुत्तमा, केवलि-पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥६॥

७. चार शरण

चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणं पवज्जामि,
सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि,
केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ॥७॥

८. अठारह पाप स्थानों का त्याग

पाणाइवायमलीअं, चोरिक्कं मेहुणं दविण-मुच्छं ।
कोहं माणं मायं, लोहं पिज्जं तहा दोसं ॥८॥
कलहं अब्भक्खाणं, पेसुन्नं-रइ-अरइ--समाउत्तं ।
पर-परिवायं माया-मोसं मिच्छत्त-सल्लं च ॥९॥
वोसिरसु इमाइं, मुक्ख-मग्ग-संसग्ग-विग्ध-भूआइं ।
दुग्गइ-निबंधणाइं, अट्ठारस पाव-ठाणाइं ॥१०॥

९. आत्मानुशासन

एगोहं नत्थि मे कोइ, नाहमन्नस्स कस्सइ ।
एवं अदीणमणसो, अप्पाणमणुसासइ ॥११॥

एगो मे सासओ अप्पा, नाण-दंसण-संजुओ ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग–लक्खणा ॥१२॥

१०. सव्व सम्बन्धों का त्याग

संजोग-मूला जीवेण, पत्ता दुक्ख-परंपरा ।
तम्हा संजोग-संबंधं, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं ॥१३॥

११. सम्यक्त्व की धारणा

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिण–पन्नत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहिअं ॥१४॥

१२. क्षमापना

खमिअ खमाविअ मइ, खमह सव्वह जीव–निकाय ।
सिद्धह साख आलोयण, मुज्झह वइर न भाव ॥१५॥
सव्वे जीवा कम्म-वस, चउदह–राज भमंत ।
ते मे सव्व खमाविआ, मुज्झ वि तेह खमंत ॥१६॥

१३. सब पापों का मिथ्या दुष्कृत

जं जं मणेण बद्धं, जं जं वायाइ भासिअं पावं ।
जं जं काएण कयं, मिच्छा मि दुक्कडं तस्स ॥१७॥

संथारा पोरिसी का शब्दार्थ

निसीहि, निसीहि, निसीहि

क्षमा श्रमणों को, गौतम आदि महा मुनियों को नमस्कार हो। हे ज्येष्ठ आर्यों ! अनुज्ञा दो।

उत्तम गुणरत्नों से विभूषित देहवाले हे परम गुरु ! (प्रथम) पोरसी अच्छी तरह सम्पूर्ण हुई है, इसलिये रात्रि के संथारे के लिये स्थिर होने की आज्ञा दें (१)

हे भगवन् ! संथारे की आज्ञा दो। हाथ का सहारा लेने से तथा बाईं करवट सोने से (इसकी विधि का पालन होता है) और कुकड़ी के माफिक पग रख कर सोने में अशक्त होने से भूमि का प्रमार्जन करुं (और पीछे पैर लम्बे करना उसकी विधि मैं जानता हूँ) (२)

यदि पैर लम्बे करने के बाद सिकुड़ना पड़े तो ढींचण को पूंज कर सिकोड़ना तथा करवट बदलना पड़े तो शरीर का प्रमार्जन करना यह इसकी विधि है। यदि काय-चिन्ता के लिये उठना पड़े तो निद्रा को दूर करने के लिये द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की विचारणा करना और इतने पर भी निद्रा न उड़े तो हाथ से नाक पकड़ कर निःश्वास को रोकना और इस तरह निद्रा बराबर उड़ जावे तब प्रकाशवाले द्वार की तरफ जाना। (ऐसी विधि को मैं जानता हूँ।) (३)

यदि मेरे शरीर की इस रात्रि को ही मृत्यु हो जाय तो मैं आहार उपकरण और देह को मन, वचन, और काया से अभी वोसिराता हूँ (त्याग करता हूँ) ॥४॥

चार पदार्थ मंगल रूप हैं। (१) अरिहंत मंगल हैं (२) सिद्ध मंगल हैं (३) साधु मंगल हैं और (४) केवली प्ररूपित धर्म मंगल है (५)

चार पदार्थ लोकोत्तम हैं। (१) अरिहंत लोकोत्तम है (२) सिद्ध लोकोत्तम हैं (३) साधु लोकोत्तम हैं और (४) केवली भाषित धर्म लोकोत्तम है। (६)

संसार के भय से बचने के लिये मैं चारों की शरण लेता हूँ। (१) अरिहंतों की शरण लेता हूँ। (२) सिद्धों की शरण लेता हूँ (३) साधुओं की शरण लेता हूँ और (४) केवली भाषित धर्म की शरण लेता हूँ। (७)

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति-अरति, पर-परिवाद, माया-मृषावाद, और मिथ्यात्व शल्य इन अठारह पाप स्थानों को मोक्ष मार्ग की प्राप्ति में विघ्न भूत और दुर्गति के कारण रूप होने से त्यागने योग्य हैं। (इसलिये मैं इनका त्याग करता हूँ) (८–१०)

"मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है और मैं भी किसी का नहीं" ऐसा अदीन मन से विचारते हुए आत्मा को समझना चाहिये। (११)

ज्ञान और दर्शन से युक्त एक मेरी आत्मा हो शाश्वत है और दूसरे सब संयोग से उत्पन्न हुए बाह्य भाव हैं। (१२)

मेरे जीव ने दुःख की परम्परा कर्म संयोग के कारण ही प्राप्त की है। इसलिये इन सब कर्म संयोगों को मैं मन, वचन और काया से वोसिराता हूँ। (१३)

मैं जीऊँ तब तक अरिहंत मेरे देव हैं, सुसाधु मेरे गुरु हैं। और श्री जिनेश्वर भाषित धर्म को मैं तत्त्व मानता हूँ। इस तरह के सम्यक्त्व को मैंने अंगीकार किया है। (१४)

हे जीव समूह ! तुम सब क्षमत क्षामणा करके मेरे को क्षमा करो। मैं सिद्धों की साक्षी में आलोचना करता हूँ कि मेरा किसी भी जीव से वैर भाव नहीं है।(१५)

सब जीव कर्मवश होकर चौदह राजलोक में भ्रमण करते हैं, उन सब को मैंने क्षमाया है, वे मुझे भी क्षमा करें। (१६)

मैंने जो कोई पाप मन से बांधा हो, वचन द्वारा उच्चारण किया हो, और काया से किया हो वे सब मेरे दुष्कृत्य मिथ्या हो।(१७)

— —

श्री अरिहंत परमात्मा

(भव अटवी में सार्थवाह)

श्री अरिहंत परमात्मा का इस विश्व पर महान उपकार है। उस उपकार को समझने के लिये भव अटवी का स्वरूप समझना जरूरी है।

यह संसार एक भयंकर अटवी है। अटवी में जिस तरह सीधे और टेढ़े मार्ग होते हैं, सिंह, वाघ आदि हिंसक पशुओं का भय होता है, कई प्रकार के वृक्ष होते हैं, इन विविध वृक्षों की छाया, पत्ते, पुष्प और फल होते हैं, और अटवी में जैसे खड्डे, दरे और चोर लूटेरों के उपद्रव होते हैं तथा फंसाने-वाले धाड़ामार होते हैं और पार उतारने वाले दयालु सार्थवाह भी होते हैं, उसी तरह संसार अटवी में भी ये सब होते हैं।

इसका स्पष्ट स्वरूप समझने के लिये अनुभवी पुरुषों ने उपनय-भावार्थ सहित द्रव्य अटवी और भाव अटवी का विविध प्रकार का वर्णन शास्त्रों में अनेक स्थानों पर किया है।

भाव अटवी का वास्तविक स्वरूप समझने के लिये प्रथम द्रव्य अटवी का वर्णन इस प्रकार बताया गया है।

वसंतपुर नाम का नगर है, वहां धन नाम का एक सार्थवाह है। इप्सितपुर जाने के लिये स्वयं तैयार है। स्वयं दयालु और परोपकारी स्वभाववाला होने से दूसरों को भी

इप्सितपुर नगर जाना हो तो साथ ले जाने के लिये उद्घोषणा कराता है। साथ में आनेवालों के संरक्षण और उनके लिये आवश्यक वस्तुओं की जवाबदारी स्वयं अपने पर लेता है। उसकी उद्घोषणा को सुन इप्सितपुर जाने की इच्छा वाले बहुत से लोग वहाँ इकट्ठे होते हैं।

इप्सितपुर जाने के लिये बीच में एक भयंकर अटवी आती है। इस अटवी को पार करने के दो रास्ते हैं। एक मार्ग छोटा है और दूसरा मार्ग टेढ़ा मेढ़ा होने से लम्बा है। इस लम्बे मार्ग से सुख पूर्वक जाया जाता है परन्तु बहुत दिन लगते हैं—जो कि अंत में यह मार्ग भी छोटे मार्ग से आगे जाकर मिल जाता है।

छोटे मार्ग से इप्सितपुर जल्दी पहुँचा जा सकता है, परन्तु कष्ट से पहुँचा जाता है। उस मार्ग में चलना कठिन है क्योंकि उसमें चढ़ाव उतार बहुत आते हैं, फिर वह लिपसना है। थोड़ी सी लापरवाही से गिरते देर नहीं लगती, उस मार्ग में प्रवेश करते ही महाघोर और विकराल सिंह तथा बाघ मुसाफिर के पैरों को पकड़ते हैं, वे जब तक नहीं छोड़ते तब तक मार्ग में आगे नहीं बढ़ा जा सकता। पूरी अटवी में ये बाघ और सिंह मुसाफिर का पीछा करते हैं।

इस मार्ग में वृक्ष भी बहुत मिलते हैं। उनमें बहुत से तो बड़े मनोहर हैं। परन्तु उनकी छाया विश्राम लेने लायक नहीं है। क्योंकि बहुत मनोहर होने पर भी उन वृक्षों की छाया मृत्यु देनेवाली है। इसके सिवा उस मार्ग में बहुत से वृक्ष सूखे व कुम्हलाये पत्तोंवाले हैं, यदि उनके नीचे थोड़ी देर विश्राम किया जाय तो मृत्यु का डर नहीं है।

इस मार्ग के दोनों तरफ मनोहर स्वरूपवान बहुत से पुरुष हैं, वे रास्ते में जानेवाले मुसाफिरों को लोभ और लालच देकर बुलाते हैं, परन्तु उनकी बातें सुनने लायक नहीं हैं। उनके मीठे वचनों में आकर साथ के मनुष्यों से अलग होने पर बड़ा भय है क्योंकि अकेले उस अटवी को पार करना सम्भव नहीं है।

दुरंत और घोर दावाग्नि भी इस अटवी में जलती रहती है। उस दावाग्नि को पार करने में जरा भी बेपरवाही की जाय तो निश्चय वह मनुष्य को जला देती है।

बहुत कठिनाई से उल्लंघन किये जावें ऐसे ऊँचे २ पर्वत इस रास्ते में आते हैं। सावधानी पूर्वक उनका उल्लंघन न किया जाय तो निश्चय ही मृत्यु हो जाती है।

उस मार्ग में आगे चलने पर अत्यंत गहन और विस्तृत बांस जाल (बांस का जंगल) आता है, जिन्हें एक दम पार कर जाना चाहिये। क्योंकि वहाँ रहने से बहुत दोष उत्पन्न होते हैं।

उसके बाद उस मार्ग में आगे चलने पर एक बड़ा गहरा खड्डा आता हैं, उस खड्डे के पास ही मनोरथ नाम का याचक वहां बराबर खड़ा रहता है। जो कोई उधर से गुजरता है, उसे वह कहता है कि 'इस खड्डे को थोड़ा बंद करते जाओ" परन्तु उसकी बात को बिलकुल नहीं सुनना चाहिये क्योंकि वह खड्डा कभी नहीं पुराया जा सकता है। जैसे २ उसे पूरते जायेंगे वैसे २ वह अधिक २ बड़ा होता जायगा, उसे पूरने से वह आस पास के रास्तों को भी खराब

कर देता है ऐसा वह विचित्र खड्डा है। उसे पूरने के लिये मनोरथ नामक याचक की बात नहीं सुनना चाहिये और उस खड्डे को पूरने के लिये वहां नहीं रुकना चाहिये।

इसी तरह उस अटवी में चक्षु और इंद्रियों को अत्यंत सुखदायक दिव्य किंपाक नाम के फल हैं। वे फल देखने लायक और खाने योग्य भी नहीं हैं।

इसके सिवा उस अटवी में रहनेवाले बाइस महा विकराल पिशाच प्रतिक्षण उधर से जानेवाले मुसाफिरों को त्रास देते रहते हैं, परन्तु उस त्रास की परवाह नहीं करना चाहिये।

इसके अलावा इस छोटे मार्ग से जाने में खाने-पीने की वस्तुएं भी दुर्लभ होती हैं, इस कारण इस रास्ते में कहीं रुकना भी नहीं है। निरंतर गमन चालू नहीं रखने पर कभी इप्सितपुर नगर में नहीं पहुँचा जा सकता है। रात्रि में भी कभी दो पहर से अधिक निद्रा नहीं लेकर, बाकी दो पहर में भी चलते रहना ही इष्ट है।

इस प्रकार अप्रमतता से चला जाय तब इस अटवी को जल्दी पार किया जा सकता है। अटवी पार कर लेने पर दुर्गति से रहित नगर मिलता है, जहाँ किसी प्रकार का कोई क्लेश नहीं है, वरन् सुख ही सुख है।

छोटे मार्ग का वर्णन सुनकर कुछ लोग सार्थवाह के साथ छोटे मार्ग से गये और बाकी के लोग लम्बे मार्ग से गये। इस तरह सार्थवाह व उनके साथी इप्सितपुर नगर में पहुँच गये।

मार्ग में चलते समय सार्थवाह और उनके साथी मार्ग

को जितना सुधार सकते थे सुधारते जाते थे। बीच में आने वाले शिला खण्डों पर मार्ग के गुण व दोषों को लिखते जाते थे। इससे पीछे आनेवाले मुसाफिरों को यह भी पता चल जाय कि कितना चल चुके हैं और कितना चलना और बाकी है।

सार्थवाह की आज्ञा के माफिक चलनेवाले जिस तरह शीघ्र इच्छित स्थान पर पहुँच जाते हैं, वैसे ही पीछे रहे लोग भी सार्थवाह के लिखित संकेत के अनुसार चलते हैं, वे भी इप्सितपुर पहुँच जाते हैं।

परन्तु जो इस तरह नहीं चले और चलते नहीं वरन् रास्ते में मनोहर वृक्षों आदि की छाया में विश्राम लेने खड़े रहते हैं वे इच्छित स्थान पर पहुँचे भी नहीं और पहुँचेंगे भी नहीं।

इस दृष्टांत का उपनय यह है कि सार्थवाह के स्थान पर श्री अरिहंत भगवान को समझना। उद्घोषणा यह उनकी धर्मदेशना है; मुसाफिरों के स्थान पर संसारी जीव हैं। अटवी यह संसार है। सर्वविरति साधु मार्ग सरल मार्ग। लम्बा मार्ग देशविरति–श्रमणोपासक मार्ग है। इप्सितपुर मोक्ष है। सिंह व बाघ के स्थान पर राग व द्वेष समझना। मनोहर वृक्षों की छाया स्त्री आदि से संसक्त व बस्तियों–रहने के स्थान हैं। परिशाटित और शुष्क वृक्षों के स्थान पर निर्दोष बस्ती–रहने के स्थान को समझना। दोनों तरफ के बोलनेवाले पुरुषों के स्थान पर अकल्याण मित्रों को समझना, सार्थवाह के साथ चलनेवालों को साधु समझना। दावाग्नि के स्थान पर

क्रोध, पर्वत के स्थान पर मान, वंशजाला के स्थान पर माया, खड्डे के स्थान पर लोभ समझना। किंपाक फल पांच इन्द्रियों के शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श आदि पाँच विषय हैं। बाइस पिशाच बाइस परिषह हैं। विरस और अल्प भोजन-पान की जगह प्रासुक और एषणीय आहार पानी हैं। प्रयाण के स्थान पर निरंतर उद्यम है। रात्रि में दो प्रहर गमन के स्थान पर स्वाध्यायकरण है, तथा अंत में इप्सितपुर प्राप्ति मुक्तिपुरी है। इस नगरी में किसी प्रकार का क्लेश नहीं है और केवल सुख ही सुख है। इसका विशेष स्वरूप शास्त्रों में निम्न प्रकार वर्णन किया है।

यह मुक्ति नगरी ऐसो सुन्दर और आकर्षक है कि उसका सम्पूर्ण वर्णन करना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। फिर भी सामान्य रूप से कहा जाय तो वहां मृत्यु नहीं, वृद्धावस्था नहीं, पीड़ा-शोक नहीं, उद्वेग नहीं, क्षुधा नहीं, तृषा नहीं और किसी भी प्रकार के उपद्रव वहाँ नहीं, वहां तो केवल स्वाभाविक बाधा-पीड़ा बिना का अपने स्वाधीन ऐसा केवल सुख ही सुख है। इस संसार के तमाम सुखों को एकत्र कर उनका उतने से ही गुणा किया जाय तब भी वह सुख सम्पूर्ण स्वरूप लाभ और सहजानन्द स्वरूप मुक्ति जो आत्मा ने प्राप्त की है, वह आत्मा के सुख के एक प्रदेश के सुख जितना भी नहीं हो सकता। यदि मुक्तात्माओं के सुख का केवल एक अंश ही लिया जावे तब भी वह सुख-समग्र लोकाकाश में नहीं समा सकत।।

दूसरे सुखों को बाहर लेने जाना पड़ता है, जब कि मुक्ति

नगर में सुख स्वभाव से अंदर ही मिलते हैं। दूसरे सुखों में बीच-बीच में पीड़ा उद्वेग होता है, जब कि मुक्ति सुख में कोई पीड़ा, अड़चन या अंतराय नहीं होती। दूसरे सुखों में दूसरों से वस्तु, धन, समय, सहाय, आदि की अपेक्षा रहती है, जबकि मुक्ति नगर के सुख अपने पर ही आधारित हैं। दूसरे सुखों का आखिर में अंत आता है और फिर पीछे दुःख होता है। मुक्ति सुख का कभी अन्त नहीं होता। दुनियादारी के सुखों की बराबरी के लिये दूसरी वस्तुएं होती हैं, जब कि मुक्ति सुखों की बराबरी के लिये संसार में कोई उपमा ही नहीं है। जैसे गांव के लोग कदाचित नगर के गुणों को जानते हों तब भी उपमा योग्य वस्तु के अभाव में उसका वर्णन नहीं कर सकते, वैसे ज्ञानी पुरुष भी मुक्तात्माओं के स्वरूप को जानते हुए भी उसका स्वरूप कहने के लिये संसार में कोई उपमा नहीं मिलने से नहीं कह सकते, इसलिये वह अवर्णनीय है, जब उसका अनुभव हो, तब ही वह कल्पना कर सकता है।

ऐसा अनुपम, अनुत्तर, विशुद्ध, स्वाधीन और अविनाशी कभी भी क्षय न हो ऐसा सुख मुक्ति में है।

मनुष्य भव रूपी नगर से लेकर मुक्ति नगर की प्राप्ति तक बीच में आने वाले अंतराय और अटवी इतने विषम हैं कि सार्थवाह बिना या साथियों की सहायता बिना वह सब को पार नहीं कर सकता।

इसलिये मुक्तिनगर की प्राप्ति करने के इच्छुक को अरिहंत परमात्मा और उनके शासन की आदर पूर्वक रात दिन शरण लेना अत्यंत आवश्यक है।

समरो नित्य नवकार

सुख कारण भवियण, समरो नित्य नवकार,
जिन शासन आगम, चौद पूरव नो सार,
इण मंत्रनो महिमा, कहेतां नावे पार,
सुरतरु मन चिंतित, वंछित फल दातार ॥ १ ॥

सुर दानव मानव, सेवा करे कर जोड़,
भूमंडल विचरे, तारे भवि जन कोड,
सुर छंदे विलसे, अतिशय जास अनंत,
पद पहेले प्रणमुं, अरि-गंजन अरिहंत ॥ २ ॥

जे पन्नरे भेदे, सिद्ध थया भगवंत,
पंचमी गति पहोंता, अष्ट करम करी अंत,
कल अकल सरूपी, पंचानंतक देह,
बीजे पद प्रणमुं, सिद्धतणा गुण एह ॥ ३ ॥

गच्छ भार धुरंधर, सुन्दर शशधर शोभ,
करे सारण वारण, गुण छत्रीसे थोभ,
सूत्र जाण शिरोमणि, सागर जिम गंभीर,
त्रीजे पद प्रणमुं, आचारज गुण धीर ॥ ४ ॥

श्रुतधर गुण आगम, सूत्र भणावे सार,
तप विधि संजोगे, भाखे अर्थ विचार,
मुनिवर गुण जुत्ता, कहीए ते उवज्झाय,
पद चौथे प्रणमुं, अहनिशि तेहना पाय ॥ ५ ॥

पंचाश्रव टाले, पाले पंचाचार,
तपसी गुण धारी, वारी विषय विकार,

त्रस थावर पीयर, लोक मांहि जे साध,
विविधे करी प्रणमुं, परमारथ जिणे लाध ॥ ६ ॥
अरि हरि करि साइणि, डाइणि भूत वेताल,
सवि पाप पणासे, वासित मंगल माल,
इम समर्या संकट, दूर टले तत्काल,
जपे जिनगुण प्रभु, सुन्दर शिष्य रसाल ॥ ७ ॥

क्रिया बिना का सिर्फ ज्ञान भाव रूप नहीं बनता। ज्ञान बिना की अकेली क्रिया भी भाव रूप नहीं बनती। इसलिए एक तरफ नवकार का ज्ञान और दूसरी तरफ नवकार की क्रिया मिलकर भाव नमस्कार होता है। भाव नमस्कार अर्थात् आत्मा का शुद्ध परिणाम-नमस्कार का भाव रूप शुद्ध परिणाम। वह परिणाम बोधरूप है, श्रद्धारूप है और आश्रव निरोध रूप होने से कथंचित चारित्र रूप भी है।

श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथ भगवान का स्तोत्र

ॐ नमः पार्श्वनाथाय, विश्वचिन्तामणीयते ।
ह्रीँ धरणेन्द्रवैरोट्या-पद्मावतीयुताय ते ॥१॥

शान्तितुष्टिमहापुष्टि-धृतिकीर्तिविधायिने ।
ॐ ह्रीँ द्विड्व्यालवेताल-सर्वाधिव्याधिनाशिने ॥२॥

जयाऽजिताख्याविजयाख्याऽपराजितयाऽन्वित !
दिशांपालैर्ग्रहैर्यक्षै-र्विद्यादेवीभिरन्वित ! ॥३॥

ॐ असिआउसा नम-स्तत्र त्रैलोक्यनाथताम् ।
चतुःषष्टिः सुरेन्द्रास्ते, भासन्ते छत्रचामरैः ॥४॥

श्रीशंखेश्वरमण्डन ! पार्श्वजिन ! प्रणतकल्पतरुकल्प !।
चूरय दुष्टव्रातं, पूरय मे वाञ्छितं नाथ ! ॥५॥

पू. आचार्य श्री सिद्धसेन सूरि विरचित "श्री नमस्कार महात्म्य" नामक ग्रन्थ के छटे प्रकाश के आधार पर श्री नमस्कार महामन्त्र की महिमा यहां बतलाई जाती है।

श्री नवकार महामन्त्र की महिमा

श्री पंच परमेष्ठी नमस्कार महामन्त्र सर्व पापों का नाश करनेवाला है तथा सर्व मंगलों में प्रथम मंगल है, जो कोई पांच समिति में प्रयत्नशील हो, तीन गुप्ति से पवित्र हो, इस पंच नमस्कार का त्रिकाल स्मरण करता है, उसे शत्रु मित्र रूप हो जाते हैं, विष अमृत हो जाता है, जंगल सुन्दर महल हो जाता है, दुष्ट ग्रह अनुकूल हो जाते हैं, चोर भी यश फैलाने वाले हो जाते हैं, खराब निमित्त और अपशकुन आदि भी शुभ फल देनेवाले हो जाते हैं, मंत्र तंत्र आदि उसका पराभव नहीं कर सकते, सर्प कमल की नाल जैसा बन जाता है, डाकिन भी उसका द्रोह नहीं कर सकती, अग्नि चणोठी के ढेर के माफिक हो जाती है, सिंह सियाल जैसे बन जाते हैं, हाथी मृग जैसा हो जाता है, राक्षस रक्षा करने लगते हैं, भूत विभूति करनेवाले हो जाते हैं, प्रेत प्रीति करने लगते हैं, चेटक-मलिन व्यंतर देवता उसके दास हो जाते हैं, युद्ध उसे धन देनेवाला होजाता है, रोग उसे भोग देनेवाले हो जाते हैं, विपत्ति उसे सम्पत्ति के लिये होती है तथा सब प्रकार के दुःख उसे सुख देने वाले होते हैं।

जैसे गरुड़ का स्वर सुनकर चन्दन का वृक्ष सर्पों के बंधन से मुक्त हो जाता है, वैसे पंच नमस्कार की गंभीर ध्वनि सुनने से मनुष्य भी तमाम बन्धनों से मुक्त हो जाता है। नमस्कार में एक चित्तवाले के लिये जल, स्थल, श्मशान, पर्वत, दुर्ग वगैरह उपद्रव के स्थान भी उत्सवरूप में परिवर्तित हो जाते हैं। पुण्यानुबन्धी पुण्यवाला जीव विधि पूर्वक पंच परमेष्ठी नमस्कार का ध्यान करता है वह तिर्यंच व नरकगति में तो कभी जाता ही नहीं। नमस्कार के प्रभाव से चक्रवर्ती आदि की सम्पदा समुद्र के किनारे के मुक्ताफल की तरह सुलभ हो जाती है। विधिपूर्वक स्मरण किया गया यह मन्त्र सब सिद्धियों का देनेवाला है। विधिपूर्वक स्मरण करने से यह मन्त्र, पर-विद्या का उच्छेद करता है तथा क्षुद्र देवताओं के उपद्रव को नाश करता है।

जैसे स्वर्ग, मृत्यु और पाताल तीनों लोक में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से जो कोई आश्चर्यकारी अतिशय किसी को दिखाई देता है वह इस नमस्कार की आराधना का ही प्रभाव है, ऐसा समझना। तिर्च्छालोक में चन्द्र आदि अधो लोक में चमरेंद्र आदि, सौधर्मादि में शक्रेंन्द्र आदि तथा आगे के अहमिन्द्र आदि की जो सम्पत्ति दिखाई देती है वह नमस्कार रूपी वृक्ष के अंकुर, पल्लव, कली या पुष्प हैं ऐसा समझना। नमस्कार रूपी महारथ पर चढ़कर ही अभी तक की तमाम आत्माओं ने परमपद प्राप्त किया है और प्राप्त करेंगे। जब यह मन्त्र दुर्लभ शिवपद भी देता है तो आनुषंगिक दूसरे फल भी दे उनकी तो क्या गिनती की जावे।

जो मन, वचन और काया की शुद्धि से एक लाख नवकार का जाप करता है, वे जैन संघ के पूज्य बन तीर्थंकर नाम कर्म बांधते हैं। हे मित्र ! यदि तेरा मन नमस्कार में लीन नहीं होता, तो चिरकाल से आचरण किये तप, श्रुत और चारित्र का क्या फल है ? जो असंख्य दु:खों को दूर करता है, जो इस लोक और परलोक में सुख देने के लिये कामधेनु के समान है, दु:षम काल में जो कल्पवृक्ष के समान है, उस मंत्राधिराज का जाप क्यों नहीं किया जाय ? दिये से, सूर्य से या दूसरे किसी भी तेज से जिस अंधकार का नाश नहीं होता है, उसका नाश नमस्कार से होता है। जैसे नक्षत्रों में चंद्रमा शोभायमान है, वैसे तमाम पुण्य राशि में भाव नमस्कार सर्व श्रेष्ठ है। भाव नमस्कार के बिना जीव ने अनन्त बार द्रव्य लिंग धारण किये और छोड़े परन्तु कोई फल नहीं मिला। विधि पूर्वक आठ बार, आठ सौ बार, आठ हजार बार या तो आठ करोड़ बार इस नमस्कार का जाप किया जाय तो तीन भव में मुक्ति देता है।

हे धर्म बन्धु ! सरल भाव से तुझे प्रार्थना करता हूँ कि संसार समुद्र में जहाज समान इस मन्त्र के बारे में शिथिल मत बन। यह भाव नमस्कार अवश्यमेव उत्कृष्ट तेज है, स्वर्गापवर्ग का मार्ग है, दुर्गति को नाश करने में अग्नि के कण समान है। भव्य प्राणियों अंत समय की आराधना के समय इसे पढ़ें, सुनें और इसका ध्यान करें तो वह कल्याण की परम्परा को प्राप्त करता है। जैसे आग लगने पर उस समय मनुष्य अन्य सब चीजों को छोड़कर रत्नों को ही पहले रक्षा करता है तथा युद्ध में विषम स्थिति पर महा सुभट अपने

अमोघ शस्त्र को काम में लेता है वैसे अंत समय पर सर्व श्रुत स्कंध का चिंतन करने का सामर्थ्य नहीं रहने से धीर बुद्धि वाले सात्विक पुरुष द्वादशांगी के सारभूत पंचपरमेष्ठी को ही याद करते हैं। जैसे समुद्र में से अमृत, मलयाचल में से चन्दन, दही में से मक्खन वैसे आगम से उद्धृत सर्व श्रुतों का सारभूत और कल्याण की निधि समान इस नवकार का कोई धन्य पुरुष ही सेवन करता है।

पवित्र शरीर से कमलासन से बैठ, हाथ को योगमुद्रा में रख, संविग्न मनवाला बन, स्पष्ट, गंभीर और मधुर स्वर से पूर्ण पंच नमस्कार का सम्यक् प्रकार से उच्चारण करना यह उत्सर्ग विधि है। ग्लानि आदि के कारण इस विधि का पालन न हो सके तो परमेष्ठियों के नाम के आदि अक्षरों से बनता 'असिआउसा' इस मन्त्र को याद करके भी अनंत जीव यम के बंधन से मुक्त हुए हैं। इन आद्य अक्षरों की संधि करने से अ+अ+आ+उ+म्+ओं (ॐ) बनता है। यह ॐकार मोह हस्ती को वश करने के लिये अंकुश के समान है। दैव-वशात् अंत समय में ॐकार को भी याद नहीं किया जा सके तो धर्मबन्धु से उसका श्रवण करना और विचार करना कि अहो ! मैं सर्वांगे अमृत से सिंचित हूँ और आनन्दमय हूँ कि जिससे किसी पुण्यशाली बन्धु ने पुण्य का कारण, परम कल्याण को करनेवाला, परम मंगलमय यह पंच नमस्कार मुझे सुनाया। अहो ! मुझे दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति हुई, प्रिय का समागम हुआ, तत्त्व का प्रकाश हुआ, हाथ में सारभूत वस्तु प्राप्त हुई, आज मेरे कष्टों का नाश हुआ, पाप दूर हुए और मैं भव समुद्र से पार हुआ कि पंच नमस्कार मुझे सुनाई

पड़ा। पंच नमस्कार श्रवण से आज मेरा प्रशम, देव गुरु की आज्ञा का पालन, नियम, तप और जन्म सब सफल हुए। सुवर्ण को अग्नि का ताप जैसे शुद्धि के लिये होता है वैसे मेरी विपत्ति भी मेरे अच्छे के लिये हुई कि जिससे महा मूल्यवान यह नमस्कार का तेज आज मुझे मिला। इस तरह शम रस से उल्लासपूर्वक नमस्कार को सुननेवाला क्लीष्ट कर्मों का नाश कर सद्गति को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् उत्तम देवलोक में उत्पन्न होता है। वहां से च्यवन कर धर्मनिष्ठ विपुल समृद्धि शाली कुलों में उत्पन्न होकर नमस्कार की भक्ति करनेवाला जीव आठ भव में सिद्धि को प्राप्त करता है।

श्री नमस्कार महामन्त्र का ऐसा अचिंत्य प्रभाव जानकर इस महामन्त्र को हृदयेश्वर बनाकर सर्व दु.खों से मुक्त बनो।

स्तोत्र पाठ की महिमा

श्री नमस्कार महामंत्र की आराधना में तीव्रता लाने के लिये महामन्त्र का स्मरण, जाप और ध्यान आदि जैसे उपयोगी अंग है, वैसे स्तोत्र पाठ भी एक अगत्य का अंग है। सेवा पूजा आदि से शरीर आदि की शुद्धि होती है, ध्यान से मन की शुद्धि होती है और स्तोत्र पाठ से वाणी की शुद्धि होती है। सम्पूर्ण साधनशुद्धि बिना साध्य शुद्धि नहीं हो सकती। मन वचन और काया ये तीनों भी आराधना में मुख्य साधन है। उनमें स्तोत्र पाठ वाणी को (वचन को) पवित्र बनाने का एक अमोघ साधन है। कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य श्री ने एक स्थान पर फरमाया है कि "तत्र स्तोत्रेण कुर्यां च पवित्रां स्वां सरस्वतीं" अर्थात् मैं भगवान के स्तोत्र द्वारा मेरी वाणी को पवित्र बनाता हूँ।

दीर्घकाल तक विधि पूर्वक श्रेष्ठ उपासना करने के बाद और उनके द्वारा परमतत्त्व के साथ अभेद भाव से मिलन का आस्वाद लेने के बाद पवित्र हृदयवाले अनुभवी महापुरुषों जो स्तोत्र की रचना करते हैं, वे बहुत ही प्रभावशाली होते हैं। उनकी इन रचना से 'दूसरे भी भव्य जीव इन स्तोत्र पाठ द्वारा परम तत्त्व का साक्षात्कार करनेवाले बनो" ऐसा शुभ संकल्प और महान करुणा भरी होती है, जिससे शुद्ध हृदय पूर्वक उनका आलंबन लेने वाले उत्तम जीवों को वे स्तोत्र चित्त शुद्धि आदि में एकदम चमत्कारिक रीति से असर करने वाले सिद्ध होते हैं। इनमें श्री मंत्राधिराज स्तोत्र, श्री ऋषि-मंडल स्तोत्र और श्री चिंतामणि स्तोत्र आदि महा-प्रभावशाली स्तोत्र माने जाते हैं। यहां वे स्तोत्र दिये जाते हैं।

श्री मन्त्राधिराजस्तोत्रम्

श्रीपार्श्वः पातु वो नित्यं, जिनः परमशंकरः ।
नाथः परमशक्तिश्च, शरण्यः सर्वकामदः ॥ १ ॥
सर्वविघ्नहरः स्वामी, सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
सर्वसत्त्वहितो योगी, श्रीकरः परमार्थदः ॥ २ ॥
देवदेवः स्वयंसिद्धश्चिदानन्दमयः शिवः ।
परमात्मा परब्रह्मा, परमः परमेश्वरः ॥ ३ ॥
जगन्नाथः सुरज्येष्ठो, भूतेशः पुरुषोत्तमः ।
सुरेन्द्रो नित्यधर्मश्च, श्रीनिवासः शुभार्णवः ॥ ४ ॥
सर्वज्ञः सर्वदेवेशः, सर्वदः सर्वगोत्तमः ।
सर्वात्मा सर्वदर्शी च, सर्वव्यापी जगद्गुरुः ॥ ५ ॥
तत्त्वमूर्तिः परादित्यः, परब्रह्मप्रकाशकः ।
परमेन्दुः परप्राणः, परमामृतसिद्धिदः ॥ ६ ॥
अजः सनातनः शम्भु-रीश्वरश्च सदाशिवः ।
विश्वेश्वरः प्रमोदात्मा, क्षेत्राधीशः शुभप्रदः ॥ ७ ॥
साकारश्च निराकारः, सकलो निष्कलोऽव्ययः ।
निर्ममो निर्विकारश्च, निर्विकल्पो निरामयः ॥ ८ ॥
अमरश्चाजरोऽनन्त, अेकोऽनन्तः शिवात्मकः ।
अलक्ष्यश्चाप्रमेयश्चा, ध्यानलक्ष्यो निरंजनः ॥ ९ ॥
ॐकाराकृतिरव्यक्ती, व्यक्तरूपस्त्रयीमयः ।
ब्रह्मद्वयप्रकाशात्मा, निर्भयः परमाक्षरः ॥ १० ॥

दिव्यतेजोमयः शान्तः, परामृतमयोऽच्युतः ।
आद्योऽनाद्यः परेशानः, परमेष्ठी परः पुमान् ॥ ११ ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशः, स्वयंभूः परमाच्युतः ।
व्योमाकारस्वरूपश्च, लोकाऽलोकावभासकः ॥ १२ ॥
ज्ञानात्मा परमानन्दः, प्राणारूढो मनःस्थितिः ।
मनःसाध्यो मनोध्येयो, मनोदृश्यः परापरः ॥ १३ ॥
सर्वतीर्थमयो नित्यः, सर्वदेवमयः प्रभुः ।
भगवान् सर्वतत्त्वेशः, शिवश्रीसौख्यदायकः ॥ १४ ॥
इति श्री–पार्श्वनाथस्य, सर्वज्ञस्य जगद्गुरोः ।
दिव्यमष्टोत्तरं नाम-शतमत्र प्रकीर्त्तितम् ॥ १५ ॥
पवित्रं परमं ध्येयं, परमानन्ददायकम् ।
मुक्तिभुक्तिप्रदं नित्यं, पठते मंगलप्रदम् ॥ १६ ॥
श्रीमत्परमकल्याण–सिद्धिदः श्रेयसेऽस्तु वः ।
पार्श्वनाथार्हजिनः श्रीमान्, भगवान् परमः शिवः ॥ १७ ॥
धरणेन्द्रफणच्छत्रा–लंकृतो वः श्रियं प्रभुः ।
दद्यात्पद्मावतीदेव्या, समधिष्ठितशासनः ॥ १८ ॥
ध्यायेत्कमलमध्यस्थं, श्रीपार्श्वजगदीश्वरम् ।
ॐ ह्रीँ श्रीँ ह्रः समायुक्तं, केवलज्ञानभास्करम् ॥ १९ ॥
पद्मावत्यान्वितं वामे, धरणेन्द्रेण दक्षिणे ।
परितोऽष्टदलस्थेन, मन्त्रराजेन संयुतम् ॥ २० ॥
अष्टपत्रस्थितैः पंच-नमस्कारैस्तथा त्रिभिः ।
ज्ञानाद्यैर्वेष्टितं नाथं, धर्मार्थिकाममोक्षदम् ॥ २१ ॥
शतषोडशदलारूढं, विद्यादेवीभिरन्वितम् ।
चतुर्विंशतिपत्रस्थं, जिनं मातृसमावृतम् ॥ २२ ॥

मायावेष्ट्य त्रयाग्रस्थं, क्रौँकारसहितं प्रभुम् ।
नवग्रहावृत्त देवं, दिक्पालैर्दशभिर्वृत्तम् ॥ २३ ॥
चतुष्कोणेषु मन्त्राढ्यै--श्चतुर्बीजान्वितैर्जिनैः ।
चतुरष्टदशद्वीति—द्विधांकसंज्ञकैर्युतम् ॥ २४ ॥
दिक्षु क्षकारयुक्तेन, विदिक्षु लांकितेन च ।
चतुरस्त्रेण वज्रांक-क्षितितत्त्वे प्रतिष्ठितम् ॥ २५ ॥
श्री–पार्श्वनाथमित्येवं, यः समाराधयेज्जिनम् ।
तं सर्वपापनिर्मुक्तं, भजते श्रीः शुभप्रदा ॥ २६ ॥
जिनेशः पूजितो भक्त्या, संस्तुतः प्रस्तुतोऽथवा ।
ध्यातस्त्वं यैः क्षणं वाऽपि, सिद्धिस्तेषां महोदया ॥२७ ।
श्रीपार्श्वमन्त्रराजान्ते, चिन्तामणिगुणास्पदम् ।
शान्तिपुष्टिकरं नित्यं, क्षुद्रोपद्रवनाशनम् ॥ २८ ॥
ऋद्धि-सिद्धि-महाबुद्धि-धृति-श्री-कान्ति—कीर्तिदम् ।
मृत्युंजयं शिवात्मानं, जपनान्नन्दितो जनः ॥ २९ ॥
सर्वकल्याणपूर्णः स्याज्जरामृत्युविवर्जितः ।
अणिमादिमहासिद्धि, लक्षजापेन चाप्नुयात्. ॥ ३० ॥
प्राणायाममनोमन्त्र–योगादमृतमात्मनि ।
त्वामात्मानं शिवं ध्यात्वा, स्वामिन्! सिध्यन्ति जन्तव॥३१॥
हर्षदः कामदश्चेति, रिपुघ्नः सर्वसौख्यदः;
पातु वः परमानन्द-लक्षणः संस्मृतो जिनः. ॥ ३२ ॥
तत्त्वरूपमिदं स्तोत्रं, सर्वमंगलसिद्धिदम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं, नित्यं प्राप्नोति स श्रियम् ॥३३॥

——

श्रीऋषिमंडल-स्तोत्रम्

आद्यन्ताक्षरसंलक्ष्य,–मक्षरं व्याप्य यत् स्थितम्;
अग्निज्वालासमं नाद,–बिंदुरेखासमन्वितम्. १
अग्निज्वालासमाक्रांतं, मनोमल–विशोधकम्;
देदीप्यमानं हृत्पद्मे, तत्पदं नौमि निर्मलम्.
अर्हंमित्यक्षरं ब्रह्म–, वाचकं परमेष्ठिनः;
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणिदध्महे. ३
ॐनमोऽर्हद्भ्यः इशेभ्यः, ॐ सिद्धेभ्यो नमो नमः;
ॐ नमः सर्वसूरिभ्यः, उपाध्यायेभ्य ॐ नमः. ४
ॐ नमः सर्वसाधुभ्यः, ॐ ज्ञानेभ्यो नमो नमः;
ॐ नमस्तत्त्वदृष्टिभ्यश्चारित्रेभ्यस्तु ॐ नमः. ५
श्रेयसेऽस्तु श्रियेस्त्वेत–दर्हदाद्यष्टकं शुभम्;
स्थानेष्वष्टसु विन्यस्तं, पृथग्बीजसमन्वितम्. ६
आद्यं पदं शिखां रक्षेत्, परं रक्षेत्तु मस्तकम्;
तृतीयं रक्षेन्नेत्रे द्वे, तुर्यं रक्षेच्च नासिकाम्. ७
पंचमं तु मुखं रक्षेत्, षष्ठं रक्षेच्च घंटिकाम्;
नाभ्यंतं सप्तमं रक्षेद्, रक्षेत् पादान्तमष्टमम्. ८
पूर्वं प्रणवतः सांतः, सरेफो द्वयब्धिपंचषान्;
सप्ताष्ट–दशसूर्यांकान्, श्रितो बिंदुस्वरान् पृथक्. ९
पूज्यनामाक्षरा आद्याः, पंच दर्शनबोधने;
चारित्रेभ्यो नमो मध्ये, ह्रीं सांतः समलंकृतः. १०
[मूलमंत्र–ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रौं: ह्रः
असिआउसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रेभ्यो ह्रीं नमः]

जंबूवृक्षधरो द्वीपः, क्षारोदधिसमावृतः;
अर्हदाद्यष्टकैरष्ट-काष्ठाधिष्ठैरलंकृतः ॥ ११ ॥
तन्मध्ये संगतो मेरुः, कूटलक्षैरलंकृतः;
उच्चैरुच्चैस्तरस्तार-स्तारामंडलमंडितः ॥ १२ ॥
तस्योपरि सकारांतं, बीजमध्यास्य सर्वगम् ।
नमामि बिंबमार्हन्त्यं, ललाटस्थं निरंजनम् ॥ १३ ॥
अक्षयं निर्मलं शांतं, बहुलं जाड्यतोज्झितम् ।
निरीहं निरहंकारं, सारं सारतरं घनम् ॥ १४ ॥
अनुद्धतं शुभं स्फीतं, सात्त्विकं राजसं मतम् ।
तामसं चिरसंबुद्धं, तैजसं शर्वरी-समम् ॥ १५ ॥
साकारं च निराकारं, सरसं विरसं परम् ।
परापरं परातीतं, परंपरपरापरम् ॥ १६ ॥
सकलं निष्कलं तुष्टं, निर्वृत्तं भ्रांतिवर्जितम् ।
निरंजनं निराकारं, निर्लेपं वीतसंशयम् ॥ १७ ॥
ईश्वरं ब्रह्म संबुद्धं, शुद्धं सिद्धं मतं गुरुम् ।
ज्योतीरूपं महादेवं, लोकालोकप्रकाशकम् ॥ १८ ॥
अर्हदाख्यस्तु वर्णांतः, सरेफो बिंदुमंडितः ।
तुर्यस्वरकलायुक्तो,-बहुधा नादमालितः ॥ १९ ॥
एकवर्णं द्विवर्णं च, त्रिवर्णं तुर्यवर्णकम् ।
पंचवर्णं महावर्णं, सपरं च परापरम् ॥ २० ॥
अस्मिन् बीजे स्थिताः सर्वे, ऋषभाद्या जिनोत्तमाः ।
वर्णैर्निजैर्निजैर्युक्ता, ध्यातव्यास्तत्र संगताः ॥ २१ ॥
नादश्चन्द्रसमाकारो, बिंदुर्नीलसमप्रभः ।
कलारुणसमासांतः स्वर्णाभः सर्वतोमुखः ॥ २२ ॥

शिरःसंलीन ईकारो, विनीलो वर्णतः स्मृतः ।
वर्णानुसारसंलीनं, तीर्थकुन्मंडलं स्तुमः ॥ २३ ॥
चंद्रप्रभ-पुष्पदंतौ, 'नाद'स्थितिसमाश्रितौ ।
'बिंदु'मध्यगतौ नेमि,-सुव्रत्तौ जिनसत्तमौ ॥ २४ ॥
पद्मप्रभ-वासूपूज्यौ, 'कला'पदमधिष्ठितौ ।
शिर-'ई'स्थितिसंलीनौ, पार्श्व-मल्ली जिनोत्तमौ ॥२५ ॥
शेषास्तीर्थंकृतः सर्वे, 'ह-र' स्थाने नियोजिताः ।
मायाबीजाक्षरं प्राप्ता-श्चतुर्विंशतिरर्हताम् ॥ २६ ॥
गतराग-द्वेष-मोहाः, सर्व-पाप-विवर्जिताः ।
सर्वदा सर्वकालेषु, ते भवंतु जिनोत्तमाः ॥ २७ ॥
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिनस्तु डाकिनी ॥ २८ ॥
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिनस्तु याकिनी ॥२९॥
देवदेवस्य, यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिनस्तु राकिनी ॥ ३० ॥
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिनस्तु लाकिनी ॥ ३१ ॥
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिनस्तु काकिनी ॥ ३२ ॥
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं मा मां हिनस्तु शाकिनी ॥ ३३ ॥
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा ।
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिनस्तु हाकिनी ॥ ३४ ॥

देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा;
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिंसन्तु पन्नगाः. ३४
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा;
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिंसन्तु हस्तिनः. ३६
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा;
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिंसन्तु राक्षसाः. ३७
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा;
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिंसन्तु वह्नयः. ३८
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा;
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिंसन्तु सिंहकाः. ३९
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा;
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिंसन्तु दुर्जनाः. ४०
देवदेवस्य यच्चक्रं, तस्य चक्रस्य या विभा;
तयाच्छादितसर्वांगं, मा मां हिंसन्तु भूमिपाः. ४१
श्री गौतमस्य या मुद्रा, तस्या या भुवि लब्धयः;
ताभिरभ्यधिकं ज्योतिरर्हन् सर्वनिधीश्वरः. ४२
पातालवासिनो देवा, देवा भूपीठवासिनः;
स्वर्वासिनोऽपि ये देवाः, सर्वे रक्षन्तु मामितः. ४३
येऽवधिलब्धयो ये तु, परमावधिलब्धयः;
ते सर्वे मुनयो दिव्याः, मां संरक्षंतु सर्वदा. ४४
ॐ श्री ह्रीश्च धृतिर्लक्ष्मी-गौरी चंडी सरस्वती;
ज्याम्बा विजया क्लिन्ना, जिता नित्या मदद्रवा. ४५
कामांगा कामबाणा च, सानंदा नंदमालिनी;
माया मायाविनी रौद्री, कला काली कलिप्रिया. ४६
एताः सर्वा महादेव्यो, वर्तंते या जगत्त्रये;
मह्यम् सर्वाःप्रयच्छंतु, कांतिं कीर्तिं धृतिं मतिम्. ४७

दुर्जना भूतवेतालाः, पिशाचा मुद्गलास्तथा;
ते सर्वेऽप्युपशाम्यंतु, देवदेवप्रभावतः. ४८
दिव्यो गोप्यः सुदुष्प्राप्यः, श्रीऋषिमंडलस्तवः;
भाषितस्तीर्थनाथेन, जगत्त्राणकृतेऽनघः. ४९
रणे राजकुले वह्नौ, जले दुर्गे गजे हरौ;
श्मशाने विपिने घोरे, स्मृतो रक्षति मानवम्. ५०
राज्यभ्रष्टा निजं राज्यं, पदभ्रष्टा निजं पदम्;
लक्ष्मीभ्रष्टा निजां लक्ष्मीं, प्राप्नुवंति न संशयः. ५१
भार्यार्थी लभते भार्यां, सुतार्थी लभते सुतम्;
वित्तार्थी लभते वित्तं, नरः स्मरणमात्रतः. ५२
स्वर्णे रौप्ये पटे कांस्ये, लिखित्वा यस्तु पूजयेत्;
तस्यैवाष्टमहासिद्धिर्गृहे वसति शाश्वती. ५३
भूर्जपत्रे लिखित्वेदं, गलके मूर्ध्नि वा भुजे;
धारितं सर्वदा दिव्यं, सर्वभीति-.विनाशकम्. ५४
भूतैः प्रेतैर्ग्रहैर्यक्षैः, पिशाचैर्मुद्गलैर्मलैः;
वातपित्तकफोद्रेकैर्मुच्यते नात्र संशयः. ५५
ॐ भूर्भुवः स्वस्त्रयीपीठ-वर्तिनः शाश्वता जिनाः;
तैः स्तुतैर्वन्दितैर्दृष्टै-र्यत् फलं तत् फलं श्रुतौ. ५६
एतद् गोप्यं महास्तोत्रं, न देयं यस्य कस्यचित्;
मिथ्यात्ववासिने दत्ते, बालहत्या पदे पदे. ५७
आचाम्लादितपः कृत्वा, पूजयित्वा जिनावलिम्;
अष्टसाहस्रिको जापः कार्यस्तत्सिद्धिहेतवे. ५८
शतमष्टोत्तरं प्रात-र्ये पठन्ति दिने दिने;
तेषां न व्याधयो देहे, प्रभवन्ति न चापदः. ५९

अष्टमासावधि यावत्, प्रातः प्रातस्तु यः पठेत्;
स्तोत्रमेतन्महातेजो, जिनबिंवं स पश्यति. ६०
दृष्टे सत्यर्हतो बिंबे, भवे सप्तमके ध्रुवम्.;
पदं प्राप्नोति शुद्धात्मा, परमानन्दसंपदाम्. ६१
विश्ववंद्यो भवेद् ध्याता, कल्याणानि च सोऽश्नुते;
गत्वा स्थानं परं सोपि भूयस्तु न निवर्तते. ६२
इदं स्तोत्रं महास्तोत्रं, स्तुतीनामुत्तमं परम्;
पठनात् स्मरणाज्जापात्, लभते पदमव्ययम्. ६३

——

श्री चिन्तामणिपार्श्वनाथ स्तोत्रम्

किं कर्पूरमयं सुधारसमयं किं चन्द्ररोचिर्मयं,
किं लावण्यमयं महामणिमयं कारुण्यकेलिमयम्;
विश्वानंदमयं महोदयमयं शोभामयं चिन्मयं,
शुक्लध्यानमयं वपुर्जिनपतेर्भूयाद् भवालम्बनम्. १

पातालं कलयन् धरां धवलयन्नाकाशमापूरयन्,
दिक्चक्रं क्रमयन् सुरासुरनरश्रेणीं च विस्मापयन्;
ब्रह्मांडं सुखयन् जलानि जलधेः फेनच्छलालोलयन्,
श्रीचिन्तामणिपार्श्वसंभवयशोहंसश्चिरं राजते. २

पुण्यानां विपणिस्तमोदिनमणिः कामेभकुम्भश्रृणि-
र्मोक्षे निस्सरणिः सुरद्रुकरणी ज्योतिःप्रभासारणिः;
दाने देवमणिर्नतोत्तमजनश्रेणिकृपासारणिः,
विश्वानन्दसुधाघृणिर्भवभिदे श्री–पार्श्वचिन्तामणिः.

श्रीचिन्तामणिपार्श्वविश्वजनतासंजीवनस्त्वं मया,
दृष्टस्तात ततः श्रियः समभवन्नाशक्रमाचक्रिणम्;
मुक्तिः क्रीडति हस्तयोर्बहुविधं सिद्धं मनोवांच्छितं,
दुर्दैवं दुरितं च दुर्गतिभयं कष्टं प्रणष्टं मम. ४

यस्य प्रौढतम -प्रतापतपनः प्रोद्दामधामाऽजग-ज्जंघालः,
कलिकालकेलिदलनो मोहान्धविध्वंसकः;
नित्योद्योतपदं समस्तकमलाकेलिगृहं राजते,
स श्रीपार्श्वजिनो जने हितकृतश्चिन्तामणिः पातु माम्. ५

विश्वव्यापितमो हिनस्ति तरणिर्बालोऽपि कल्पांकुरो,
दारिद्र्याणि गजावलिं हरिशिशुः काष्ठानि वह्नेः कणः;
पियूषस्य लवोऽपि रोगनिवहं यद्वत् तथा ते विभो,
मूर्तिः स्फुर्तिमती सती त्रिजगति कष्टानि हर्तुं क्षमा. ६

श्री-चिन्तामणिमन्त्रमोंकृतियुतं ह्रीं-कारसाराश्रितं,
श्री-महेन्द्रमिऊण पासकलितं त्रैलोक्यवश्यावहम्;
द्वेधाभूतविषापहं विषहरं श्रेयः प्रभावाश्रयं,
सोल्लासं वसहाङ्कितं जिनफुलिङ्गानन्दनं देहिनाम्. ७

ह्रीं श्रीं-कारवर नमोऽक्षरपरं ध्यायन्ति ये योगिनो,
हृत्पद्मे विनिवेश्य पार्श्वमधिपं चिन्तामणिसंज्ञकम्;
भाले वामभुजे च नाभिकरयोर्भूयो भुजे दक्षिणे,
पश्चादष्टदलेषु ते शिवपदं द्वित्रैर्भवैर्यान्त्यहो. ८

नो रोगा नैव शोका न कलहकलना नारिमारिप्रचारा,
नैवाधिर्नासमाधिर्न च दरदुरिते दुष्टदारिद्र्यता नो;
नो शाकिन्यो ग्रहा नो न हरिकरि-गणव्यालवैतालजाला,
जायन्ते पार्श्वचिन्तामणिनतिवशतः प्राणिनां भक्तिभाजाम्. ९

गीर्वाणद्रुमधेनुकुम्भमणयस्तस्याङ्गणे रङ्गिणो,
देवा दानवमानवाः सविनयं तस्मै हितध्यायिनः;
लक्ष्मीस्तस्य वशा वशैव गुणिनो ब्रह्माण्डसंस्थायिनी,
श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथमनिशं सस्तौति यो ध्यायति. १०

इति जिन पतिपार्श्वपार्श्वाख्ययक्षः,
प्रदलितदुरितौघः प्रीणितप्राणिसंघः;
त्रिभुवनजनवांच्छादानचिन्तामणिकः,
शिवपदतरुबीजं बोधिबीजं ददातु. ११

॥ शिवमस्तु सर्वजगतः ॥

नवकार का सामर्थ्य

जैसे अनेक उत्तम औषधियों के अर्क के मिश्रण से बनी छोटी सी पुडिया में रोगनाश की अपार शक्ति होती है, वैसे मन्त्रों में भी पापनाश की कल्पनातीत शक्ति होती है। समस्त शास्त्रों के रहस्य स्वरूप होने से मन्त्र छोटा होता है, इसलिये उसे आत्मसात करने में अधिक अनुकूलता होती है। तथा उसे किसी भी अवस्था में भी सरलता से गिना जा सकता है और उसके स्मरण से आचार शुद्धि, विचार शुद्धि, योग शुद्धि और अध्यात्म शुद्धि इन चारों की आराधना हो जाती है। समर्थ ज्ञानी पुरुष भी अन्त समय में मन्त्र में ही अपना चित्त लगाते हैं। मन्त्र इष्ट देवता का स्मरण रूप है। अर्थ भावनापूर्वक सतत स्मरण और जाप से धीरे धीरे मन्त्र जो इष्ट देवता का होता है, उस स्वरूप में उनका ध्यान करने वाला भी बनता जाता है और आगे बढ़ते बढ़ते क्रम से तन्मय तद्रूप भी बन जाता है। महामन्त्र नवकार यह जैन शासन का परम मन्त्र है। तमाम आराधनाओं का यह अन्तिम रहस्य है। नवकार द्वारा समस्त उत्तम आराधना पकड़ में आजाती है। नवकार का पुनःपुनः स्मरण करनेवाला अन्त में पंचपरमेष्ठी स्वरूप बनता है। अथवा नवकार के प्रथम पद स्वरूप "नमो अरिहंताणं" का पुनः पुनः स्मरण करने वाली आत्मा अन्त में अरिहंत स्वरूप बनती है। नवकार का सामर्थ्य अद्भुत है वह सर्वांग शुद्ध महामन्त्र है और दूसरे तमाम महामन्त्र और प्रवर विद्याओं का उत्कृष्ट बीज स्वरूप है।